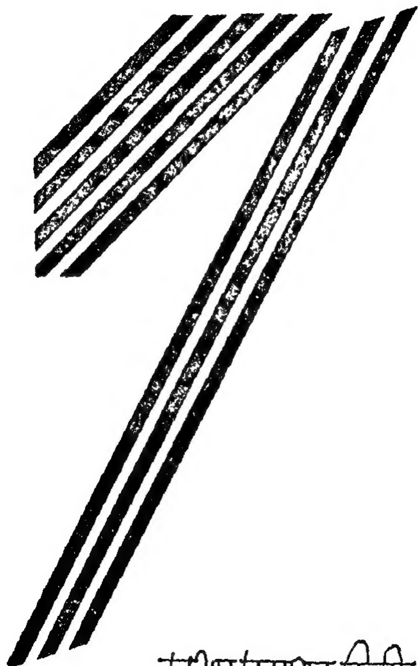

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली


बहते आँसू
आचार्य चतुरसेन

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६

संस्करण : १९८३, प्र० प्र० द्वारा प्रथम
मूल्य : तीस रुपये

BAHATE AANSU by Acharya Chatursen Rs. 30.00

१

छोटा-सा गाँव, रात का सन्नाटा, ग्रीष्म की रात, मच्छर और पिस्सुओं ने लोगों को रात-भर सोने नहीं दिया था। गर्मी भी कम न थी। हवा बन्द थी। टूटती रात में उन्हें कुछ झपकी आई थी, कि एक हृदयवेधी चीत्कार से उनकी नींद टूट गई। चौपाल पर जो दो-चार व्यक्ति सो रहे थे, वे उठकर बैठ गए। एक ने कहा—"मालूम होता है, रमाकान्त का लड़का चल बसा! गजब हो गया, पहाड़ टूट पड़ा! आसार तो कल ही से अच्छे न थे, रमाकान्त अब न जीएगा। चचा, तुम क्या अभी सो ही रहे हो?" दूसरे व्यक्ति ने करवट बदली, और फिर उठकर बैठ गया। उसने कहा—"आज सोना मिला कहाँ? चलो, फिर उसके घर चलें—हमसे तो देखा भी नहीं जायगा। अभी तो ब्याह का कंगन भी नहीं खुला—ईश्वर की मर्जी है।"

सभी उठ खड़े हुए। और भी दो-चार व्यक्ति घरों से निकल आए। इसी बीच में कई स्वर क्रन्दन कर रहे थे। लोगों ने देखा, घर की स्त्रियाँ पछाड़ खा-खाकर चीख रही है, रमाकान्त धरती में पड़ा, आँखें फाड-फाड़कर आगन्तुकों को देख रहा है। मालूम होता था, अभी इसके प्राण निकल जायँगे। लड़के की माता बेहोश धरती पर पड़ी थी, कुछ स्त्रियाँ उसपर पानी के छींटे दे रही थीं। सात वर्ष की निरीह बालिका, अब विधवा, पत्थर की मूर्ति की भाँति चुपचाप दीवार से चिपकी खड़ी थी, वह कुछ समझ रही थी, कुछ नहीं। वह न रो रही थी, न उसकी आँखों में आँसू थे। भाई-भावज 'हाय-हाय' कर रहे थे—यह सब देखकर उसका कलेजा भी मुँह को आ रहा था।

पास-पड़ोसी आकर रमाकान्त को घेरकर बैठ गए। पर कोई कुछ बोल

न सका, दर्द ने सबका मुँह बन्द कर रखा था, गृहिणी होश में आई, और पागल की भाँति वह मृतक की ओर लपकी। बीच में बालिका भयभीत नेत्रों से खडी देख रही थी। गृहिणी ने उसका हाथ पकडकर खीच लिया। वह कटे वृक्ष की भाँति धरती पर आ गिरी। पास ही एक पत्थर पडा था। उसे उठाकर गृहिणी ने उसके हाथ मे दे मारा, चूडियाँ चूर-चूर हो गईं। साथ ही खून की धारा भी वह चली। वह निरपराधिनी बालिका 'मैया-मैया' कहकर चिल्ला उठी। उसका वस्त्र बिखर गया, बाल बिखर गए। गृहिणी ने वही पत्थर अपने सर पर दे मारा, और बेहोश होकर गिर गई।

घर की स्त्रियो के रुदन का क्रम बदला। वे अब चीत्कार के स्थान पर सिसकियाँ लेकर, बालिका को लक्ष्य करके गालियाँ बकने लगी। 'रांड, अभागिनी, हत्यारी, मायाविनी, असैनी'—आदि उपाधियाँ उसपर बरसने लगी। बालिका भी अब फूट-फूटकर रोने लगी। रोते-रोते ही वह धरती पर फिर गिर गई। पर किसी ने भी न उससे कोई सहानुभूति प्रकट की, न उसे सम्हाला ही। स्त्रियो की गाली-वर्षा भी उसी भाँति जारी रही।

धीरे-धीरे और भी स्त्री-पुरुष इकट्ठे होने लगे। प्रत्येक स्त्री के आने पर क्रन्दन बढता जाता था, पुरुषो मे भी भाँति-भाँति की चर्चा होने लगी। कुछ देर मानव-जीवन की क्षण-भंगुरता पर भिन्न-भिन्न उक्तियाँ और वाक्य कहे गए। फिर ससार की असारता की व्याख्या हुई। जिसकी जैसी भाषा थी, और शिक्षा थी, सबने इस अगम्य विषय पर कुछ न कुछ अपनी राय प्रकट की।

इनकी बातें सुनकर रमाकान्त जोर-जोर से रोने और चिल्लाने लगा। कुछ लोगों ने जोर से साँसें भरी, कुछ ने आँसू पोछने का अभिनय किया। एक ने कहा—

"भाई! इस बूढे पर गजब का पहाड़ टूट पडा। बडा लडका कहे मे नही, यह यों गया।"

दूसरा बोला—"भगवान् की माया है, क्या करें, बेचारे के धन नही था, जन भी छिन गया।"

तीसरा बोला—"और लडका कैसा होनहार था। पढने-लिखने मे होशियार; चतुर। हम तो तभी कह दिया करते थे, कि यह क्या इस घर

के लायक है ?"

लडकी का पिता जयनारायण बोला—"मैने तो लड़के की विद्या-बुद्धि को ही देखकर लड़की ब्याह दी थी; घर-बार कुछ नही देखा, पर हाय ! मुझे क्या मालूम था, कि बुढापे मे मुझपर यह आपत्ति आएगी ! अभी एक साल भी नही हुआ, बड़ी लडकी की चोट सह चुका हूँ, अब फिर चोट पर चोट कैसे सहूँ ?" यह कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगा। इसपर एक पड़ोसी बोले—"देखो, कैसी धूम का विवाह हुआ था; आज की-सी बात है; अगले आषाढ़ मे एक बरस होगा। अभागिनी एक बरस भी सुहागिन न रही।"

"फेरों की गुनाहगार" कहकर जयनारायण छाती कूटकर रोने लगा। रमाकान्त ने कांपते स्वर से कहा—"मै तो हर तरह से लुट गया बाबूजी ! सात सौ रुपये कर्ज किये, बिरादरी में नाक रक्खी, अब तक पैसा भी नही पटा। मुझे तो माया मिली, न राम !!"

एक पडोसी बोला—"अब इन बातो मे क्या है, जो चला गया, वह कहाँ से आवेगा ! पत्थर की छाती करके सन्तोष करो, लड़की है, इसे ही पालो—अब तो यही बेटा और यही बहू।"

इसपर सब बोल उठे—"हाँ साहब ! अब तो यही बात है।"

इसके बाद कुछ देर तक सन्नाटा रहा। सभी चुपचाप मुँह लटकाये बैठे रहे। कुछ ठहरकर जयनारायण रो उठे, बोले—"मेरी दुलारी कैसे रहेगी ? उसने कौन-सा पाप किया है ?"

इसपर पुरोहितजी बोले—"जिजमान ! उसके भाग्य मे सुख बदा होता, तो क्या इतनी दवा-दारू व्यर्थ जाती ? यह लड़की बडी अभागिनी है। होनहार नही टल सकती—किसीके भाग्य में दूसरे का भाग्य कहाँ से चिपकाया जा सकता है ?"

जयनारायण ने झुंझलाकर कहा—"पुरोहितजी, सच पूछो, तो इस पाप के सबसे बडे भागी तुम ही हो। अब दिखाओ ना—वह टेवा और पत्री कहाँ है ? तुम्हारी ही बातो मे आकर मैंने यह विवाह किया था !"

पुरोहितजी हाथ हिलाकर, और आँखे मटकाकर बोले—"हरे राम ! शास्त्र-वचन पर भी अविश्वास ! हम किसकी सु-घडी लाकर किसकी कु-घड़ी

में जोड दें ? शास्त्र मे जो दीया, सो कहा—भगवान् की माया को शास्त्र क्या करे ?"

"जब भगवान् की माया में शास्त्रों की नहीं चलती, तो इस लग्न-कुण्डली के पाखण्ड में ही क्या रखा है ?"

"नही रखा है, तो यों ही सनातन से मर्यादा चली आती है ? तुम्हारे ऐसे नास्तिक विचार हैं—जो है सो, तभी तो भगवान् का तुमपर कोप हुआ है।" इतना कहकर पुरोहित बाबा ने उपस्थित मण्डली को लक्ष्य करके कहा—"श्रद्धा और विश्वास के बिना भी कहीं फल मिला है ?" फिर आँख मीचकर और एक लम्बी साँस लेकर कहने लगे—"हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण !! तुम देख रहे हो ।"

इस बगुला भगत को देखकर और उसकी बात को सुनकर, जयनारायण की दुखी आत्मा जल गई। उसने कड़ककर कहा—"भगवान् का ऐसा कोप इन नास्तिक विचारों के कारण नही है, परन्तु तुम्हारे बताये हुए इन अन्ध-विश्वासों को मानने से हुआ है। मैंने तुम्हारी बातों में आकर भगवती को नौ वर्ष की उम्र में विधवा बनाया और नारायणी को सात वर्ष की उम्र में'''। तुम मुझे नास्तिक कहकर कोसते हो—पर यदि मैं सचमुच नास्तिक होता, तो आज मेरी दुलारी बेटियाँ—जब इनके खेलने-खाने के दिन थे—ऐसी अनाथिनी न बनतीं। मेरी इन दुधमुँही बेटियों को कोई अभागिनी कहता तो मैं उसकी जीभ खींच लेता, उसका खून पी जाता। पर आज पिशाच बाप ही उन्हें अभागिनी और विधवा कह रहा है। अभी पूरे दस मास भी नहीं बीते, जब सुहाग गाते-गाते मंगल-कृत्यों के साथ, उसे हरी-हरी चूड़ियाँ पहनाई थीं। आज उन्हें पत्थरों से चूर-चूर कर दिया गया। तुम अपने पोथी-पत्रे और उस सुहाग के अमर पट्टे को लाओ तो सही, मैं उन्हें भी बेटी के सुहाग की तरह आग लगाकर फूँक दूँ, जिससे और किसी का भाग्य न फूटे ! जब वे भगवान् की माया में दखल दे ही नहीं सकते, तो इन झूठे ढकोसलों की जरूरत ही क्या है ?" इतना कहकर, वे धरती पर लोटकर रोने लगे। आँसुओं से उनकी दाढ़ी भीगकर तर हो गई।

सब चुप ! अन्त में एक बड़े-बूढ़े सज्जन ने उनका हाथ पकड़कर कहा—"बाबूजी, अब इन बातों से क्या लड़का जी उठेगा ? क्यों जी भारी करते हो ?

इसमें तुम्हारा क्या चारा था; लड़की के भाग्य में यही लिखा था।"

जयनारायण उठ बैठे। उन्होंने तीव्र स्वर से कहा—"क्या लिखा था? —कि वह सात वर्ष की उम्र में विधवा होगी? कभी नहीं—मैं पापी हूँ, एक लड़की को विधवा होते देख चुका था। इसका अभी ब्याह ही न करता, तो भाग्य कहाँ जाता?"

"करते कैसे नहीं? होनहार सब करा लेती है।" पुरोहितजी ने तेज स्वर में कहा।

"क्या कहा—होनहार सब करा लेती है? तो फिर हर एक काम को समझने-बूझने की जरूरत ही क्या है! जो होना होगा—होकर रहेगा। ईश्वर ने अक्ल, समझ, विचार और बुद्धि, सब क्यों दिये हैं? पशुओं की तरह आँख मीचकर कुएँ में कूद पड़ना चाहिए।" जयनारायण एक ही साँस में कह गए।

"अजी, यों तो किससे कूदा जाता है। पर सोच-विचार करने पर भी काम बिगड़े, तो क्या किया जाय?"

"पर वैसा होता, तो सन्तोष तो रहता। मैंने तो क्रूर हत्यारे की तरह कन्या के गले में फाँसी डाली थी।"

"अब जो हो गया, वह तो किसी तरह लौट नहीं सकता!" दो-चार आदमी बोल उठे।

"लौट सकता, तो मैं अपने प्राण देकर भी लौटा लाता। केवल आज ही नहीं, सारे जन्म-भर मुझे यह बिच्छू की तरह डँसता रहेगा। मेरे मरने के बाद मेरी कन्या क्या जाने, किस घर भीख माँगेगी—किस घर गुलामी करेगी!" इतना कहकर जयनारायण दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर रोने लगे।

समय बहुत हो गया था। मृतक के संस्कार की अब तैयारियाँ होने लगीं। पुरुष इसमें व्यस्त हुए, क्रन्दन और चीत्कार को भेदन करके, स्त्रियों के हाथों से बलपूर्वक मृतक शरीर को छीनकर 'राम नाम सत्य' का घोष करते चल दिए।

उस शून्य पट पर उस सुन्दर युवा बालक की, जिसने केवल जगत् को झाँका ही था—अब स्मृति-मात्र रह गई। उसका अस्तित्व नष्ट हो गया। अब उसका पार्थिव शरीर भस्मीभूत होने को चला गया। मनुष्य के जीवन

का, कर्तव्य का, दृढ़ता, धैर्य और ममता का यह अद्भुत आश्चर्यजनक और न समझा जानेवाला दृश्य था।

२

"क्या कहें बहिन, सब कर्मों की लीला है!" यह कहकर शिवचरणदास की स्त्री ने अपनी गहरी सहानुभूति दिखाकर एक लम्बी साँस ली। पास ही हरगोविन्द की वृद्धा मौसी बैठी थीं। उसने कहा—"तीस वर्ष से तो मैं देखती आ रही हूँ—इस निपूते घर में कोई नहीं फला-फूला। पहले यह घर छज्जू मिस्सर का था—पर प्लेग में १५ ही दिन में उसका सब चौपट हो गया। उसकी विधवा ने इसे लाला माधोराम को बेच दिया। साल के भीतर उसका जवान बेटा चला गया। तब वे इसे छोड़कर दूसरे घर में चले गये। इसके बाद आगरे के बाबू आकर बसे। दूसरे ही महीने में उनकी घर वाली मर गई। अब यह देखो—पूरे दो वर्ष भी नहीं हुए—ब्याहा-ग्राहा जवान बेटा चल बसा।"

वृद्धा की एक बात पर सबको श्रद्धा हो गई—सबने मुँह लटकाकर कहा—"हाँ जी! ऐसे जले घर में कौन फले-फूले?" एक स्त्री अत्यन्त सावधानी से बोली—"चम्पा के चाचा कहा करते हैं कि मकान पर धम-धम की आवाज और आग की-सी लपट रात को उन्होंने खुद देखी-सुनी है।"

इस पर सब स्त्रियाँ भयभीत हो गईं। हरगोविन्द की बूढ़ी मौसी गम्भीरता से बोली—"पास ही पीपल का पेड़ है न! प्लेग में मुर्दों का क्रिया-कर्म तो होता नहीं था, बस, वे सब यहीं प्रेत बनकर रहते हैं।" इस पर एक नवोढ़ा बोली—"क्यों मौसीजी! ये प्रेत तो जल गये, आदमी को क्यों सताते हैं?"

मौसी ने बड़े इत्मीनान से कहा—"दूध, दही, मक्खन, मलाई खाकर जो बालक उनके स्थान पर से निकले, उसे वे नहीं छोड़ते—क्योंकि यह उनके भोग की प्यारी वस्तुएं है। कोई स्त्री इत्र-फुलेल लगाकर उधर से निकले, तो वे उसे भी मार डालते है।"

यह बात सुनते ही मिश्रीलाल की बहू डर से कांप गई। उसके कान में इत्र का फाया लग रहा था—सो उठकर उसने चुपके से उसे फेंक दिया।

अब तक रमाकान्त की स्त्री चुपचाप बैठी थी—अब बोली—"यह लड़का तो कहे का था ही नही। उस दिन रामचन्द्र के यहां से खीर-पूरी का न्योता जीमकर आया था—मैंने बहुतेरा कहा कि सो जा, दुपहरी मे कही मत जा। पर वह किसकी सुनता था? एक न मानी—चला ही गया। वह सत्यानाशी पीपल भी तो रास्ते ही में है?"

इसपर सब बोल उठीं—"बस, तो वहीं से आफत लग गई!"

शिवचरणदास की स्त्री ने कहा—"तो मौसी! इससे बचने का कोई उपाय नही है?"

मौसीजी ने बड़े बडप्पन से सिर हिलाकर कहा—"ओहो! इस काम मे तो भोला काछी को जैसा देखा, वैसा त्रिलोक मे कोई न होगा।"

इस पर गृहिणी बोली—"तो तुमने यह बात पहले क्यों न कही, मैं उसीको बुलाती!"

"उसे बुलाती तो क्या तुम्हारा बच्चा मर जाता? पर भाई मैंने देखा, वैद्य-डाक्टरों का इलाज हो रहा है—उसमें न बोलना ही अच्छा है।"

"वैद्य-डाक्टरो से तो कुछ न हुआ।"

"होता कैसे? वे इस बात को बेचारे क्या समझें? कोई बीमारी होती, तो आराम होता।"

अब गृहिणी रोकर बोली—"हाय, मैं कैसी अभागिनी हूं—मुझे यह बात कभी नही सूझी।"

इसी बीच मृतक बालक की विधवा बालिका ने आकर सास से कहा—"चलो अम्मा, भोजन बना लो—समय हो गया है।"

गृहिणी ने झुंझलाकर कहा—"आग लगे भोजन मे, मेरा तो बहुतेरा पेट भर रहा है। अभागिनी, तू मेरे सामने से टल जा।"

इसपर सारी स्त्रियो ने अचरज से कहा—"ऐ! देखो तो सही, इसे कुछ भी शोक नही। इसका सुहाग फूट गया है, फिर भी ऐसी फिर रही है? ऐसा तो कही देखा-सुना नही।"

गृहिणी बोली—"यह अभागिनी जब से आई है, मेरे घर की सारी श्री

उड़ गई। बड़े की नौकरी छूट गई, चोरी हुई और अब मेरा लाल भी चल बसा। यह डायन आते ही उसे खा गई। अब इसे काहे का शोक होगा। मेरा तो सोने का घर मिट्टी हो गया। सात सौ का कर्ज अलग छाती पर रक्खा है। निगोड़े बाप ने छल्ला तक नही दिया। मेरा लाल तो खा गई, अब मेरी छाती पर मूंग दलेगी। इस हथिनी को जन्म-भर कहाँ से खिलाऊँगी?"

मौसी बोली—"हमे तो इसके कुलच्छन तभी दीख गए थे, जब ब्याह कर आई थी। पर बहन, यह बात क्या कहने की होती है? कुछ कहती, तो उलटे हमी को कोसती है, कि हमारी बहू को ऐसा कहती है। चपटे पैर के तलुए और भारी कमर जिस लुगाई की होगी, वह कभी सुहागन रहेगी ही नही। लाखो मे इस बात को आजमाकर देख लो, और इसके तो माथे पर साँपन भी है। ऐसी लुगाई डायन का अवतार होती है।"

शिवचरणदास की स्त्री बोली—"ऐसी खसमखानी का क्या मुँह लेकर फूँकें? रामजी न दे किसी को ऐसी बहू, क्वांरा भले ही रक्खें।"

गृहिणी बोली—"जब से आई, मैंने इसे हँसते-बोलते न देखा। सदा रोती रही। सदा माथा सिकुड़ा रहा। गोपाल घर आता, तो सिकुड़कर कोने मे घुस जाती—क्या मजाल, जो कभी पानी तो पिला दे! उससे इसे ऐसी नफरत थी कि जैसी किसी जन्म के दुश्मन से होती है। अन्त में इसकी माया फल ही गई—उसे निगल ही गई। अब देखा, छिनाल कैसी मटकती फिर रही है! पेट मे आग लग रही है।" यह कहकर गृहिणी ने कटकटाकर एक लात उसके जमाई। हतभागी बालिका, तिलमिलाकर धरती पर गिर गई। अभी अपने दुःख पर रोने का भी उसे अच्छा ज्ञान नही हुआ था!

३

संसार सो रहा था। आधी रात जा चुकी थी। सब तरफ सन्नाटा था, परन्तु एक टूटे हुए मकान के दूसरे खण्ड मे, एक छोटी-सी कोठरी में चटाई पर बैठी हुई एक युवती, दीये के धुँधले प्रकाश मे एक मन होकर कुछ सी

युवती ने भयभीत नेत्रों से देखते हुए कहा—"अगर अभी दे देती, तो बहुत बड़ी कृपा होती। घर में कुछ भी नहीं है।"

इसपर कुछ रुष्ट होकर गृहिणी बोली—"वह तो मैं जानती हूँ, तुम लोग बड़ी ओछी हो—घड़ी-भर भी धीरज नहीं होता। सवेरे-सवेरे भी कहीं देन-लेन होता है?"

युवती कुछ बोली नहीं। वह धीरे-धीरे चल दी। बाहर आकर उसने आँचल से आँसू पोंछ लिये।

वह टूटे हृदय से नीची नजर किये सीढ़ी से उतर रही थी। पीछे से किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। लौटकर देखा, एक युवती है—क्षण-भर खड़ी होकर उसने आँख मिलाई। मानो मन ही मन पूछा—तुम कौन हो?

युवती ने पूछा—"सर्दी में बिना गर्म कपड़ा पहने कहाँ निकली थी—इतना सवेरे इस दुष्टा के पास क्यों आई थी?"

बालिका ने लज्जा और संकोच-भरे नेत्रों से युवती की ओर देखा। मन का दुख और निराशा छिपाकर बोली—"कुछ काम था।" और आगे बढ़ी।

युवती ने रोककर कहा—"मैं इसी घर में रहती हूँ—आओ, जरा भीतर बैठो। आग जल रही है—ताप लो। तुम्हारे होंठ नीले हो रहे हैं।" बालिका क्षण-भर रुककर उसके पीछे चल दी। देखा—कमरे में खूब सजा-वट है। बढ़िया तस्वीरें और पर्दे लगे हैं। पलंग बिछा है, उसपर गद्दा और झका-झक सफेद चादर बिछी है। जमीन में दरी का फर्श है। बालिका ने खड़े ही खड़े कमरे की सुख-सामग्री को ललचाई नजर से देखा। एक ठण्डी साँस ली, और फिर वह आग के पास जा खड़ी हुई। गृह-स्वामिनी युवती ने प्रेम से उसका हाथ पकड़कर कहा—"मैं भी तुम्हारी ही तरह दुखिया और अकेली हूँ।"

"परन्तु देखती हूँ, तुम बड़े सुख में हो।"

"कुछ दिन से एक सज्जन की कृपा से यह सुख नसीब हुए है। पहले मैं बड़े कष्ट उठा चुकी हूँ। पर तुम तो बड़ी ही दुखिया मालूम होती हो। कैसा सुन्दर तुम्हारा रूप है! कैसी आँखें और रस-भरे होंठ हैं! पर यह सब सूख गये हैं। क्या तुम भूखी हो?"

बालिका दो दिन से भूखी थी। पानी को छोड़ अन्न उसके मुख में न गया था। फिर भी उसने कहा—"नहीं, भूखी तो नहीं हूँ।" परन्तु उसके क्षीण स्वर ने हृदय का भेद खोल दिया। युवती ने बड़े प्रेम और आग्रह से उसे कुछ खाने को कहा, परन्तु उसने किसी तरह स्वीकार नही किया।

युवती ने कहा—"मैंने भी बड़े कष्ट भोगे हैं। मैं सात वर्ष की आयु में विधवा हो गई थी। तीन वर्ष बाद माँ-बाप मर गये। भाई-भावज के घर दिन न कट सके। लाचार, भाग आई। ओफ! कितने दिन भूखी-प्यासी रही! कितने दिन भीख माँगी! कितनी तकलीफ, कितनी मुसीबत! बहिन, तुम शायद अब वैसी ही मुसीबत उठा रही हो?"

बालिका ने दयार्द्र स्वर में कहा—"शायद वैसी नही। मैं वैसे तो जन्म की दुखिया हूँ, पर विपत्ति का पहाड़ केवल छः महीने से मेरे ऊपर टूटा है।"

"मेरे पिता मुझे छ. महीने की छोड मरे थे। माता ने मुझे देखकर जीवन के दिन काटे। मैं अभागिनी पूरी उम्र होने से प्रथम ही सुहागन बना दी गई, और उसके पन्द्रह दिन बाद ही विधवा। एक बार ससुराल गई। तीन दिन रही और चली आई। उस बात को आज ग्यारह वर्ष हो गये। अब तो उसकी कुछ याद ही नही आती। तब से माता की गोद में पलती रही। धीरे-धीरे हमारा सर्वस्व नष्ट हो गया। कपडे-बर्तन भी पेट मे गये। पर परमेश्वर को धन्यवाद है, कि भीख माँगने की नौबत नही आई। हम दोनों माँ-बेटी सिलाई करके पेट पालती रही, पर ईश्वर ने अब की मार गहरी मारी। मेरी माता चल बसी। मैं अकेली ही अब दुनिया मे हूँ, और जैसे-तैसे पेट का कुछ उपाय कर लेती हूँ।" इतना कहते-कहते उसकी आँखों से दो बूंद आँसू टपक पड़े।

युवती ने अत्यन्त सहानुभूति से कहा—"पर बहन, इतना कष्ट क्यों पाती हो? तुम चाहो, तो मेरी तरह रह सकती हो—वे सज्जन, जो मेरी परवरिश करते हैं, तुम्हारी खबर रखेंगे। वे बड़े धनी, बड़े सुन्दर, बड़े सज्जन और बड़े प्रेमी है।"

बालिका शङ्कित हुई। उसने भयभीत और अकुलाई दृष्टि से युवती को देखकर कहा—"वे क्या मुझे सिलाई का काम दे सकेंगे?"

युवती ने कुटिल भ्रूक्षेप कर तेज स्वर में कहा—"सिलाई मे आँखें

फोड़ोगी ?"

बालिका ने लाचारी के स्वर में कहा—"तब, और तो कोई काम मुझको आता ही नहीं।"

युवती क्षण-भर को विचलित हुई। उसके मन में जो कुछ था—वह किसी तरह नहीं कह सकी। उसने उसके कन्धे पर हाथ धरकर कहा—"तुम बड़ी भोली हो, परन्तु दुनिया में इतनी भोली, और इतनी भली बनने से काम नहीं चलता। मैं तुम्हारे ऊपर तरस खाती हूँ। तुम्हारा दु:ख मुझसे देखा नहीं जाता, तुम सचमुच क्या मेरा मतलब नहीं समझती ?"

"तुम कौन-से मतलब की बात कहती हो ?"

"मेरे इस ठाठ और आराम को देखकर, क्या तुम्हें इस तरह रहने की इच्छा नहीं होती ?"

"होती है, पर इच्छा करने से ही क्या सुख मिल जाता है ?"

"बहिन ! भाग्य भी तो कुछ चीज है ?"

"पर तुम क्या मेरे भाग्य पर डाह नहीं खाती ?"

"मैं डाह क्यों खाऊँगी ?"

"अच्छा, तुम्हें भी यदि यह सब मिले तो ?"

"कैसे ?"

"जैसे मुझे मिले हैं ?"

"किस तरह तुम्हें मिले हैं ?"

युवती रुकी। उसके होंठ कांपे। उसने कहा—"रूप बेचकर।"

बालिका को मानो जोर से चाबुक लगा। वह क्षण-भर को मानो बेहोश हो गई। पर फिर, तत्काल सम्भल कर उठी और पागल की तरह भागी। युवती ने उसे रोकना चाहा पर वह न रुकी।

४

बालिका ने उस युवती के घर से भागकर सीधी अपनी कोठरी में आकर साँस ली। घर में आकर, जल्दी से द्वार का कुण्डा भीतर से बन्द कर लिया,

और चटाई पर पड़कर हाँफने लगी। उसके सिर में चक्कर और आंखों में अँधेरा छा रहा था।

दिल की धड़कन बढ़ गई थी, और वह हाँफ रही थी। वह सोचने लगी —"हे भगवान्! यह क्या सुना? क्या दुनिया ऐसी है? हाय! यह चमक और ठाठ इस तरह मिलते हैं?" उसे अब अपनी माता का स्मरण हो आया— और वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसके रोम-रोम में भय और चिन्ता भर रही थी।

वह विपत्ति की मारी बालिका, इस अथाह समुद्र में डूब-उतरा रही थी कि किसी ने द्वार खटखटाया। खोलकर देखा, तो किराये के लिए मकान मालकिन खड़ी है। जैसे हिरनी बाघ को देखकर सहम जाती है, उसी तरह सहमकर अनाथा ने वृद्धा को देखा।

वृद्धा ने कर्कश स्वर में हाथ आगे बढ़ाकर कहा—"ला दे किराया, दे, आज ही का तेरा वायदा है।"

बालिका ने बिल्कुल दबे स्वर से कहा—"चाची! आज मैं जरूर दे दूँगी, अभी तो दिन ही निकला है। मैं काम पूरा करके दे आई हूँ, पर अभी मजदूरी मिली नहीं है।"

डाइन की तरह एकदम सिर पर गरजकर बुढ़िया बोली—"मजदूरी का क्या मैंने ठेका लिया है? दो महीने हो गए, किराया नहीं दिया? ला, अभी दे, नहीं तो चोटी पकड़कर बाहर निकालती हूँ।"

लड़की प्रार्थना भी न कर सकी। वह अधमरी-सी होकर बुढ़िया की ओर ताकने लगी।

बुढ़िया ने कहा—"इस तरह मरे बैल-से दीदे क्या निकालती है? किराया दे!"

बालिका ने कुछ बोलना चाहा, पर उसकी जीभ तालू से चिपक गई। उसने धरती पर गिरकर बुढ़िया के पैर पकड़ लिए। अन्त में उसने टूटते स्वर से कहा—"चाची! दो दिन से अन्न का दाना मुँह में नहीं गया, पर पहले किराया दूँगी; पीछे जल पीऊँगी। तुम शाम तक दया करो।"

बुढ़िया का हृदय पिघला। पर क्षण-भर बाद उसने कहा—"शाम को नहीं, अभी दे। कहीं से दे। उठ। मैं अभी लूँगी। अभी तेरा गूदड़-खोरिया

फेंकती हूँ।"

बालिका भयभीत होकर, उठ खड़ी हुई। उसने कहा—"चाची! मैं अभी जाती हूँ।" इतना कहकर बेंत की तरह काँपती हुई लड़की फिर घर से बाहर निकली। उसके हृदय और आँख मे अँधेरा था।

उसे कुछ सूझना ही न था। वह तीर की तरह चुभने वाली हवा से शरीर को घायल करती हुई, फिर उसी द्वार पर आ खड़ी हुई। वह बड़ी देर तक वही खड़ी रही, और अन्त मे भीतर घुसी।

मालकिन अभी पलँग पर बैठी थी। लड़की को देखते ही, उसने आग होकर कहा—"अब कैसे आई?"

बालिका चुप रही। फिर वह धीरे से धरती पर बैठ गई, और कातर कण्ठ से बोली—"मुझे चाची ने निकाल दिया। दो महीने से किराया ही न पटा। दया करके कुछ दे दो। मैं भूखी तो और कल तक रह सकती हूँ, पर चाची को क्या कहूँ?"

गृहिणी बोली नही। बड़ी देर तक वह मौन कोप में भरी बैठी रही। सील-भरी धरती पर बालिका चुप बैठी, काँपती हुई गृहिणी के मुख से शब्द निकलने की प्रतीक्षा करने लगी। दुबारा उसे कुछ कहने का साहस न हुआ।

अन्त मे गृहिणी बोली। उसने उसी वस्त्र की पोटली उसके हाथ में देकर कहा—"जा, जरा राजा साहब की कोठी तक चली जा, और यह कपड़ा रानीजी को पसन्द करा ला। पसन्द आ जाय, तो कपडा छोड आना। और यह पर्चा ले, ये रुपये लेती आना। नापसन्द आने पर उसमे जो कोर-कसर होगी, पूरी करनी पड़ेगी।"

लाचार लड़की चली। पर्चा मे पढकर देखा—'बाईस रुपये।' हे भगवान्! ढाई रुपये के बाईस रुपये!! बाईस रुपये की मजदूरी के ढाई रुपये!!! पर उसे किराये की सबसे बडी चिन्ता थी। वह बढी चली जा रही थी। नम्बर पूछती हुई वह कोठी मे पहुँची, दरवान ने उसे राजा साहब के सामने पेश कर दिया।

राजा साहब की उम्र लगभग चालीस वर्ष की थी। रंग साँवला था। आँखों मे लम्पटता कूट-कूटकर भरी थी। दो दिन की भूखी, दुख-दर्द से व्यथित, शीत से ठिठुरी हुई बालिका के मुरझाये हुए पीले चेहरे को देख,

राजा साहब घूरने और मुस्कराने लगे। गरीब लड़की ने घबराई आवाज से कहा—"सरकार, कपड़ा तैयार है।" कहकर धीरे से उसने मेज पर पोटली रख दी, और आगे बढ़कर पर्ची राजा साहब के हाथ मे दी।

राजा साहब ने पर्ची न छूकर उसका बढ़ा हुआ हाथ पकड़ लिया। और बोले—"तू कौन है?"

बालिका क्या जवाब देती? उसने धीरे से हाथ खीच लिया। वह वहाँ से जाने को उद्यत हुई। पर रुपये पाने से ही उसको मजदूरी मिलेगी। उसने धरती पर गिरी हुई पर्ची उठाकर फिर राजा की ओर हाथ बढाकर कहा—"हुजूर! इसके रुपये मालकिन ने मँगवाए है।"

राजा साहब उस कुम्हलाये मुख-कमल का रस पी रहे थे। वह अति सुन्दर दरिद्र बाला—मानो प्रात काल की पीत प्रभा थी। मैले और फटे वस्त्रो मे और विपत्ति की आग मे तपा-तपाया वह तपस्वी शरीर, उस विलासी, घृणित, काम के कीड़े के मन मे वासना की तरंग उछाल रहा था। उसने दुबारा लड़की का विनीत स्वर सुनकर कहा। "लेकिन तू है कौन?"

लड़की ने जवाब दिया—"सरकार, मैं सीने का काम करती हूँ!"

"दर्जी की लड़की है?"

"नही?"

"तब?"

"मैं सीकर ही दिन काटती हूँ।"

राजा साहब ने आगे बढ़कर पूछा—"तेरा कोई और अपना है?"

"नही सरकार।"

"तू अकेली है?"

"जी।"

"तेरा नाम क्या है?"

"सुशीला।"

"सुशीला" कहकर राजा साहब हँसे। कुछ आगे बढकर उन्होंने उसकी ठोडी पकडकर, ऊपर उठाकर कहा—"सचमुच सुशीला है। यह कपड़ा तूने सिया है?"

"जी" इतना कहकर बालिका पीछे हट गई। उसने अपने फटे और

ओढ़े वस्त्र को यथा सम्भव सम्भाला। फिर उसने कहा—"हुजूर, मुझे बड़ी देर हो रही है।"

राजा साहब ने अतृप्त नेत्रों से उसे घूरकर कहा—"शाम को चार बजे बिल के रुपये ले जाना, अभी तुमको इनाम मिलेगा।"

इसके बाद राजा साहब ने नौकर को बुलाकर पाँच रुपये लड़की को इनाम देने की आज्ञा दी। परन्तु लड़की ने इनाम लेने से साफ इन्कार करके कहा—"अगर सरकार अभी रुपये दे दें, तो मुझे मेरी मजदूरी मिल जाती। मैं बहुत गरीब हूँ, मुझे पैसों की बड़ी जरूरत है।"

राजा साहब हँसकर बोले—"तुम इनाम क्यों नहीं लेतीं ?"

"माँ की आज्ञा थी कि सिवा मजदूरी के और किसी से कुछ लेने में कुल-मर्यादा जाती है।"

राजा साहब चुप हुए। वे कुछ देर तक घूर-घूरकर लड़की को परखते रहे। उस मूर्तिमान करुणा को देखकर भी उनके मन में करुणा के स्थान पर विनोद का भाव प्रबल हो रहा था। जिन्होंने कष्ट कभी देखा नहीं, जो कभी दरिद्रता से मिले नहीं, जिनके हृदय में दया के स्थान पर लालसा, प्रेम के स्थान पर वासना, और सहानुभूति के स्थान पर स्वार्थ भरा हुआ है, वे गरीबों पर क्यों दया करें ! उन्होंने कहा—"रुपये शाम को आकर ले जाना।"

बालिका मालकिन के पास सन्देशा लेकर पहुँची। पर वहाँ भी उसे वही जवाब मिला, और वह भग्न हृदय से फिर अपने घर लौटने लगी। पर जाय कहाँ ? बिना किराया दिए वहाँ जाना सम्भव नहीं। बालिका न कुछ सोच सकती थी, न कर सकती थी। वह उस समय रो भी न सकती थी। वह निर्जीव कठपुतली की तरह अपने घर न जाकर, किसी और ही तरफ जा रही थी।

यह तो था, पर यही सब कुछ न था। उसके पीछे एक और विपत्ति थी, जिसका उसे जरा भी ज्ञान न था। एक मनुष्य राजा साहब की कोठी से उसके पीछे लग रहा था—ज्यों ही बालिका शून्य जगह पर पहुँची, उसने आगे बढ़कर कहा—"कहाँ जा रही है ?"

बालिका सावधान हुई। उसने ध्यान से देखा। एक नया भय उसपर

सवार हुआ। उसने घबराई दृष्टि से इधर-उधर देखा, और सूखते कण्ठ से कहा—"मेरा मार्ग क्यों रोकते हो?"

मनुष्य ने निर्लज्जता से कहा—"यह रूप-सुधा लेकर कहाँ भटक रही है, कोई लूट ले, तो?"

बालिका पूरा मर्म न समझी, पर मनुष्य का आशय समझ गई। मनुष्य ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"जाती कहाँ हो, जरा बात सुन लो, फायदे की बात है।"

बालिका ने कुछ कहा नहीं। वह पुरुष की ओर ताकने लगी। पुरुष ने कहा—"देखो, राजा साहब कैसे सुन्दर और सजीले हैं; वे जी-जान से तुम पर मोहित हैं। बस, तकदीर खुली हुई समझ, और मेरे साथ चल, आज से ही रानी की तरह रह।"

एकदम इतनी बातें? बिल्कुल अपूर्व, पर बिल्कुल असह्य! बालिका लौटकर भागी। मनुष्य ने लपककर हाथ पकड़ लिया। बालिका जोर करने और चिल्लाने लगी। अब उसने उसके मुंह में कपड़ा ठूंस दिया। लड़की यथाशक्ति हाथ-पैर मारने लगी, पर वह बलिष्ठ पुरुष उसे पकड़े हुए था। निकट एक गाड़ी खड़ी थी। मनुष्य ने इशारा करके उसे बुलाया।

हठात् एक युवक उस मनुष्य पर टूट पड़ा। लड़की उसके हाथ से छूट-कर अलग जा पड़ी। दोनों गुथ गए, और उनमें खूब चोटें चलने लगीं। लड़की ने दुष्ट के हाथ से छूटते ही चिल्लाना शुरू किया। तीन-चार आदमी और आ गये, और दुष्ट भाग गया। युवक ने अपने कपड़े झाड़कर देखा—बालिका एक ओर खड़ी है। उसने उसके पास पहुँचकर कहा—"तुम्हारा घर कहाँ है? चलो, मैं पहुँचा दूं।"

बालिका चुपचाप चल दी। पीछे-पीछे युवक चल पड़ा।

घर आ गया। अब किराये का भय अधिक न था—क्योंकि उससे अधिक भय उसने देख लिया था। वह घर में घुसी, युवक भी घुसा। कोठरी में जाकर देखा—एक मिट्टी का घड़ा, टूटी चटाई और एक असंख्य पैवन्द-लगी धोती को छोड़कर कुछ न था। तमाम घर पर दृष्टि डालकर युवक ने बालिका पर दृष्टि डाली। दृष्टि क्षण-भर दृष्टि से लड़ी और धरती में धँस गई।

युवक ने सब कुछ समझ लिया, और कहा—"क्या यही तुम्हारा घर है ?"

बालिका ने नीची नजर से कहा—"जी।"

"तुम्हारा और कोई है ?"

"नहीं।"

"अकेली ही हो ?"

"जी।"

"गुजर कैसे करती हो ?"

"कुछ सिलाई का काम मिल जाता है।"

"बहुत ठीक; क्या तुम कमीजें सी सकती हो ?"

"जी हाँ।"

"आज ही दे सकती हो ?"

"जी हाँ।"

"सिलाई क्या लोगी ?"

युवक मुस्कराहट न रोक सका, पर बालिका लाज से गड़ गई।

क्यों ?—यह हम क्या जानें ? प्राणियों के हृदय के भीतर—गहरे पर्दों में पता नहीं, क्या-क्या होता रहता है। जिह्वा पर बातें बहुत कम आती हैं, पर होंठों पर और आँखों पर तो बेतार की तारबर्की चलती ही रहती है।

युवक जल्दी से चला गया। लड़की धन्यवाद भी न दे सकी, नाम भी न पूछ सकी, फिर कभी मिलेंगे या नहीं, यह भी न पूछ सकी। परन्तु यह सब बातें जानने को वह व्याकुल हो गई। क्यों ? अब इस 'क्यों' का जवाब कौन दे ? हमें तो किस्से का सिलसिला जारी रखना है।

युवक के नीचे उतरते ही मकानवाली मिली। उसने छूटते ही लड़की को गाली देनी शुरू की। लड़की में अनेक ऐब गिनाये, पर सबका कारण किराया न देना था। युवक ने पूछा, "कितना किराया है ?"

बुढ़िया बोली—"पूरा डेढ़ रुपया। दो महीने का चढ़ गया है।"

युवक ने दस रुपये का नोट निकालकर बुढ़िया के हाथ पर धर दिया, और कहा—"यह एक साल का पेशगी किराया लो—कभी उसे कड़ी बात न कहना, खबरदार !"

बुढ़िया ने धुंधली आँखें पोंछकर नोट को देखा, और फौरन उसका स्वर बदला। लड़की गऊ की तरह सीधी, बड़ी सुन्दर और सुशीला है। नाम धरनेवाले की भी बुढ़िया ने तारीफ कर डाली।

युवक बाजार गया, और शीघ्र ही लौटकर उसने एक थान कपड़ा लड़की के आगे ला धरा—दो रुपये नकद चटाई पर धर दिये, और कहा—"यह पेशगी सिलाई लो, एक कमीज शाम को जरूर मिल जाय।"

उसने जवाब की भी प्रतीक्षा न की, तेजी से चल दिया। लड़की पागल की तरह देखती रही। उसकी सुन्दर आँखों मे आँसू के बड़े-बड़े मोती छल-छला आये। दोनों रुपये उसने उठा लिये, और किराया चुकाने वह सीढ़ी उतरकर नीचे को चली।

५

"बड़े ध्यान से पढ़ाई हो रही है—बस, अब दफ्तर जाने की ही कसर है।"

भगवती ने पुस्तक से सिर उठाकर देखा—हरसरन की बहन चम्पा खड़ी है। उसे देखते ही भगवती हँसकर बोली—"बस, दफ्तर में कोई जगह खाली हुई, और मैंने नौकरी की। आ बैठ, तू कब से खड़ी है ?"

चम्पा ने बैठकर कहा .

"फिर तो तू हमसे बात भी न करेगी ? तब तो तू मर्द बन जायगी, और फिर दूसरा ब्याह करने मे भी कोई दोष न रहेगा।"

"हाँ, हाँ; पर ब्याह मै तुझसे करूँगी ?"

"मुझसे ?"

"हाँ; हर्ज ही क्या है ?"

"मुझे दूल्हा बनायेगी ?"

"दूल्हा क्यों ? बहू बनाऊँगी—अभी तू कहती थी न, कि मैं मर्द बन जाऊँगी।"

चम्पा ने भगवती को धक्का देकर कहा—"चल परे हो, किताबों में

पढ़कर तूँने यही लच्छन सीखे हैं !"

"लच्छन क्या बुरे है ?"

"बड़े अच्छे" कहकर चम्पा चुप हो गई। कुछ ठहरकर भगवती बोली —"कह तो तुझे भी इन किताबों का पढ़ना सिखा दूं ?"

चम्पा ने कुछ कौतुक से कहा—"मुझे कैसे सिखायेगी ?—और किताब ही मुझे कौन लाकर देगा ?"

"किताबें तो यहाँ गली-गली बिकती फिरती हैं—यह देख, कल तीन पैसे मे यह मोल ली है—बड़ी अच्छी किताब है।"

"तीन पैसे मे इतनी बड़ी किताब ? वाह भई, कल स्कूल से रामू चार आने की जो किताब लाया है—वह तो इससे चौथाई भी नहीं। अच्छा, इस किताब मे है क्या।"

"तोता-मैना का किस्सा।"

"तोता-मैना की सूरत भी बन रही है।—तो इस किताब में क्या बात है ?"

"एक तोता और मैना बात करने लगे। तोता बोला कि औरत की जात बेईमान होती है, चाहे जितनी सम्हालकर रक्खी जाय, बिना बिगड़े नही रहती। मैना ने कहा—'मर्द के बराबर कोई बेपीर नहीं। औरत चाहे मर जाय, पर मर्द किसी के नहीं हुए।' इसी बात पर दोनों ने कहानियाँ सुना-सुनाकर अपनी-अपनी बात की सचाई दिखाई है।"

चम्पा ने अचरज से ठोडी पर हाथ रखकर कहा—"अच्छा ! ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं—देखूं !" कहकर चम्पा पुस्तक हाथ मे लेकर पन्ने उलटने लगी। फिर बोली—"तो इस किताब मे देख-देखकर तुझे कैसे मालूम हो जाता है कि यह बात तोते ने कही और यह मैना ने कही ?"

"हरुफ पहचानकर पढ़ लेती हूँ—तुझे हरुफ पहचानने आ जायें, तो तू भी पढ़ने लगे।"

चम्पा ने जल्दी से कहा—"तो फिर जीता कौन ? मर्द या औरत ?"

"अभी तो मैं पढ़ ही रही हूँ, पीछे यह बात खुलेगी।"

"यह तो बड़ी अच्छी किताब है। इस किताब को तुम मुझे दो। मैं आज रात को 'उन्हें' दिखाऊँगी। वे तो खूब पढ़ना जानते हैं—देखें, मर्दों की बुराई

पढ़कर क्या कहते है।"

भगवती ने तनिक रसिकता से कहा—"क्यों? मर्दों की बुराई तुझे बड़ी भाती है!"

"फिर इसमें मेरा दोष ही क्या है? मर्दों ने हमारे लिये कैसे बन्धन और रोक लगा रक्खे है और आप, आगे नाथ न पाछे पगहा।"

भगवती ने कुछ गम्भीर बनकर कहा—"तू ही जाने बहिन! मर्दों से तेरा ही पाला पड़ा है।"

चम्पा ने बीच ही में बात काटकर कहा—"और तू भी तो मर्दों की साँसत भुगत रही है। तेरे भैया की बहू के मरते देर न हुई—और तेरही को ही सगाई चढ़ गई। परन्तु तू सारी जिन्दगी रँडापा भुगत कर भाभी की जूतियाँ खाया कर—बैठी-बैठी भाई के टुकड़े तोड़ा कर, बस।"

भगवती एक-दम उदास होगई। उसने उसी भाव में कहा—"यह तो जो होता आया है, वही होगा। मर्दों के तो ब्याह होते ही है, हमारा कैसे हो सकता है? जो भाग्य में है वही भोगना पड़ेगा। (आंखों मे आंसू भरकर) चाचाजी जीते हैं, तो रोटी भी मिली जाती है, पर भाभी तो जैसी रोटी देगी, दीख रहा है। ऐसी-ऐसी सुनाती हैं कि तुमसे क्या कहूँ, जब देखो टेढी नजर। पर कहूँ किससे? जो चाचाजी से कहकर भाई को फटकार दिलवाऊँ तो और भी आफत आये।"

चम्पा जोश मे बोली—"कैसी आफत आये? घर क्या उसी का है? तू फौरन अपने चाचा से सब बात कह दिया कर, उसका सब जुकाम एक ही फटकार मे झड़ जाया करेगा। पराये घर की झूठन, घी-बेटियों पर बोली कसेगी?"

भगवती और भी उदास होकर बोली—"एक बार मैंने चाचाजी से कह दिया था, तो उन्होंने समझाया, कि यह तो बेचारी आप ही आफत की मारी है—इसे देखकर बहू, तू क्यो कुढ़ा करती है? सो तब तो चुप हो गई, पीछे मुझे तंग करने में कुछ उठा न रक्खा। मेरे लिये कभी शाक नही—कभी बच रहे, तो उठाकर नमक झोंक दिया। कभी बासन माँजने को गर्म पानी न करने दे। मेरी किताब फाड़कर रख दी। धोती चौकी पर पड़ी थी, उस पर दवात उलट दी। भैया से जाने क्या-क्या कह दिया, कि वे भी सीधे मुँह

नहीं बोलते। मैं तो अकेली बैठी इन्हीं किताबों में सिर खपाया करती हूँ।"

चम्पा यह सुनकर बहुत दुखी हुई। कुछ ठहरकर उसने कहा—"नारायणी भी तो आनेवाली थी, कब आयेगी? उसे भी तो तेरी भाभी कच्चा ही खा जायगी। क्यों?

"भैया उसे परसों लेने जायेंगे? उसकी ससुराल से खबर आई है, कि इसे ले जाओ, यहाँ दिन-रात रोती और कलह रचती है?"

"बेचारी फेरों की गुनहगार है।"—कहकर चम्पा ने अपनी आँखें पोंछ डालीं। फिर एक साँस लेकर बोली—"अरी, सब भाग्य के लेख हैं! अच्छा, अब जाती हूँ, रोटी-पानी का समय हो गया है; आजकल मुझे ही खाना बनाना पड़ता है। ला, इस किताब को लेती जाऊँ।"

भगवती उठ खड़ी हुई, अब उसके मुख पर प्रफुल्लता या आनन्द नहीं था। उसने चुपके से पुस्तक चम्पा के हाथ में रख दी और धीमे, आग्रहपूर्ण स्वर में कहा—"चम्पा, ऐसी भी क्या बात; तनिक इधर झाँक तो जाया कर।"

चम्पा ने कहा—"कल आऊँगी, जरूर।"

६

युवक का नाम था—प्रकाशचन्द्र! वह कॉलेज का विद्यार्थी था, और कॉलेज-होस्टल में रहता था। उसके पिता पंजाब में असिस्टेण्ट कमिश्नर थे। युवक की आयु इक्कीस के लगभग होगी। उसका रङ्ग उज्ज्वल, शरीर गठा हुआ, बड़ी-बड़ी आँखें, उभरा हुआ सीना, फूले हुए होंठ, प्रशस्त ललाट और स्वच्छ दाँत साधारणतया एक ही दृष्टि में उसकी ओर मन को आकर्षित करते थे।

वह प्रातःकालीन वायु-सेवन के इरादे से धीरे-धीरे घटना-स्थल की ओर से आ रहा था, कि चीत्कार सुनकर विपत्ति में पड़ गया।

विपत्ति? हाँ, विपत्ति ही तो थी; अजी, जिस विपत्ति ने उसे नई चिन्ता, उद्वेग और विचलित अवस्था में डाला, वह क्या विपत्ति नहीं? फिर चाहे

वह कितनी ही मधुर क्यों न हो ?

वह धीरे-धीरे अपने होस्टल के कमरे में आकर थकित भाव से पड़ गया, उसने भीतर से द्वार बन्द कर लिया। वह अतिशय गम्भीरता से विचार में डूब रहा था, और उसके विचार का विषय थी, वही अनाथ असहाय बालिका। ओह ! कैसी सुन्दर, कैसी प्रिय, कैसी मधुर, परन्तु इतनी दरिद्र कि न खाने का ठिकाना, न रहने का; न वस्त्र, न बिछौना; न सगा न सम्बन्धी ! अकेली यह कुसुम-कली, क्या धरती फोड़कर पैदा हुई ?—या आसमान से गिर पड़ी—? फिर इतना सौष्ठव लेकर ? उसके पास विपत्ति को छोड़कर कुछ नही है। यह मानो यथेष्ट न था, अब और आफत यह कि दुष्टों के यह घृणास्पद अत्याचार !

युवक बहुत दुखी हुआ, पर वह स्वयं सोचने लगा—इस दुःखिनी बाला का मैं कौन हूँ ? क्यों इतना दुःख मेरे मन में उसके लिए उत्पन्न हो गया है, और क्यो मैं उसके लिए इतना सोच रहा हूँ ? क्या मुझे यह उचित है ? उसे मैंने अतातायी से बचाया, उसे घर तक पहुँचाया—यह तो ठीक हुआ, पर कपड़ा सिलवाना, फिर जाने-आने का सिलसिला कायम करना, यह भी क्या उचित हुआ ? क्या मुझे सायंकाल को फिर जाना पड़ेगा ? युवक उठकर टहलने लगा। उसका मन अधीर हो रहा था। वह सोचता—जाने दो, अब कहीं जाने-आने का काम नही है, वह कपड़े की कमीज बनाकर बेच खायगी, कुछ दिन गुजर जायेंगे। फिर न होगा, कुछ खर्च-पानी भेजता रहूँगा। परन्तु आह ! युवक के विचारों मे गड़बड़ी पड़ गई; वह कुछ निश्चय ही न कर सका।

भोजन का समय आ गया—मेस का नौकर कई बार बुला गया, पर प्रकाशचन्द्र उस दिन भोजन को न गये। जितनी ही उस बालिका को भूलना चाहते थे उतना ही वह उनके सम्मुख आती थी, मानो इतनी ही देर में उसकी स्मृति उनके हृदय-पटल पर अमिट-सी हो गई है।

उन्होंने पुस्तक खोलकर पढ़ना चाहा, और भी किसी काम में मन लगाना चाहा, पर किसी काम में मन न लगा। वे ज्यों-ज्यों बालिका के पास सायंकाल न जाने की सोचते, त्यों-त्यों उन्हें भासता कि यह असम्भव है। वे कुछ भी स्थिर न करके चुपचाप लम्बी तानकर पड़ रहे।

सन्ध्या होने लगी, युवक अभी यह स्थिर ही न कर सके थे कि उन्हें वहाँ जाना है या नहीं, परन्तु वे उठकर हाथ-मुँह धोकर कपड़े पहनने लगे।

उनके मन ने पूछा—"कहाँ चले ?"

"यों ही जरा घूमने !"

"वहाँ तो न जाओगे ?"

"नहीं-नहीं।"

मन मानो ठठाकर हँस पड़ा। उसने कान के पर्दे के भीतर घुसकर कह दिया—"हर्ज क्या है ? जरा देख ही आना।"

"नहीं।"

"कमीज सिली या नहीं ?"

"कमीज को जाने दो।"

"उसपर कैसी बीती ?"

"अब और क्या आफत है ?"

"किरायेवाली।"

"उसका तो साल-भर का चुकता होगया।"

"मगर राजा साहब ?"

युवक चमक गया। अरे हाँ, वह हरामखोर राजा उसे कष्ट दे सकता है। युवक तीर की भाँति बालिका के घर की ओर लपका, पर इस जल्दी में अपने बालों को सँवारना और जरा वेश-भूषा की विवेचना करना वह भूला नहीं।

क्यों ?

अब इस बात का हम क्या जवाब दें। उसकी इच्छा।

७

रुपये लेकर बालिका नीचे किरायेवाली के पास गई। वह डर रही थी। उसने डरते-डरते वे रुपये बुढ़िया के सामने रक्खे। परन्तु उसने देखा—बुढ़िया का रङ्ग-ढङ्ग सभी बदला हुआ है। बुढ़िया ने हँसकर कहा—"अरी

८

पाठक उस सप्त वर्षीया हत भागी बालिका को भूले न होंगे। उसका भाग्य फूटे डेढ़ वर्ष हो गया है। उसके पिता और भाई ने कई बार उसे घर ले जाने की चिट्ठी भेजी है, पर कोई उत्तर उनको नहीं दिया गया। बालिका के सास-ससुर मानो उनको अब अपना सम्बन्धी ही न समझते। उनकी धारणा है, कि उनके पुत्र के मरने में सबसे अधिक अपराध इस कुलच्छनी बहू का ही है। ब्याह में जो खर्च हुआ था, उसे याद करके रमाकान्त और भी आग-बबूला हो जाता है। सारे परिवार ने मिलकर यही ठान ली है कि इस अभागिनी से सब बातों का बदला लिया जाय। इसी के अनुसार काम भी होता था। बालिका अपनी जननी की सुखमयी गोद और अपने पिता के दुलार से वंचित होकर, साथ ही पति के सौभाग्य को खोकर सबकी ही कोपभाजन हुई, और इसी नन्ही अवस्था में असह्य यातनाएँ शरीर पर झेल रही है।

पहले वह झिड़की या गाली सुनकर रो उठती थी, पर अब चुपचाप सुन लेती है। उसे नित्य सबसे प्रथम प्रातः चार बजे उठना पड़ता है, और रात्रि में बारह बजे सोने को मिलता है। सर्दी, गर्मी, वर्षा कभी भी उसका परित्राण नहीं है। पहले उसको इससे कष्ट होता था, सारा शरीर थककर चूर-चूर हो जाता था, पर अब वह बात नहीं है—उसे उसका अभ्यास हो गया है। रस्सी और जलती हुई लकड़ियों की मार से पहले उसे बड़ा दर्द हुआ करता था, और वह घण्टों रोया करती थी, पर अब दर्द नहीं होता है। शरीर वैसा ही बन गया है, और आँसू भी कम निकलते हैं। क्या जाने, हैं भी या नहीं? असल बात यह है, कि मनुष्य का मरना हँसी-खेल नहीं। जिन दुःखों को मनुष्य मृत्यु से बढ़कर असह्य समझता है, आश्चर्य की बात है, कि उनको निरन्तर सहने का अभ्यास तो कर लेता है, पर मरने से फिर भी डरता है। बात बड़ी ही अद्भुत है—पर सच्ची है। नारायणी को प्रथम तो मृत्यु का ज्ञान ही न था—वह दुःख से बचने को बहुत छटपटाती थी। पर

सन्ध्या होने लगी, युवक अभी यह स्थिर ही न कर सके थे कि उन्हें वहाँ जाना है या नहीं, परन्तु वे उठकर हाथ-मुँह धोकर कपड़े पहनने लगे।

उनके मन ने पूछा—"कहाँ चले?"

"यों ही जरा घूमने।"

"वहाँ तो न जाओगे?"

"नहीं-नहीं।"

मन मानो ठठाकर हँस पड़ा। उसने कान के पर्दे के भीतर घुसकर कह दिया—"हर्ज क्या है? जरा देख ही आना।"

"नहीं।"

"कमीज सिली या नहीं?"

"कमीज को जाने दो।"

"उसपर कैसी बीती?"

"अब और क्या आफत है?"

"किरायेवाली।"

"उसका तो साल-भर का चुकता होगया।"

"मगर राजा साहब?"

युवक चमक गया। अरे हाँ, वह हरामखोर राजा उसे कष्ट दे सकता है। युवक तीर की भाँति बालिका के घर की ओर लपका, पर इस जल्दी में अपने बालों को सँवारना और जरा वेश-भूषा की विवेचना करना वह भूला नहीं।

क्यों?

अब इस बात का हम क्या जवाब दें। उसकी इच्छा।

७

रुपये लेकर बालिका नीचे किरायेवाली के पास गई। वह डर रही थी। उसने डरते-डरते वे रुपये बुढ़िया के सामने रक्खे। परन्तु उसने देखा—बुढ़िया का रङ्ग-ढङ्ग सभी बदला हुआ है। बुढ़िया ने हँसकर कहा—"अरी

बावली, किराया तो मुझे मिल गया है !"

"कहाँ से मिला ?"

"वे बाबू साहब दे गये थे ?"

बालिका चकित-सी खड़ी रह गई। बुढ़िया ने युवक की प्रशंसा के गीत गाने प्रारम्भ कर दिये। बालिका ने पूछा—"क्या दे गये।"

"दस रुपये, साल-भर का पेशगी।"

"तुमने लिये क्यों ?"

बुढिया ने विस्मित होकर बालिका की तरफ देखा; उसने कहा—"इसमे क्या बुरा किया ?"

बालिका वहाँ न ठहरकर ऊपर चल दी। उसकी मुट्ठी मे वह दो रुपये थे। उन्हें खूब जोर से मुट्ठी मे दबाकर, वह धरती मे लोटकर रोने लगी। मानो उसका हृदय फटा पड़ता था। आँसुओं का वेग नदी की भाँति बह चला।

ओह, वह कौन है ? इतना सुन्दर, शरीर और मन दोनो से ऐसा दाता ! उसने मेरे जीवन और इज्जत दोनों की रक्षा की।

एक ही झोंक में वह बहुत-सी बातें सोचने लगी। वह अब बिल्कुल अबोध बच्ची तो थी नही, उन्नीस वर्ष की युवती थी। वह अपनी परिस्थिति और दयनीय दशा को समझती थी। जो-जो बातें इस समय उसके मस्तिष्क मे उमड़ रही थीं, उन्होंने उसे अधिक रोने न दिया। वह आकर बैठ गई और सोचने लगी। वह चिर विस्मृत विवाह का खेल, वह अति दूर का ससुराल-गमन, वह माता का प्यार और मृत्यु, वह विपत्ति के समुद्र मे असहाय डूबना, और इस एक युवक के द्वारा एकाएक कठिन समय पर उसका उद्धार होना—"आह, यदि वह···।" युवती मानो कोई बहुत ही भयङ्कर बात सोचने लगी। उसने दोनों हाथों से मुंह छिपा लिया। अब फिर उसका रुदन उमड आया। हठात् उसके मुँह से निकल गया—"यह सब भाग्य का दोष है। भाग्य की रेखा भी कितनी टेढी, कितनी दुरूह और कितनी दु साध्य है ! हे परमेश्वर ! मुझ दुखिया को जो दु.ख था, वही बहुत था, अब यह नई विपत्ति कैसे सही जायगी ?"

वह भूखी-प्यासी बालिका अब सब कुछ भूलकर उसी युवक की

को बार-बार हृदय से निकालने की चेष्टा कर रही थी। मानो वही युवक तीर की गाँस की भाँति उसके कलेजे मे घुस गया हो। कभी वह गम्भीर सोच मे डूब जाती, कभी वह रोने लगती। कभी वह बेचैनी से उठकर टहलने लगती। हठात् उसे स्मरण हो आया—वे आज सन्ध्या को आयेंगे। कमीज तैयार रहनी चाहिये। मगर नाप ? नाप तो कुछ मालूम ही नही। यदि ठीक न बैठी, बिगड गई—तब तो बडी आफत है। बेचारी बालिका सब-कुछ भूलकर अब कमीज की नाप-तोल की फिक्र में पड गई। अब वह कमीज को सिये किस भाँति और न सिये, तो अपने उपकारी उस सुन्दर उदार युवक की नाराजी कैसे सहे ?

उसने कई बार कैंची ली और रख दी। कपड़ा बिगड जाने का भी भय था। परन्तु वादे के अनुसार उसे कमीज तो तैयार कर रखनी ही चाहिये। उसने साहस करके कमीज काट डाली और अपने खाने-पीने की जरा भी चिन्ता न कर कमीज सीने लगी।

धीरे-धीरे सन्ध्या-काल आ गया। बालिका ने कमीज तैयार कर, तह करके रख दी, और धड़कते हृदय से युवक के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी।

जीने में पद-ध्वनि हुई और युवक सामने आ खड़ा हुआ। बालिका खड़ी हो गई। वह स्वागत का एक भी शब्द मुँह से न निकाल सकी। युवक भी कुछ न बोल सका। कुछ समय तक दोनों चुपचाप खडे रहे।

युवक ने पूछा—"कमीज तैयार हो गई न ?"

"जी।"

"जरा देखूँ।"

बालिका ने कमीज हाथ मे दे दी। युवक ने खोलकर देखा। एक मन्द हास्य की रेखा उसके होंठो पर घूम गई। उसने कमीज की आस्तीन-गला नापकर देखा—बहुत ओछी थी। उसने झटपट कोट उतारकर कमीज पहन ली। कमीज उसके जिस्म मे फँस गई। युवक ने हँसकर कहा :

"बहुत ठीक, अब आठ दिन उपवास करके शरीर को छोटा करना पडेगा, तब यह कमीज ठीक बैठेगी ?"

बालिका लाज मे गड गई। वह नीचा सिर किये खडी रही। थोड़ी देर

बाद उसने कहा—"क्षमा कीजियेगा, मैं आपका नाप न ले सकी, इसी से ऐसा हुआ। आप मेरी मजदूरी से इसके दाम काट लें, और कृपाकर अपनी कमीज दे जायें, जिसके नाप से और कमीजें सी दी जायें।"

"दाम काटने की बात तो पीछे देखी जायगी। पर कमीज मैं तुम्हे दे जाऊँ, तो क्या नंगा घर जाऊँ?" युवक हँस पड़ा। बालिका ने मधुर स्वर मे कहा—"कल कष्ट करके आप एक और कमीज दे जाइयेगा।"

"अब कल आना तो आफत है। न हो तुम नाप ही ले लो, जब मैं ही यहाँ खड़ा हूँ, तब कमीज क्या करोगी?"

बालिका भयभीत-सी होगई। राम-राम—क्या वह उस युवा पुरुष के शरीर का नाप ले! क्या इसमे स्पर्श होना सम्भव नही? और-और—नही-नही, ऐसा तो वह कर ही न सकेगी!

बालिका को पेसोपेश में पड़ते देख, युवक ने कहा—"नही तो जाने दो, कपड़ा वापस दे दो, कमीजे अन्यत्र सिल जायेंगी।"

बालिका ने कातर नेत्रों से युवक को देखा—वह कुछ बोली नही। होंठ काँपे, मगर स्वर न निकला।

युवक के शरीर मे विद्युत-प्रवाह उत्पन्न हो रहा था। उसने कहा—"सुशीला, तुम सिलाई का काम करती हो, परन्तु बिना नाप-तोल किये यह काम चलेगा कैसे?"

सुशीला ने कहा—"आपको मैंने कह तो दिया ही है, मैं दुखिया हूँ, और बहुत गरीब हूँ, वे दो रुपये तो रखे है पर जो कमीज खराब होगई है, उसके बदले दाम देने को मेरे पास कुछ नही है, अगर मजदूरी न करूँगी, तो भर-पाई कैसे होगी? आप कृपा कर, मुझे ही कमीजें सीने दीजिये—कल कष्ट करके एक कमीज दे जाइयेगा।"

युवक स्थिर न रह सका। उसने जरा आगे बढ़कर कहा—"क्या कहा? वे दो रुपये रखे हैं! तुमने उन्हें खर्च नही किया? अच्छा बताओ, आज तुमने खाया क्या है? बताओ—जल्दी बताओ।"

बालिका कहती क्या? क्या झूठ बोलती? अपने कृपालु उद्धारक के सामने यह सम्भव ही न था, फिर क्या सत्य कहती कि तीन दिन से अन्न का दाना उसके मुख मे नही गया है? ना, यह सम्भव न था। वह चुपचाप खड़ी

धरती देखती रही।

युवक ने और जरा आगे बढ़कर कहा—"सुशीला !"

बालिका धरती की ओर देखती रही।

युवक ने फिर कहा—"सुशीला ! बहन !"

बालिका ने दृष्टि उठाई। उसकी आँखों से दो बूंद आँसू टपक गये। युवक ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया। उसने कहा—"मेरी अभागिनी गरीब बहिन, तुम्हें ईश्वर की सौगन्ध है, कह—कब से भूखी है ?"

सुशीला की आँखों से आँसू बह चले। वह बोल ही न सकी। युवक ने कहा—"तेरे होंठ सूख रहे हैं, शरीर काँप रहा है, रंग पीला हो रहा है। सच बोल—तूने कब से नहीं खाया ? तुझे बताना पड़ेगा—तुझे मेरी कसम···।"

"आह, कसम न दीजिये—" सुशीला के मुख से चीख निकल गई। उसने कहा—"मैंने परसों से कुछ नहीं खाया है।"

युवक ने कहा—"मैं तुम्हें रुपये दे गया था।"

"मैं उतने की मजदूरी बिना किये उन्हें कैसे काम में ला सकती थी ?"

"और यदि किरायेवाली को देने पड़ते ?"

"किरायेवाली पर मेरा वस न था, पेट पर तो मेरा वस है।"

युवक के नेत्रों में आँसू भर आये। वह चुपचाप बाहर आया—और थोड़ी ही देर में बाजार से कुछ खाने का सामान लेकर आ गया। सामग्री को धरती पर रखकर उसने कहा—

"सुशीला, मेरी एक और बहन थी, पर तुमसे बहुत छोटी—उसकी स्मृति ही मेरे लिए ससार में सत्य है, शेष सब असत्य है। मेरी माँ नहीं—पिता हैं, आज मैं सर्व-शक्तिमान् परमेश्वर के समक्ष साक्षी करके कहता हूँ कि तू वैसी ही मेरी बहिन हुई। मैं अपनी स्वर्गवासिनी माता के प्राणों की भी शपथ खाता हूँ, कि इस जन्म में तू सदा मेरे जीते-जी बहिन रहेगी। बस, अब दोपने के भाव की जरूरत नहीं। ले, अभी मेरे सामने बैठकर खा। अभी खा।" इतना कहकर युवक बिना ही किसी प्रकार के उत्तर की प्रतीक्षा किये धरती पर बैठ गया और सुशीला का हाथ पकड़कर उसने अपने पास बैठा लिया।

सुशीला ने आँख फाड़कर देखा। वह कुछ समझ ही न सकी। पर वह

न बोली, न रोई, धम से बैठ गई।

"अभी जा, मैंने कहा न, अपने सामने खिलाऊँगा।"

सुशीला चुप रही।

"मुझे दु:ख क्यों देती है ?"

"आप······"

'खा।"

"आपने यह क्या किया ?"

"आप-आप न कर।"

"सुशीला सकोच मे भरकर बैठ गई। युवक ने कहा—"खा।"

"अभी मुझे भूख नही।"

"फिर आप···यहाँ 'आप' कौन है ?"

सुशीला ने झिझकते हुए कहा—"तु—तुम कुछ खालो, मैं पीछे खाऊँगी।"

युवक ने क्रुद्ध होकर कहा—"तो अब मै रोता हूँ।"

"मै हाथ जोडती हूँ, जिद न करो।"

"मेरी अच्छी सुशीला—खा ले।"

"पहले तुम······"

"अच्छा, हम दोनो ही खायेंगे।"

दोनों ही ने साथ भोजन करना शुरू किया।

खा-पीकर सुशीला ने युवक के हाथ धुलाकर, उसके निकट आ उसके पैर छुए ! वह इस बार सिसक-सिसककर रो उठी, और फिर धरती मे गिर गई। वह कुछ कहना चाहती थी—पर कह न सकी।

युवक भी रो रहा था। यह रुदन कितना प्रिय, कितना मधुर और कितना पवित्र था—इसे कौन बताए ? सुशीला ने कहा—"भाई, तुम्हे ईश्वर ने इस अभागिनी की रक्षा को भेज दिया—यह क्या अच्छा हुआ ? तुम किसी बडे घर के दीपक हो; मुझ अभागिनी के लिये क्या-क्या कष्ट उठाओगे ?"

युवक की आँखो से आँसू जारी थे। उसने उसका हाथ पकडकर पास बैठा लिया। फिर कहा—"सुशीला ! हमारी माता बड़ी पवित्र, दयाशील थी।

क्या कभी कल्पना कर सकती हो? वे कहती थी—'हमारी एक बिटिया भगवान् ने ले ली।' उसके वे बडे गुन गाया करती थीं। वे सदा कहतीं—'मेरी बेटी अब तक घर-बार की होगई होती।' मुझे आज तुम मिल गई। क्या हमारी माता हम लोगों को न देखती होगी। यह देखो—"उसने जेब से माता का फोटो निकालकर सुशीला को दिखा दिया। सुशीला उसे एकटक देखती रही। युवक ने फिर कहा .

"सुशीला, यदि माता जीवित होती—तो तुम्हे प्यार करती, पर अब तो वह काम मुझे करना पडेगा; मैं तुम्हारा बडा भाई हूँ। तुम्हें मेरे साथ घर चलना पडेगा। एक महीने बाद ही छुट्टियाँ है। और तब तक तुम्हें यही रहना पड़ेगा, पर कष्ट न पाना, मैं नित्य ही आऊँगा।"

इतने मे मजदूर बहुत-सा आटा, दाल, घी आदि सामान लेकर आ गए। सुशीला ने पूछा—"यह क्या?"

"पेट-पूजा का सामान! और क्या।"

"इतना सारा कौन खायेगा?"

"सुशीला खायेगी।"

"इतना उसके पेट मे समायेगा?"

"जो बचेगा, उसे भाई खायेगा, भाई को भीमसेन से कम न समझना।"

सुशीला हँस पडी। युवक को चाँद मिल गया। मजदूरों को पैसे देकर उसने विदा किया। उसके बाद वह उठ खड़ा हुआ। सुशीला ने कहा :

"कल कमीज लेते आना।"

"अच्छी बात है। मगर सिलाई?"

सुशीला फिर हँस पडी। युवक एक बार आनन्द का प्रश्वास ले, जल्दी-जल्दी सीढी से उतर होस्टल की ओर लपका। वह तेजी से भागा जा रहा था। रात हो गई थी।

८

पाठक उस सप्त वर्षीया हत भागी बालिका को भूले न होंगे। उसका भाग्य फूटे डेढ़ वर्ष हो गया है। उसके पिता और भाई ने कई बार उसे घर ले जाने की चिट्ठी भेजी है, पर कोई उत्तर उनको नहीं दिया गया। बालिका के सास-ससुर मानो उनको अब अपना सम्बन्धी ही न समझते। उनकी धारणा है, कि उनके पुत्र के मरने में सबसे अधिक अपराध इस कुलच्छनी बहू का ही है। ब्याह में जो खर्च हुआ था, उसे याद करके रमाकान्त और भी आग-बबूला हो जाता है। सारे परिवार ने मिलकर यही ठान ली है कि इस अभागिनी से सब बातों का बदला लिया जाय। इसी के अनुसार काम भी होता था। बालिका अपनी जननी की सुखमयी गोद और अपने पिता के दुलार से वंचित होकर, साथ ही पति के सौभाग्य को खोकर सबकी ही कोपभाजन हुई, और इसी नन्ही अवस्था में असह्य यातनाएँ शरीर पर झेल रही है।

पहले वह झिडकी या गाली सुनकर रो उठती थी, पर अब चुपचाप सुन लेती है। उसे नित्य सबसे प्रथम प्रातः चार बजे उठना पड़ता है, और रात्रि में बारह बजे सोने को मिलता है। सर्दी, गर्मी, वर्षा कभी भी उसका परित्राण नहीं है। पहले उसको इसमें कष्ट होता था, सारा शरीर थककर चूर-चूर हो जाता था, पर अब वह बात नहीं है—उसे उसका अभ्यास हो गया है। रस्सी और जलती हुई लकडियों की मार से पहले उसे बड़ा दर्द हुआ करता था, और वह घण्टों रोया करती थी, पर अब दर्द नहीं होता है। शरीर वैसा ही बन गया है, और आँसू भी कम निकलते हैं। क्या जाने, है भी या नहीं ? असल बात यह है, कि मनुष्य का मरना हँसी-खेल नहीं। जिन दुःखों को मनुष्य मृत्यु से बढ़कर असह्य समझता है, आश्चर्य की बात है, कि उनको निरन्तर सहने का अभ्यास तो कर लेता है, पर मरने से फिर भी डरता है। बात बड़ी ही अद्भुत है—पर सच्ची है। नारायणी को प्रथम तो मृत्यु का ज्ञान ही न था—वह दुःख से बचने को बहुत छटपटाती थी। पर

न मालूम किसने उसे सिखा दिया कि मृत्यु की गोद में अच्छी शान्ति मिल जाती है। बालिका उस शान्ति के लिए लपकी तो उठी थी, पर यह न समझ सकी, कि अन्तत मृत्यु से भेंट होगी कैसे ! परन्तु जिस अन्तर्य-शक्ति ने उसे इस अवस्था में इतना ज्ञान करा दिया था, उसने यह भी समझा दिया कि घटना-चक्र में वह स्वयं ही धीरे-धीरे उसी शान्तिदायिनी मृत्यु की ओर अग्रसर हो रही है—जिस पर उसका जीवन आप ही भटक रहा है। यही मृत्यु का पथ है—यह समझकर वह अद्भुत धीरज, अगम्य शान्ति और आश्चर्यजनक सहनशीलता से उस भयानक पथ पर बढ़ी चली जा रही थी। बालक पति के मरने के बाद, बालिका विधवा का जीवन ऐसा ही अद्भुत, वीभत्स और भयानक हो रहा था !

पाठक ! हमारी यह कहानी एकदम कहानी नहीं है। विश्वास रखिये, कि दयाधाम हिन्दूधर्म के पवित्र पर्दे में छिपी असंख्य बालिकाएँ ऐसी ही कठिन और उग्र तपस्या कर रही हैं। तिस पर भी वे उन्हें अबला कहकर अपमानित करने में लज्जित नहीं होते ! अपार शारीरिक कष्ट से मर्मच्छेदी पीर, घोर मानसिक ताप की भयंकर ज्वाला, और दुस्सह अनादर और कड़ी मार को बिना प्रतिकार के धीर भाव से जन्म-भर सह सकने की शक्ति जिस साढे आठ वर्ष की बालिका में है—उसे नगण्य समझकर हम क्या अपने हृदय की गौरव-रक्षा कर रहे हैं ?

ऐसे ही दयालु हिन्दूधर्म की उदारता, दया और प्रेम का आस्वादन अभागिनी बालिका नारायणी अपनी ससुराल में कर रही थी। हाड़-मांस के शरीर में और कहाँ तक सहा जाता ? अन्तत: वह खाट पर गिर गई और अब उसे दीख गया कि वह शान्तिदायिनी गोद जिसके लिए उसे देर से लालसा थी, प्राप्त होने में देर नहीं है। यह बात घर के लोग भी जान गये थे, पर कोई उसके लिए विशेष दुखी न था—कोई-कोई तो नित्य यह प्रार्थना करते थे कि भगवान् इसे उठा ही ले। निदान, नारायणी के कान में ज्यों ही यह शब्द पड़ा, वह धीरज से उस दिन की बाट जोहने लगी, पर उसकी इच्छा पूर्ण न हुई। उसके ससुराल वालों ने जब देखा, कि अब इसका बचना कठिन है, तो उन्होंने हारकर जयनारायण को चिट्ठी लिखकर बुलाया और हर-नारायण अपनी बहन को लेने तुरन्त चल दिया।

दस बजने मे दो-चार मिनट की देर है। हरनारायण अपनी बहन को ससुराल से लेकर आज तीसरे पहर आये है, उनका मुँह बड़ा उदास है। तब से अब तक उन्हे भीतर जाने का अवकाश नही मिला है। भोजन भी पिता-पुत्र ने नही खाया है। नारायणी के ससुरालवालो का अत्याचार और पशु-भाव देख-सुनकर ही उनका पेट भर गया है। जयनारायण कभी लम्बी साँसें खीचते, कभी दो बूंद आँसू बहाते है। बैठक मे और दो-चार मनुष्य बैठे थे। दैव-विपाक पर विवशता और धीरज की दो-चार बात कहकर, वे भी एक-एक करके खिसक गए है। पिता-पुत्र कुछ देर स्तब्ध बैठे रहे। तब जयनारायण ने कहा—"जाओ बेटा, अब तुम भी आराम करो, रास्ते की थकावट है।"

हरनारायण धीरे-धीरे उठकर अपने शयनागार मे आए। शयनागार मे भी सन्नाटा था—हरदेई पलग पर दरवाजे की ओर पीठ किये बैठी थी। उसकी इस निद्रा में कितना भाग मान का था और कितना मकर का, सो भगवान् ही जानें।

हरनारायण ने क्षण-भर अपनी स्त्री की ओर देखकर कहा—"क्या सो गईं ?"

हरदेई चुप रही।

हरनारायण ने अबकी बार हाथ पकडकर कहा—"जरा उठो तो।"

हरदेई ने जरा कुनमुनाकर कहा—"क्या है ?"

"क्या जाने क्या है, तुम्हारी नीद भी छकड़ों मे चलती है।"

हरदेई उठ बैठी—कुछ सुस्ताकर और दो-एक जम्हाइयाँ लेकर उसने ताने के ढंग पर कहा—"तुम्हे फुरसत मिल गई जमाने-भर की बात-चीत से ?"

"नीचे बैठक मे दो-चार आदमी आ बैठे थे—सो आना नहीं हुआ, और अभी दस ही बजे है—पर तुम्हारी नीद का भी कुछ ठीक है ?"

"मेरी नीद तो तुम्हे खटक गई—पर तुम तनिक चार-चार घण्टे अकेले बैठकर देखो—नीद आती है, या नही। ऐसी क्या कमाई करके लाये हो, कि घर आने-बैठने को फुरसत ही नही मिली ?" यह कहकर हरदेई ने वक्र दृष्टि से पति का तिरस्कार किया।

हरनारायण ने कपडा उतारते-उतारते कहा :

"तुम्हारी कैसी बुरी आदत है ! जरा आदमी की तबियत देखकर नाराज हुआ करो, बात-बात मे झक-झक अच्छी नही होती। लो, यह कोट खूँटी पर टाँग दो।"

हरदेई ने कोट खूँटी पर रखते-रखते कहा :

"मेरी बात क्या तुम्हें सुहाती होगी ? सीधी बात कहती हूँ, तो उल्टी लगती है।"

हरनारायण ने कुछ जवाब नही दिया। वे चुपचाप कपड़े उतारकर चारपाई पर लेट गये। हरदेई भी कुछ बडबडाकर पखा लेकर खडी हो गई।

हरनारायण ने कुछ ठण्डे होकर कहा—"खड़ी क्यों हो ? बैठ जाओ न ?"

"मैं अच्छी तरह खडी हूँ···"

"क्यों, ऐसी उदास क्यो हो ?"

"कहाँ ? उदासी हो मेरी जूतियों को ! मुझे परवाह किसकी है ? मैं क्या मोल खरीदी आई हूँ, या कोई कुजात हूँ ?"

"वाह-वा ? तुम्हारा मिजाज तो बिखरा ही जाता है ! कहता कौन है कि तुम मोल आई हो ?"

"तुम्हें किसी की सुनने की फ़ुरसत ही कहाँ है ? अपने पास-पड़ोसी और बाप-बेटों की सलाह खतम हो जाय, तब न ? राम जाने कहाँ के किले फतह करने है।"

"इतनी ही देर मे तुमने ऐसी लम्बी-चौड़ी बातें कह दी—पर असल बात तो रह गई। ननद-भावजो मे लडाई हुई मालूम होती है ! जाते-जाते इतना कह गया था, कि मिलकर रहना—भगवती से लड़ना नही।"

हरदेई की आँखो मे आँसू भर आये। उन्हे आँचल से पोछकर वह कहने लगी

"तुम्हारे घर मे सब दूध-धोये है—लडाकी तो एक मैं ही हूँ। फिर तुम यहाँ से निकाल क्यों नही देते ? मवेरे ही छज्जू मिस्सर को बुलाओ, मैं तो अपने बाप के यहाँ चली जाऊँगी—तब अपनी भोली-भाली बहनो को लेकर रहना। बस, आँख फूटी, पीर गई। रोज की झक-झक तो न रहेगी।"

"सस्ते छूटे। नैहर में ही रहना था, तो तुमने ब्याह क्यों किया? मजे से वहीं रहती न?"

"ब्याह के लिए खुशामद किसने की थी? तुम्हीं न लूलू का स्वाँग बनाकर हमारे द्वार पर गये थे।"

इस लूलू के स्वाँग की बात पर हरनारायण को क्रोध आते-आते हँसी आ गई! उसी हँसी में वे बोले :

"खूब याद रक्खी भाई, वह स्वाँग की बात तो। (हाथ पकड़कर) अब चलो, रहने दो—मिजाज ठण्डा करो। आदमी को चाहिए, जैसी पड़े, भुगते। तुम्हीं बताओ, इन बेचारियों का अब धरती-आसमान पर है कौन? अब तो उन्हें तुम्हारा ही आसरा है। दुक्खम-सुक्खम जैसे बने, रखना ही पड़ेगा।"

उकताकर हरदेई बोली :

"तो तुम्हें रोकता कौन है? पर मैं साफ ही कहती हूँ, मुझसे तो न रहा जायगा। (आँसू पोंछकर) जरा-सी लड़की मेरे सुहाग को कोसेगी! काम-धन्धे का तिनके का सहारा नहीं, और खाने को चाहिए छ: बार। ये हड्डियाँ हैं—इन्हें पीसे जाओ। दो बूढ़े-बुढ़िया, दो धौं—यही बहुत है। रही औरत सो उसे अफीम-संखिया खिला दो—बाल-बच्चों का गला घोंट दो, बस!" इतना कहकर हरदेई ने गम्भीरता से एक लम्बी साँस छोड़ी।

हरनारायण दुखी होकर बोले :

"तो क्या करूँ? इन्हें फाँसी लगा दूँ?—या भीख माँगने को छोड़ दूँ? दर-दर भीख माँगते अच्छा लगेगा?"

"ना—उन्हें तो रानी बनाओ, भीख माँगते तो ये बच्चे अच्छे लगेंगे, जिनकी सूरत भंगी-चमारों से भी बदतर हो रही है—न धोती न कुरता। एक छल्ला मेरे पास नहीं रहा—ब्याह-देहते में कुटुम्ब-परिवार की चार औरतों में जाते लाज से मर जाती हूँ। उनकी टहलनी भी मुझसे अच्छी लगती है। खैर! मुझे तो भाड़ में जाने दो, पर अपनी सूरत देखो। दस जगह से गठा हुआ फिड़क जूता घसीटते फिर रहे हो! आँखें गढे में धँस गई है, मुंह काला पड़ गया है। पैंतालीस रुपये तनख्वाह मिलती है। सवेरे रोटी उतरते देर नहीं होती कि कोट के बटन लगाते-लगाते दफ्तर दौड़े। वहाँ से मरे-खपे दो मील धूप में चलकर घर चार बजे आओ। न तन की सुध न

बदन की ! फिर हाँफते-हाँफते ट्यूशन पढाने भागो, रात को बारह-बारह बजे तक दफ्तर के कागजों में जूझते रहो। खून पिला-पिलाकर बहनों को पालो। मैं घर मे चार बजे से रात के बारह तक कोल्हू के बैल की तरह पिसा करूँ, और मरती-गिरती इधर से उधर फिरूँ?—और तुम्हारी सीधी-सादी बहन किताबों मे सिर फोडा करें। न जाने किस दफ्तर मे जाकर नौकरी करेगी? तिसपर तुर्रा यह है कि 'करनी-ना करतूत और लड़ने को मौजूद'—यह जिन्दगी है? यह तो जान का जजाल है। भगवान्, उठा ले इस धरती से।" इतना कहकर हरदेई टुसुक-टुसुककर आँसू बहाने लगी।

हरनारायण से चारपाई पर लेटा न गया। वे उठकर कमरे में टहलने लगे। हरदेई फिर बोली—"अब दूसरी को लिये आ रहे हैं—मुर्दा हालत मे। निपूते सुसरालवाले भी देखो—भले के ही रहे। बीमार पड़ी, तो यहाँ भेज दी। अब वैद्य-डाक्टरो की हाजिरी बजाना। पसीना बहा-बहाकर कमाओ, और इस तरह उडाओ।" इतना कहकर हरदेई पुन: चुप हो गई।

हरनारायण बहुत दुखी हो रहे थे। हम नही कह सकते, इस दुख मे क्रोध की मात्रा अधिक थी, या लाचारी की, पर कुछ ठहर उन्होंने धीमे स्वर से कहा :

"देखता हूँ, तुम मुझे पागल बनाये बिना न छोडोगी।"

"यह तो तुम्हारी करनी का फल है।"

"आँखो देख साँप किससे निगला जाता है? नारायणी को न ले आता, तो करता क्या? पहिचानी भी नही जाती। जब मैं पहुँचा, तो बुखार से बेसुध पड़ी थी, मुँह लाल हो रहा था। इसी दशा मे छै दिन से पडी थी। किसीको उसकी सुध न थी, हारकर मैंने डाक्टर बुलाया। वे देखकर बोले—'इसे तो दिक का असर हो गया है।' दो दिन तक दवाई दी गई, तब होश मे आई। बुखार भी हलका पड़ा। पर खाँसी चैन नही लेने देती। बुखार हरदम बना रहता है। जिगर खराब हो गया है। तिसपर देखो, मार के मारे कमर नीली पड़ी हुई है। उसे मरी-जीती को पूछनेवाला तो कोई भी नहीं—बोलो, न लाता, तो क्या करता?" यह कहते-कहते उन्होंने अपने आँसू रोके।

इस बार हरदेई का स्त्री-हृदय भी तनिक विचलित हुआ, पर अपनी

धुन में तनकर वह बोली—

"अच्छी बात है—तुम उसे संजीवनी घोटकर पिला देना, उस अभागिनी के जीने में अब क्या सुख है? जब उसका सुहाग ही फूट गया है, तो अब भगवान् उसकी मिट्टी मँगवा लें।"

हरनारायण की आँखें जलने लगी। उन्होंने क्रोध से घूरकर स्त्री की ओर देखा, और काँपती आवाज में बोले—"जो तुम्हे वैसा ही अभागिनी बनना पड़े, तो तुम जहर खाकर मर जाना—भला! सुहाग-फूटी दुनिया में रहती थोड़े ही है, और न उनपर कोई दया करता है! ससार में सब तुम-सी सुहागिन भर रहती है—क्यों?"

हरदेई तैश में आकर कुछ कहना चाहती थी कि हरनारायण ने डपटकर कहा—"चुप रहो—बक-बक करके मेरा दिमाग मत खपाओ। जरा सोने दो। तीन दिन से कमर नही झुकी है। हटो परे हो—कलहनी कहीं की!"

मानिनी हरदेई अपने पति का यह कटु तिरस्कार न सह सकी। वह वही बैठकर टुसुर-टुसुर रोने लगी। हरनारायण भी खाट पर पीठ फेरकर पड रहे। क्या जाने, नीद से उनकी कैसी पटी।

९

इस परिच्छेद मे हम संक्षेप से पाठकों को जयनारायण की स्थिति का परिचय देते है। जयनारायण की अवस्था पचास वर्ष को पार कर गई थी। जब इनके पढ़ने के दिन थे, तब इनके गाँव में न विद्या का वैसा चमत्कार था, और न पढने का सुभीता ही था। फिर भी इन्होने किसी तरह से पास के तहसीली स्कूल से उर्दू मिडिल पास करके पटवारीगीरी का इम्तहान दिया। दो बार फेल होकर पास हुए और आठ रुपये पर बहाल हुए। अब उन्हें बारह मिलते है, पर पटवारियो को तो पाठक जानते ही है। ऐसी-ऐसी बारह तनख्वाह तो महीना खत्म होते कितनी बार जेब में पहुँच जाती है। जो हो, पर फिर भी जयनारायण भला मनुष्य और सरल वृत्ति का आदमी था।

उसकी बोल-चाल, व्यवहार सबमें शराफत और खरापन था। यद्यपि वह पुरानी लकीर का फकीर था, पर एकदम अन्ध-विश्वासी न था। जाति-बिरादरी के प्रवाह मे पडकर सब काम करता अवश्य था, पर मन में तर्क रखता था। बडी लडकी के विधवा हो जाने पर उसकी इच्छा छोटी लड़की की शादी देर से करने की थी पर उसकी स्त्री ने हठ करके बिरादरी और धर्म आदि का भय दिखाकर अपनी बात रखी। अन्त मे उसको ब्याह करना ही पड़ा। पर खेद की बात है कि बेचारे पर सात महीने मे ही वज्र टूट पड़ा। इस सदमे से उसे भयकर कष्ट, और आत्म-ग्लानि हुई। उसकी यह कन्या अत्यन्त प्यारी थी, पर आज वह यह चाहने लगा कि यह अभागिनी मर ही जाय तो अच्छा।

उसकी गृहस्थी जैसी छोटी थी, और जैसा उसे आमदनी का सुभीता था, उससे वैसा कोई कष्ट न था। तिस पर वह हर बात में ध्यानपूर्वक खर्च करता था, इससे उसे पैसे का कभी अभाव न होता था। इसके सिवा पैंता-लीस रुपये उसका लडका पाता था। इस प्रकार उन्हे वैसा अर्थ कष्ट न था, पर दोनों कन्याओ को जन्म-भर खिलाने की बात याद करके कभी-कभी वह अत्यन्त चचल हो उठता था। जमाने का रंग-ढग देखकर और सब तरह की ऊँच-नीच विचारकर वह कुछ उत्तेजित होता, और साहस भी करता, पर भाई-बिरादरी और दूसरे विचार आते ही शिथिल पड जाता था। कभी-कभी वह सोचता था कि जब तक जिन्दा हूँ, तब तक तो चलेगा, पर मेरी आँखें बन्द होने पर इन अभागिनी कन्याओं का क्या होगा? यह किसका मुँह तकती फिरेंगी ?—किस-किसकी गुलामी करती फिरेंगी? ऐसी-ऐसी चिन्ताओं से वह घुलता जाता था !!

जयनारायण के पडोस मे एक बाबू रामचन्द्र रहते थे। वह आर्य समाज के एक साधारण सदस्य थे। पहले कही रेलवे में पचास रुपये वेतन पाते थे। पर उसे छोडकर उन्होने अब कपडे की दूकान कर ली है। यह बडे शिष्ट, सज्जन और मिलनसार थे—जयनारायण से इनकी और भी घनिष्ठता थी। एक दिन जयनारायण बैठे-बैठे अपने दुर्भाग्य की चिन्ता कर रहे थे। इतने में रामचन्द्र ने बैठक में प्रवेश करते-करते कहा—"नमस्ते दीवानजी !"

जयनारायण ने मुँह उठाकर देखा, और उठकर कहा—"आइये-

आइये।"

"हाजिर हुआ," कहकर वह पास ही बैठ गए। थोड़ी देर इधर-उधर की बात-चीत करते-करते रामचन्द्र ने कहा—"नारायणी कैसी है?"

"अब तो आराम है! कुछ खाँसी बाकी है, कभी-कभी ज्वर भी हो आता है, पर बहुत कम।"—इतना कहने के बाद एक ठण्डी साँस लेकर उन्होंने कहा—"निश्चय जानो भाई, वह ऐसा दिन ही क्यों देखती?" इतना कहकर उन्होंने दाँत निकालकर मुस्कराने की चेष्टा की, पर चेष्टा व्यर्थ गई। उनकी आँखों में आँसू छलछला ही आए।

रामचन्द्र ने सहानुभूति से उनका हाथ पकडकर कहा—"दीवानजी! ऐसा क्यों दिलगीर होते हो? आप बुजुर्ग आदमी हैं, ईश्वर की जो इच्छा थी, सो हो गई, अब तो उसका भूल-परिशोध जो हो सके, करना चाहिए। इस तरह से कैसे बनेगा?"

"इसका परिशोध? भाई साहब, जो इसका परिशोध हो सकता, तो प्राण देकर भी करता। पर अब क्या हो सकता है? सचमुच उसका भाग्य फूट ही गया है। न-जाने पूर्वजन्म मे कैसे-कैसे पाप किये थे?"

रामचन्द्र उत्तेजित होकर बोले—"दीवानजी! कैसे दुःख की बात है, कि आपके मुख से भी ऐसी पोच और रद्दी बातें सुनता हूँ। मनुष्य अपनी कुटेव और अन्ध-विश्वास द्वारा हानि उठाता है, पर सब दोष विधाता और भाग्य को देता है। यह कैसे अन्धेर की बात है! आँख लग गई, रेल छूट गई—बस, किस्मत में यही लिखा था। किसी की गाँठ कतर ली, पकड़े गये—यह भी किस्मत में लिखा था। यह केवल कायरो, डरपोकों और मूर्खों का उत्तर है। कोई किसीका खून करके कहे कि इसका मरना यों ही लिखा था, तो क्या सरकार छोड देगी? इसीसे क्या उसका पिण्ड छूट जायगा? खूब! आप बदकारी करें और नाम लें अल्लाह का! एक ही बदजात है, बदजात आदमजात को!!"—इतना कहकर रामचन्द्र चुप हो गये। उनके नेत्रो से उद्वेग टपका पड़ता था। जयनारायण काठ-पुतली की तरह उनकी बातें सुन रहे थे। मानो उनका अपराध मूर्तिमान होकर उनके सामने खड़ा हो गया था।

रामचन्द्र फिर कहने लगे—"विचार तो कीजिए—आपने ही अपनी"

पुत्री को पैदा किया, आपने ही उसे पाल-पोसकर बडा किया, वह सुकुमारी आप ही के हृदय से प्यार से लगी रही। आप ही ने उसकी बचपन में शादी कर दी—इसलिए कि ऐसा न करने से कुछ लोग आपकी ओर उँगली उठाते, ताना मारते। अतएव आपने अपनी पुत्री का भला न देखकर इस इतनी-सी बात के लिए उसे अयोग्य अवस्था में ब्याह दिया। घटनावश वह कुछ दिनो मे विधवा हो गई। अब वह अच्छे-अच्छे वस्त्र नही पहन सकती, शादियो मे शरीक नही हो सकती, जहाँ और स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँसती है, नाच-रँग मे आनन्द मनाती है, आपकी प्यारी पुत्री उसी घर के सडे कोने में पड़ी सिसक-सिसककर रोती है। वह स्वय रोना नही चाहती, उसके ये आँसू प्यारे पति के शोक में नही है, क्योंकि वह क्या पदार्थ है, यह तो उसे अभी ज्ञात ही नही है। उसके मन मे रह-रहकर अन्य लडकियों के साथ मिलकर खेलने की, दिल खोलकर हँसने की, चिडियों की तरह इधर-उधर फुदकने की इच्छा होती है, पर ऐसा करने से आप ही उसे रोकते हैं, कि लोग आप पर हँसेंगे। आपही उसे रुलाते हैं, और आप ही उसे जन्म-भर रुलावेंगे।"

इतना कहते-कहते रामचन्द्र बहुत उत्तेजित हो उठे थे। उन्होने देखा—जयनारायण आँखें फाड़-फाडकर मुँह पसारे उनकी ओर देख रहे हैं। उनके नेत्रों मे भयङ्करता छा रही है।

रामचन्द्र फिर कहने लगे—"हमारे घर मे—हम हिन्दुओं के घर मे, नित्य एक-न-एक त्योहार आया करता है। हमारी स्त्री और माता तक पैरों मे मेहँदी लगावें, उबटन मलें, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनें, और हमारी पुत्री देख-देखकर तरसा करे। उसे जन्म-भर इसी तरह रहना चाहिए। वह कभी अपने पति का दर्शन नही कर सकेगी! वह कभी अपने प्यारे पुत्र का मुख-चुम्बन नही कर सकेगी! उफ! बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक उसे उसी हीन अवस्था में रहना होगा। नित्य रोना, तिरस्कार, धमकी, अपमान सहना, साथ ही कामदेव के कठिन बाणों को सहकर युवावस्था ही क्यो—सारा जीवन व्यतीत करना है। यह सब उसके भाग्य मे लिखा है? उसे इस तरह क्यों रहना पडता है? इसलिए कि आप उसे इस तरह रहने पर मजबूर करते है—जबर्दस्ती करते है, अत्याचार करते हैं।" इतना कहते-कहते रामचन्द्र आपे से बाहर हो गये। कुछ ठहरकर उन्होंने सिर उठाकर देखा, तो

जयनारायण दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर फूट-फूटकर बालकों की तरह रो रहे थे। दुःख से मानो उनका कलेजा मुँह को आने लगा था।

उनको शोचनीय दशा में देखकर भी बाबू रामचन्द्र की उत्तेजना कम न हुई। उन्होंने उस कातर व्यक्ति की ओर ज्वालामय नेत्रों से देखते हुए कहा—"कहिये तो सही, इन सब घटनाओं में पूर्व-जन्म का दोष है, या आपका ?—और अब भी उसकी दशा बदल देना आपके हाथ में है, या और कोई ?"

जयनारायण से न रहा गया। उन्होंने पागलों की तरह चिल्लाकर कहा —"मैं—सचमुच मैं ही हूँ। मैं पिशाचों का पिशाच, और कसाइयों से भी जालिम हूँ। अपनी प्यारी बेटी को मैंने ही डुबोया है। आह!"—इतना कहकर वह फिर रोने लगे।

रामचन्द्र फिर कहने लगे—"यदि आपको उसकी घोर विपत्ति में सहानुभूति प्रकट करनी है, उसकी कष्ट की बेडी काटनी है, तो फिर से उसका विवाह कर डालिए, और देखिए, उसके पूर्वजन्म के संस्कार भाग जाते हैं, और आपको स्वतन्त्रता से काम करने का अवसर मिल जाता है। यदि आप अपनी पुत्री का विवाह बचपन में न करके, जवान होने पर करते, तो फिर देखते कि पुरोहित और नाई की अटकल और ज्योतिषियों की कुण्डली और भाग्य का फेर ठीक बैठता है या आपका कर्म।"

जयनारायण ने अत्यन्त कातर दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए कहा—"यह सब क्या सम्भव है रामचन्द्र बाबू ! मुझ अकेले की जान पर बीतेगी, तो नर्क की भयानक आग में भी कूद पड़ूँगा, पर इन सर्वनाशी हत्यारे जाति-विघ्नों को तो आप देखते ही हैं। बताओ मेरे बाल-बच्चों का कहीं ठिकाना रहेगा ? हाय, मैं कैसा अभागा हूँ !"

रामचन्द्र ने तनिक तेज नजर से उनकी ओर देखकर कहा—"तो फिर यों कहिए, ऐसा करने से आपकी पुत्री को भाग्य नहीं रोकता—आपकी कायरता, आपका डर, आपकी खुदगर्जी रोकती है। इसीलिए आप सब दोष कन्या के भाग्य पर ही लगाना ठीक समझते हैं। बस, एक ही बिना सिर-पैर की बात—"जो लिखा है, वह हुए बिना नहीं रहेगा।—यह क ^ देने से ही किस्सा खतम हो जाता है, झझट मिट जाते हैं ?"

जयनारायण अत्यन्त करुण भाव से अपना ऐसा कटु तिरस्कार सुन रहे थे। रह-रहकर उनके मन मे घोर आत्मग्लानि उत्पन्न हो रही थी, और उनका मुख रामचन्द्र के सामने न उठता था।

रामचन्द्र फिर कहने लगे—"अच्छा, समझ लीजिए, आप छत से गिर गए, खून बह निकला। चोट के मारे बडा कष्ट हुआ। इसे आपकी पुत्री देख रही है, पर वह यह कहकर बैठी रहे कि पिताजी के भाग्य मे गिरना लिखा था, और चोट खाना बदा था, अस्तु, पडा रहने दो—यह उनके पूर्वजन्म के सस्कार का फल है; जो बदा है भोग लेने दो। कहिए, यह बात आपको कितनी अच्छी लगेगी? यह कष्ट तो आपका एकाध दिन मे दूर हो जावेगा, पर पुत्री को जीवन-पर्यन्त दु ख भोगने के लिए पड़े रहने देना कितना बुरा है? किन्तु पुत्रियाँ रोज गिरती हैं, मरती हैं, तड़पती है, बिलबिलाती हैं, और आप अपनी बडी-बडी दोनो आँखें खोलकर देखते है, कभी रो भी लेते हैं, पर ऐसा प्रबन्ध नही करते, कि उनका गिरना बन्द हो, उनके कलेजे के जख्म भर जायें! क्या यही हिन्दुओ का दया-धर्म है? जिन हिन्दुओं को अपनी दया पर बडा अभिमान है, सच पूछो, तो उनके बराबर ससार मे कोई कसाई और क्रूर नही है। छोटे-छोटे भुनगे, चीटी, मकोडे, कौए, कुत्ते आदि पशुओं के लिए तो तुम्हारे पास दया का भण्डार भर रहा है, पर अपनी सन्तान पर ये जुल्म, कि उनकी उठती जवानी पर कुछ भी तरस न खाकर उन्हें ऐसी बुरी मौत मार रहे हो, कि कसाई उतनी बुरी तरह गाय को न मारेगा। कसाई गाय को एक ही बार मे साफ कर देता है, वह बेचारी दु ख मे तो छूट जाती है, पर तुम तो एक वर्ष की दूध-पीती कन्याओ को विधवा बनाकर पापो की नदी बहा रहे हो—उन्हे रोम-रोम मे विष पैदा करने वाले दु ख-सागर मे ढकेलकर, जीते जी दुखाग्नि मे डालकर भून रहे हो, उनकी तडपन को देखकर पुण्य की उत्पत्ति समझ रहे हो! इतना होने पर भी तुम्हारा पत्थर का कलेजा नही पिघलता—तुम्हारी छाती पर साँप नहीं लोट जाता! करोडों विधवाएं तुम्हारी छाती पर मूँग दल रही हैं। इनमें से कोई चुपचाप सर्द आह भरकर भारत को रसातल पहुँचा रही है, कोई कहार, धीवर, कसाई के साथ मुँह काला करके कुल-वश की नाक काट रही है, फिर भी हिन्दू—पवित्र हिन्दू! ऋषि-सन्तान कहलाने की इच्छा रखते है। यदि

अब भी हमें अपने रक्त-वंश का अभिमान है, तो शर्म है—लाख-लाख शर्म है !"

इतना कहते-कहते रामचन्द्र ने ज्वलन्त नेत्रों से जयनारायण की ओर देखा। वे शून्य दृष्टि से उन्हें देख रहे थे ! रामचन्द्र फिर बोले :

"अपने बुजुर्गों को तो देखो, जो दीन-दुखियों का आर्तनाद सुनकर भोजन-भजन छोड देते थे, उस दुखी जन का दुःख दूर करके जल-पान करते थे, या जान खो देते थे। हाय ! उनकी सन्तान आज ऐसी अधर्मी होगयी—करोडो विधवाओं की बिलबिलाहट और हाहाकार सुनकर भी उन्हें सुख की नींद आती है ? जिनकी छाती पर शिला रखी रहे—आठों पहर जवान विधवा कन्या चुपचाप कलेजे का खून पिया करे, उसकी आत्मा फूट-फूटकर रोती रहे, और इन धर्म-धुरियों के हलक में मजे से छतीसों व्यंजन सरक जायँ ! पहचानने से प्रथम ही जिसका एकमात्र जीवन का आधार जगत् से उठ जाय—वह गरीब, अभागिनी तुम्हारे ही पाप से, अँधेरी दुनिया में चक्की पीस-पीसकर, जिसे कुत्ते भी न खायँ—ऐसे सूखे टुकडे खाकर दिन काटे ?—सूअर भी न रहे—ऐसी सडी-मैली कोठरी मे रहें ? बीमार पडने पर, असहाय, भूखी-प्यासी तडप-तड़पकर मर जायँ ?—पर, तुम्हारे पत्थर हृदय टस से मस न हो ! उनके लिये तुम्हारे हृदय मे रत्ती-भर सहानुभूति नही रही ? अधर्मियो ! मुसलमान, इसाई और कसाई भी जिनपर तरस खाते है, पत्थर-हृदय जल्लाद को भी जिनपर करुणा हो आती है—उन दुखियाओं पर दया के अभिमानियो को तनिक भी दया नही आती ? जो लोग अपने को अहिंसा धर्मधारी समझते रहे है, जो लोग दयावान् ऋपि-मुनियो की सन्तान है, उन्ही की दया का यह दृश्य है। यह उन्ही की सभ्यता का नमूना है ! क्या यह सब घोर पाप नही है ? ऐसे अत्याचार क्या दूसरी जाति मे बता सकते है ? कसाई को सब से अधिक क्रूर, निर्दयी कहकर तुम घृणा करते हो, गाली देते हो, धिक्कारते हो, और उनका मुँह नही देखना चाहते। पर [illegible] वह हमसे अधिक घृणित नही है। बिना सींगों की गाय पर—[illegible] बेटियो पर, उनकी छुरी कदापि नही उठती ! हिंसक पशु-पक्षी, [illegible] भेड़िया आदि भी अपने स्त्री-बच्चो पर दया करते हैं। [illegible] अवध्य माना है। जङ्गली जाति भी स्त्री को नहीं सताती, [illegible]"

के सपूत उन्हींका गला घोट कर स्वर्ग का द्वार खोल रहे हैं। छी: छी: !" इतना कहकर रामचन्द्र चुप हो रहे। उत्तेजना के मारे उनका सारा शरीर काँप रहा था। ललाट पर पसीना आ गया था। आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थी। जयनारायण चुपचाप जमीन पर नजर गाड़े बैठे थे।

दोनो चुप, किसी की भी जीभ नही खुलती थी। कुछ देर ठहरकर रामचन्द्र बोले—"अच्छा, अब चलता हूँ। मैंने ऐसी कड़ी-कड़ी बातें कहकर आपका जी दुखाया है, इसके लिए क्षमा माँगता हूँ, पर याद रहे, कि क्रोध या द्वेषवश मैंने यह नही कहा है। आत्मा का दुःख जब नहीं सहा गया, तो कह बैठा। अन्तत. आप मेरे आत्मीय ही तो है, और जब आप पर ऐसी आपत्ति टूटी है, तो मानो मुझी पर टूटी है।"

जयनारायण के आँसू बह चले ! अवरुद्ध कण्ठ से बोले—"आप इससे भी कड़ी-कड़ी सुनाइये, जब पाप मैंने किया है, तो बुरा क्यो मानूँगा ? कृपया जल्दी-जल्दी दर्शन दिया करें।"

रामचन्द्र 'नमस्ते' कहकर चल दिये। एकान्त पाकर जयनारायण फर्श पर गिरकर बालको की तरह रोने लगे।

१०

जयनारायण की स्त्री बड़ी देर से रसोई के लिए बैठी थी। वह अत्यन्त उदास और दुखी चित्त से वहाँ पहुँचे। देर के कारण गृहिणी झुँझलाई बैठी थी। इससे उसने कुछ कठोर बात कहने को स्वामी की ओर सिर उठाया ही था कि मुख पर दृष्टि पड़ते ही समझ गई कि आज कुछ हुआ है। आदमी चाहे लाख छिपाये, पर स्त्री और माता से कुछ छिपा नही रहता। जयनारायण की स्त्री हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। उसने चौके से बाहर आकर कहा·

"क्यों, क्या हुआ ?"

"कहाँ ? कुछ भी तो नहीं !"

"तो ऐसे क्यों हो रहे हो ?"

"कुछ नहीं।"—कहकर जयनारायण ने बात टालने की गरज से कहा —"रसोई तैयार है तो लाओ, परोसो।"

गृहिणी फिर चौके में गई। थाली परोसकर सामने रख दी, और पंखा लेकर स्वामी को हवा करने लगी। गृहिणी ने देखा—आज उसके स्वामी अत्यन्त खिन्न हैं। यह भोजन केवल शिष्टाचार के लिए कर रहे है। परन्तु उसने कुछ पूछना इसलिए उचित न समझा कि भोजन के समय दुःख की बात जहाँ तक याद न आये, वहीं तक अच्छा है। जयनारायण का भोजन भी शीघ्र समाप्त हो गया। वह एकदम थाली छोड़, उठ खड़े हुए।

अब गृहिणी से न रहा गया। उसने अत्यन्त करुणा से स्वामी की ओर ताकते हुए कहा—"बस, खा चुके ?"

"हाँ, जी अच्छा नहीं है; खाया नहीं जाता। तुम जरा चारपाई बिछाओ, मैं तनिक सोऊँगा।"

गृहिणी चुपचाप भीतर कोठरी में चली गई। चारपाई बिछाकर ऊपर से दरी बिछा दी। जयनारायण ने बैठकर कहा—"तुम खा-पीकर निबटो, मैं तब तक सो लूँ।"

गृहिणी एकटक स्वामी की ओर देख रही थी। उसने कहा—"इस तरह कब तक काम चलेगा—कोई एक दिन की तो बात है ही नहीं! मर्द होकर ऐसा करते हो? मुझे तो देखो, एक बूँद आँसू नहीं गिराया।"

इतना कहकर गृहिणी पीछे की ओर देखने लगी। उसकी बात को झूठ साबित करने के लिए तभी टप-टप कई बूँद आँसू उसके नेत्रों से गिर पड़े। उसने द्वार की तरफ देखने का बहाना करके उन्हें छिपाना चाहा, पर जयनारायण ने उन्हें देखकर भी न देखा।

उन्होंने घोर भाव से कहा—"जाओ, खा-पीकर निपटो। दो बजने को हैं।" गृहिणी चारपाई के पैताने स्वामी के चरणों को गोद में लेकर बैठ गई। जयनारायण ने बार-बार उससे जाने के लिए कहा, पर वह बैठी ही रही। धीरे-धीरे उसका मुँह भारी हो आया मानो कोई भारी आँधी-तूफान आने को हो। फिर तुरन्त ही उसकी आँखें भर आईं। जयनारायण ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"यह क्या पागलपन है? तुम तो अभी कहती थीं, कि मैं कभी आँसू नहीं गिराती, बड़ी कच्ची हो!"

इतना कहकर वह जरा हँस दिये। पर जिसने वह हँसी देखी हो, वही उसकी भयङ्करता का पता लगा सकता है। गृहिणी पर उसका बुरा ही प्रभाव पडा। वह फूट-फूटकर रो उठी, और खूब रोई। शान्त होने पर अत्यन्त अवरुद्ध कण्ठ मे उसने कहा—"मैं रोऊँ न, तो क्या करूँ? मुझे मौत भी तो नही आती! दो-दो बेटियों के भाग्य फूटे अलग, और अब मेरे फूटने बाकी हैं। दिन-भर उदासी, सोच-फिक्र—न खाना, न पीना। शरीर की यह दशा कर रक्खी है! कब तक इस तरह चलेगा? इन अभागियों को तुम्हारा ही सहारा है। तुम्हीं जब शरीर को शोक कर-करके मिट्टी कर रहे हो, तो बस, अन्धे की लकड़ी भी गई।"

इतना कहकर गृहिणी फिर रोने लगी।

जयनारायण ने दुखी होकर, टूटती आवाज से कहा—"आखिर मैं क्या सदा के लिए पट्टा लिखा लाया हूँ? अन्त में मुझे पाप का फल भोगने को नर्क का कीडा बनना ही पडेगा। अब मरने-जीने मे क्या है! आज मरा तो, कल मरा तो।"

"तुमने कौन-सा पाप किया है?"

जयनारायण स्त्री की ओर आँखें फाडकर देखने लगा। उसने कहा—"क्या? क्या मैंने कोई पाप ही नही किया है? दो-दो निरपराध बालिकाओं का सुहाग फोड चुका हूँ। इनसे सारे ससार के सुख छीन लिये हैं।—और तुम कहती हो, कौन-सा पाप किया है?"

"सुहाग क्या तुमने फोडा है? यह सब तो भगवान् की मर्जी है।"

स्त्री की बात काटकर जयनारायण बोले—"चुप रहो! भगवान् को दोष मत दो। भगवान क्या राक्षस है, या हमारे शत्रु हैं? वह तो ससार के स्वामी हैं, पिता है। चीटी से हाथी तक को वही सब कुछ देते हैं। वह करुणा के धाम क्या निरपराध-निरीह बालिकाओ पर ऐसा वज्रपात करेंगे? ऐसा साहस तो नर्क के कीडे से भी अधम, मुझ जैसे पापी से ही हो सकता है।" इतना कहकर उत्तेजना के मारे जयनारायण हाँफते-हाँफते कमरे मे टहलने लगे।

उनकी स्त्री उन्हे देखकर डर गयी थी—उसने भयभीत होकर कहा—"बिना मतलब क्यों अपने-आपको गालियाँ दे रहे हो? तुम क्या उसे जहर

देकर मारने गये थे? अच्छा, सुन्दर, तन्दुरुस्त लड़का देखकर ही तो ब्याह किया था। मग…"

बात काटकर जयनारायण बोले—"बस करो, फिर भगवान् का नाम! यह सत्यानाशी ब्याह ही क्या हमारा कम पाप है? इस ब्याह को करके ही घोर पाप की टोकरी सिर पर लादी है।"

अब गृहिणी ने माथा ठोककर कहा—"हाय तकदीर! इनकी बात सुनो! अपने बेटे-बेटियों का ब्याह करना पाप है, तो सारा संसार ब्याह करके पाप कमा रहा है?"

जयनारायण क्रोधित होकर बोले—"अरी कमसमझ! सारे संसार की तुझे खबर ही क्या है! संसार ऐसा मूर्ख नहीं है। ब्याह तो सभी करते हैं, पर ब्याह वक्त पर करते हैं—दुधमुँही लड़कियों के गले में फाँसी नहीं डाल देते।"

स्त्री ने अचरज में आकर पूछा—"ब्याह का समय और कौन-सा होता है?"

"जवान उम्र में,—जब लड़के-लड़की घर-गृहस्थी के योग्य हो जायें, तभी ब्याह करना चाहिए।"

स्त्री ने असन्तोष से मुँह बनाकर कहा—"जवान उम्र में विवाह करके विधवा नहीं होती?"

"होती क्यों नहीं? कम होती हैं।"

"तो बचपन का विवाह विधवा बना देता है, क्यों?"

जयनारायण ने ठण्डे होकर समझाते हुए कहा—"देखो, जब पेड़ छोटा होता है, तो बड़े यत्न से उसकी रक्षा करनी पड़ती है, बाड़ लगानी पड़ती है। जरा-सी आँधी, पानी, धूप के कारण ही वह नष्ट हो जाता है। उसके बढ़ने का कुछ भी भरोसा नहीं होता। अन्त में जब बढ़कर दृढ़ हो जाता है, उसके सब अङ्ग पुष्ट हो जाते हैं—तो बड़ी-बड़ी आँधी के झोंकों में भी नहीं गिरता। यही हाल आदमी का भी है। जब बालक छोटा होता है, तो जरा-सी सर्दी-गर्मी-हवा का उसपर असर होता है, अनेक रोग पीछे लगे रहते हैं, पर ज्यों-ज्यों बड़ा होने लगता है—उसके सब अङ्ग सबल हो जाते हैं; और वह कम बीमार पड़ता है। इसी से कहता हूँ, कि बाल-विवाह से विधवायें अधिक

होती है, और यह तो साफ बात है कि मै जो 'नरो' का ब्याह ही अभी न करता तो यह विधवा कैसे होती ?"

स्त्री ने आंसू पोछकर कहा—"अब तो सांप चला गया—लकीर पीटने मे क्या है ? जो हो गया सो हो गया। इन बातो मे क्या धरा है ? भगवान् की यही मर्जी थी।"

जयनारायण ने कहा—"फिर भगवान् को दोप दिया ? अब भी हो सकता है—यह दुख अब भी दूर हो सकता है। इसका भी उपाय है।"

स्त्री ने अत्यन्त विस्मय और उत्कण्ठा से कहा—"क्या उपाय है ? नरो का दुख दूर हो सकता है—कैसे हो सकता है ?"

जयनारायण ने स्त्री के मुख पर सहसा नेत्र गड़ाकर कहा—"उसका फिर विवाह कर दें ?"

अब तो गृहिणी उठ खडी हुई, उसने कहा—"क्या कहा ? ब्राह्मण की बेटी का पुर्नविवाह ? तुम्हारी बुद्धि तो नही मारी गई ? वाह, अच्छी युक्ति बैठाई है !"

"क्यों, बात तो कहो—हर्ज ही क्या है ? एकदम नाराज क्यो होती हो ?"

"चलो हटो, पत्थर पडे ऐसी बातो पर।"

"कुछ वजह भी हो या यो ही ?"

"सात-सात जन्म डूब जायेंगे। नर्क मे भी जगह न मिलेगी। ऐसी अनहोनी बात आज तक संसार मे हुई है ?"

जयनारायण ने भौ सिकोड़कर कहा—"तुम्हे खबर तो नही अपने घर *की भी, और ससार की बात करती हो। इसमें हर्ज ही क्या है ?—और अनहोनी ही क्या है ?"*

"बिरादरी मे नाक कट जायगी।"

"कट जाय, मेरी नरो को सुख तो मिलेगा।"

"नरो को सुख बदा होता, तो एक ही ब्याह मे मिल जाता।"

"अच्छा, अब दूसरा ब्याह करके देखते है कि उसे सुख मिलता है या *नहीं। जो उपाय हमारे वश का है—उसके रहते वह क्यों कष्ट भोगे ?"*

स्त्री ने बिगडकर कहा—"आज तुम्हें हो क्या गया है, जो बार-बार

ऐसी बातें करते हो ? कही भाँग तो नही पी आये हो ?"

"नहीं, मैं बिलकुल होश में हूँ। तुम यह बताओ, कि तुम्हारी लड़की जन्म-भर दुःख भोगे यह अच्छा है—या एक बार उसे फिर सुखी देखें, यह अच्छा है ?"

"अपनी सन्तान का सुख सभी चाहते हैं। पर बात वही की जाती है, जो करने की होती है।"

"तो यह बात करने की नही है ?"

"नीच कुजातों में भी ऐसा होता नही दीखता ?"

"क्यों, अब तो बडी जात वालो में भी होता है—तुमने क्या बसन्तपुर वालो का हाल नही सुना ? और आर्य समाज तो इसका प्रचारक ही है !"

"आग लगे इस आर्यसमाज मे और भाड़ में जाँय, वह बसन्तपुर वाले ! मेरे द्वार पर आवे, तो झाड़ू से खबर लूँ—"

"तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।"

जयनारायण ने देखा, कि मामला असाध्य है। वह किसी तरह अपनी स्त्री को न समझा सके। निराश होकर करवट बदल सोने का बहाना कर पड़ रहे। थोडी देर बाद स्त्री बाहर निकल गई ! उस दिन उसका उपवास रहा।

११

जयनारायण का पितृ हृदय अपनी बीमार पुत्री को देखने के लिए मचल उठा।

जिस समय जयनारायण उसकी कोठरी मे घुसा, तब नारायणी सो रही थी। वह चुपचाप पुत्री का मुँह निहारने लगा। देखते-देखते उसका सिर घूमने लगा, आँखें धुंधली हो गईं, और उससे खड़ा न रहा गया। वह वही चारपाई की पट्टी पर बैठ गया।

वह छोटी-सी मासूम बच्ची कैसी हो गई थी ! बाल बिखरे पडे हैं, मुँह पीला पड़ गया है। आँखें माथे मे धँस गई हैं, गालों की हड्डियाँ निकल आई हैं,

और पसलियों की हड्डी-हड्डी चमक रही हैं। जयनारायण ने एक ठंडी साँस के साथ दो बूँद आँसू गिराये। फिर उसने कन्या के माथे पर हाथ रक्खा। देखा, वह आग की तरह तप रहा है। स्पर्श होते ही कन्या जाग उठी, और एक बार पिता को गौर से देखते ही कुछ कहने को मुँह खोला ही था कि खाँसी के मारे छटपटाने लगी। खाँसी, दुर्बल रोगी, और तीव्रज्वर—यह सब एक शरीर में जिसने देखा है, वही उस छटपटाहट की वेदना का अनुमान कर सकता है। जयनारायण कातर भाव से पुत्री को गोद में ले बैठे। अभी तक खाँसी उसे दम नही लेने देती थी। बडी देर में थोडा कफ निकला और वह थूककर मूच्छित-सी होकर पिता की गोद में गिर पडी। उसका सिर ढुलक गया।

कुछ देर में दम लेकर उसने हाँफते-हाँफते कहा—"बाबूजी, मैं मरी!" यह कहकर एक कातर दृष्टि से वह पिता को देखने लगी। जयनारायण ने कठिनता से उमड़ते हुए हृदय को रोककर दुलार से कहा—"कोई चिन्ता नही बेटी! बडी जल्दी आराम हो जायगा।"

रोगिणी ने कुछ नही कहा—वह धीरे-धीरे श्वास ले रही थी। बोलना चाहा पर खाँसी के डर से बोली नही। जयनारायण ने उसे गोद में सुलाकर कहा—"कब से तुझे बीमारी हुई?"

"दशहरे के दिन से खाट पर पडी हूँ।"

"दशहरे से? और किसी हकीम-डॉक्टर को नही दिखाया?"

"कौन दिखाता?" कहकर बालिका की आँखों मे जाने किस दुःख को याद करके पानी छलछला आया।

कुछ ठहरकर जयनारायण ने क्रोध से कहा—"क्यो, क्या सब मर गये थे? घर मे कोई नही था?" नारायणी चुप रही।

कुछ ठहरकर जयनारायण बोले—"और तैंने मुझे भी अपनी खैर-खबर की कोई चिट्ठी न भेजी?"

नारायणी चुप रही। जयनारायण ने कहा—"बोल, चुप क्यों है? तूने मुझे भी अपनी खबर नही भेजी?"

नारायणी चुप रही—पर उसकी आँखों ने उत्तर देना प्रारम्भ कर दिया। जो उनमें पानी छलछला आया था, वह वेग से बह चला। उसकी

हिचकियां बँध गई। जितना ही वह अपनी व्यथा छिपाना चाहती थी, उतनी ही आँखें उमडी पड़ती थी। रोते-रोते नारायणी अधमरी हो गई।

अन्त मे, दम लेकर वह बालिका अपनी ससुराल की दिनचर्या बताने लगी :

"जब तुम वहाँ से चले आये, तो सबने ताँसना शुरू कर दिया। जेठ-जिठानी भी जो अलग हो गये थे, फिर आकर शामिल रहने लगे। वे सब बात-बात मे मुझे गाली देने, मारने और दुःख देने लगे। चाचीजी (श्वसुर) ने तो मेरे हाथ का अन्न-जल त्याग दिया। जब मैं पीने का पानी लेकर जाती, तो सैंकडो गाली सुनाते, 'डायन', 'अभागिनी' बताते और लात मारकर गिलास फेंक देते। अन्त मे मैने उनके सामने जाना ही छोड़ दिया। रसोई मे घुसने कोई न देता था। सबके खा-पी चुकने पर दो-तीन बजे रूखी-सूखी, जो मिलती—खाती। सब लोग खा-पीकर चौका छोड जाते थे। मैं भीतर जाकर जो कुछ बचा-खुचा रहता, खाकर पानी पी लेती थी। कोई पूछता भी नही था कि तू भूखी है या प्यासी। जेठ, जिठानी सदा तुम्हे गाली दिया करते कि ब्याह मे खाक दिया! यह साँपन अच्छी ब्याह कर लाये!—आदि। चाहे जी अच्छा हो या न हो, रात को बारह बजे तक चौका-बासन मुझ ही को करना पडता था। सर्दी मे काँपती जाती थी, पर कोई पूछता भी नही था। जिठानी सवेरे आकर जगा जाती, और आप सो जाती। अन्त मे खाट पर गिर गई, इसपर भी जिठानी ने मकर-फरेब बताया, और बोली —'जैसे बने, काम करना ही होगा, तेरा यह बहाना एक न सुना जायगा। चल पानी भर ला।' मैं पानी भरने गई, तो घडा लेकर गिर पडी। कई दिन से कुछ खाया न था, करती क्या? पर सास ने रस्सी लेकर ऐसी मार लगाई कि मैं अधमरी हो गई। उसी दिन जोर का बुखार चढा, कई दिन मे होश आया। मालती कहती थी, कि तू बुखार की गर्मी मे बकती थी। वे सब तो मुझे मरा समझते थे। फिर तभी से मन्द-मन्द ज्वर रहने लगा। खाँसी भी हो गई। बाजरे की रोटी खानी पडती थी, जिससे दस्त शुरू हो गये...।"

नारायणी और कुछ कहना चाहती थी, कि जयनारायण ने कहा—"बस-बस—चुप रह, अब नही सुना जाता।"

सुनते-सुनते वे पागल-से हो गये। अन्त में उनसे बैठा न रहा गया। वे

उठकर कमरे में टहलने लग गये। कुछ देर में एक लम्बी साँस ली। फिर बेटी के पास जाकर कहा—"अच्छा बेटा, कोई चिन्ता नहीं, अब तू जल्दी ही अच्छी हो जायगी।"

नारायणी ने क्षणेक पिता की ओर ताककर कहा—"बाबा, अब तुम मुझे वहाँ तो न भेजोगे।"

जयनारायण ने देखा—बालिका आतङ्क से काँप रही है। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—"ना-ना, बेटी! उन चाण्डालों से हमारा क्या काम?"

"वे कहते थे कि वहाँ जाकर जो हमारी चुगली खाई तो वापस आने पर जीता न छोड़ेंगे। बाबा! उनसे तुम कुछ कहना नहीं, नहीं तो मैं जीती न बचूँगी।"

जयनारायण बिलखकर रो उठे, बड़ी कठिनता से बोले—"मेरी बच्ची! जब तक मैं जीता हूँ, तुझे उनसे डरने की जरूरत नहीं है। उन पापियों को द्वार पर भी न फटकने दूँगा। नीच, बेईमान पाजी कहीं के! मेरी लड़की को जानवर समझ रखा है! अपने पालतू पशु पर भी कोई ऐसा जुल्म नहीं करता। पर किससे कहूँ, यह सब मेरा ही तो पाप है। संसार के स्वामी का न्याय भी कैसा उल्टा है, बाप का पाप बेटी भोगती है!" जयनारायण अत्यन्त दु:खी होकर कमरे से बाहर निकल गये। बालिका को झपकी आ गई थी, बात करनी पड़ी, इसी से थक गई थी।

१२

भगवती उदास बैठी, फटी धोती सी रही थी। चम्पा ने उसके काम में बाधा देकर कहा

"निगोड़ी! तुझे जब देखती हूँ, तभी किसी-न-किसी परपञ्च में फँसी रहती है, पर आज मैं तुझे न छोड़ूँगी, तुझे मेरे साथ चलना ही पड़ेगा।"

भगवती ने हँसते-हँसते कहा :

"क्यों री! तू जब आती है, गाली देती आती है। तेरी जबान बड़ी लम्बी हो गई है।"

चम्पा ने मुँह बिचकाकर कहा—"ओ हो ! पुरखिन को गालियाँ थोड़े ही अच्छी लगेंगी ! अब आते ही बड़ीजी के पाँव पड़ना पड़ेगा—क्यों न !"

भगवती ने उसे धक्का देकर कहा—"चल, परे हो ! तुझसे पार कौन पावेगा। तू खूब गाली दिया कर—बल्कि दरवाजे के अन्दर घुसते ही बखान-बखान कर ! मर्दानगी तो तेरी तभी !"

चम्पा ने नकली मान से तनकर कहा—"अच्छा, तो तू मेरी मर्दानगी परखने चली है ?"

भगवती ने हँसकर कहा—"भाई मैं हारी। आ, बैठ तो सही। यह आज जो नख-शिख से सिंगार किये आयी है, तो किस पर चढ़ाई है ?"

"चढ़ाई में तुझे क्या छोड़ दूँगी। तुझे भी आज नख-शिख से सिंगार करना पड़ेगा।"

भगवती ने फिर सरलता से हँसकर कहा :

"मेरा श्रृंगार किसको दिखायेगी भाई ?"

"वहाँ देखने वाले अनेक होंगे, जिसे जी चाहे दिखाना।"

भगवती ने जरा तुनककर कहा—"चल चुप रह, तू चल कहाँ रही है ?"

"साथ चलकर देख ले।"

"आखिर मालूम भी तो हो।"

"बहू गौना होकर आ रही है।"

"किसकी बहू ?"

"मानसिंह के बेटे की।"

"ना, मैं तो ना जाऊँगी। तू जा।"

"चलेगी भी या मिजाज ही दिखाए जायेगी ?"

"माँ नाराज होंगी।"

"मैं उनसे पूछे लेती हूँ।"

"ना, मेरा जी नहीं करता।"

चम्पा ने एक न सुनी—वह तुरन्त गृहिणी के पास आज्ञा लेने को पहुँची। कार्य बहुत कठिन नहीं था, साधारण ना-नू करने पर वृद्धा राजी हो गई। चम्पा ने आकर कहा—"चल, अब तेरी माँ ने भी कह दिया।"

"ना-ना, मैं न जाऊँगी, मेरा जी नहीं करता।"

"देख भगवती, तू बडी जिद्दन हो गई है, मैं तेरे पास फटकूँगी भी नहीं। मैं तो इतनी दूर से आई हूँ संग लेने, और तू नखरे ही किये जाती है। ऐसी भी क्या औरत!"

अबकी बार चम्पा की दवा कारगर हुई। उसे नाराज हुई जानकर भगवती उठकर उसके गले से लिपटकर बोली .

"अच्छा-अच्छा, चलती हूँ। तू है बडी खराब। बात-बात मे नाराज हो जाती है। अच्छा, ठहर, मैं कपडे पहन लूँ।"

चम्पा मुँह फुलाये खड़ी रही। उसने सोचा, जो औषधि इतनी कारगर हुई है, उसे आराम होने के बाद भी थोड़ा और पिलाना चाहिए।

भगवती ने कपडे पहनकर तैयार होकर कहा—"चल, चलें।"

चम्पा ने माथे पर बल डालकर कहा—"चल, मैं तेरे साथ नहीं जाती।"

भगवती ने कहा—"क्यो, अब क्या हुआ?"

"हुआ तेरा सिर! गौनिहाई को देखने उस तरह जाया करते हैं जैसे किसीकी टहलनी हो! पास-पड़ोस की सौ औरतें होंगी, देखेंगी तो क्या कहेंगी?"

"तो फिर क्या करूँ?"

"धराऊ जोडा निकालकर पहन। गौने के बाद एक बार ही तो पहना था, धर किसलिए रक्खा है, क्या चिता पर पहनेगी?"

भगवती का मुख उदास हो गया। पर चम्पा का उधर लक्ष्य नहीं था, वह खीचकर उसे भीतर ले गई। उसकी पिटारी खोलकर उसमें से गुलाबी जोड़ा, जो भगवती के गौने का था, निकालकर उसे पहना दिया, उसका मुँह धोकर बिन्दी और आँखों मे काजल लगा दिया। भगवती ने बहुतेरा मना किया, पर उसने एक न सुनी। गोटे की अँगिया पर ओढ़नी उढाकर उसकी चुटकी लेकर कहा, "बता, तेरे गहने कहाँ है?"

"ना! ना! गहने मैं नहीं पहनूँगी।"

"अच्छा-अच्छा, पर बता तो सही।"

"वे माँ के पास हैं।"

चम्पा उन्हें लेने गृहिणी के पास दौडी।

गृहिणी ने कहा—"रहने भी दे—गहने क्या करने हैं; यों ही चली

को सोचकर सुखी हो सके। भगवान सुख सब ही को देते हैं, पर सुखी सब किसी को नहीं कर सकते। अस्तु, जैसा पाठकों को मालूम हो चुका है, चम्पा जरा चटकीली तबियत की थी, सो घर में प्रवेश करते ही उसकी सखी-सहेली उसे घेरकर बहू के पास ले चलीं। कोई उसे चुटकी देने को लपकी, कोई गले में लटकने, किसीने पकडकर जरा मसक देने का इरादा किया, पर ज्यों ही सबकी दृष्टि उसकी संगिनी पर पड़ी, सब सहमकर ठिठक गई—सबमें काना-फूसी होने लगी। छदामो ने गुलाबो को एक ओर ले जाकर कहा—"तुमने कुछ देखा भाभी ?"

"क्या हुआ ?"

"चम्पा की संगिनी देखी ?"

"कौन है ?" गुलाबो ने अनजान की तरह पूछा।

छदामो ने तुनककर कहा—"तेरा सिर ! जयनारायण की धी राँड—भग्गो ?"

अब तो गुलाबो को मानो बिच्छू डँस गया। उसने ठोडी पर हाथ रखकर कहा—"ऐं—भग्गो ! इस ठाट से ? बस, अब कुछ कसर न रही। राँड का यह ठाट !"

छदामो ने मुँह बिचकाकर कहा .

"कलयुग है—कलयुग, बहू ! कलयुग में किसी की मरजाद थोडे ही रही है।" क्षण-भर मे दृश्य बदल गया। बहू के चारों ओर जो जमघट इकट्ठा था—सब भगवती को देखने आ जुटा। सबको यह लालसा हुई, देखें तो कलियुग की राँड का कैसा ठाट-बाट है। भगवती ने देखा, उसके चारों ओर ठठ जुट पडा है। सभी उसे देखकर ठोडी पर उँगली रखकर अचरज कर रही हैं। कोई आपस में इशारा कर रही है, तो कोई बोली कस रही है। भगवती घबरा उठी। उसने चम्पा से धीरे से कहा :

"चम्पा, मैं तो घर जाती हूँ, तू यहाँ ठहरी रह !

चम्पा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"बहू को देखकर हम भी चलेंगे, हमें क्या यहीं घर बसाना है ?"

गृहिणी ने देखा—आँगन में बडी भीड़ लग रही है। उधर से सरनी की माँ आ रही थी। उसे देखकर गृहिणी ने कहा—"अरी लक्ष्मी ! यह सब क्या

है ?" लक्ष्मी ने हाथ मटकाकर कहा :

"धूल थोड़ी-सी ! सती सावित्री आई हैं, उनका तुम भी दर्शन कर लो—चरणोदक ले लो।"

गृहिणी ने झुंझलाकर कहा—"सीधी बात कह री ! कौन है ?"

लक्ष्मी ने पास आकर कहा—"कहूँ क्या पत्थर ! भग्गो रानी आई हैं, बहू को देखने।"

"कौन भग्गो ?"

"वही जयनारायण की विधवा बेटी !"

गृहिणी तड़पकर बोली—"विधवा का यहाँ क्या काम ? शुभ काम में उसे बुलाया किसने है ?"

समस्त वृद्धा-मण्डल बोल उठा :

"अजी, अपने-अपने घर की सभी खैर मनाते है। बड़े भाग से बहू मिलती है। उस निपूती माँ को यह नही सूझी कि कैसे ऐसी शुभ घड़ी मे धी भेज दें ? खबरदार—जो बहू के पास गई ! ऐसी औरत की तो परछाईं भी बुरी।"

लक्ष्मी बोली—"तनिक उसकी सूरत तो देखो, उसे विधवा कौन कहे ? कैसे सिंगार करके आई है—मानो यही गौनिहाई है।"

अब गृहिणी तमतमाकर उधर दौड़ी। समस्त अनुचर-मण्डल भी दौड़ चला। गृहिणी को देखते ही भीड़ हट गई। सब देखने लगी, देखें—अब क्या रंग खिलता है। गृहिणी ने चम्पा से कहा :

"क्यों चम्पा—तुझे भले-बुरे का कुछ ज्ञान भी है ?"

चम्पा ने कहा—"क्या हुआ चाची, मैंने क्या किया है ?"

"तूने कुछ किया ही नही ? अच्छा, तू जो शुभ सायत के दिन राँड को ले आई—यह तेरी कैसी अकल है ?"

चम्पा चुप !

भगवती मानो धरती में गड गई।

इतने में एक वृद्धा बोली—"विधवा का यह सिंगार ? आग लगे इस कलयुग मे।"

दूसरी ने कहा—"ऐसी औरत को दूसरा खसम करते क्या देर लगती

है !"

तीसरी बोली—"जब इतना हो गया है, तब वह भी होगा बीबी—अब किसी की मर्जाद नही रही !"

चम्पा अब तक चुप थी, अब उसने साहस करके कहा—"चाची—विधवाओ के जी नही होता? मैं तो उसे जबर्दस्ती ले आई थी, वह तो आती भी नही थी।"

गृहिणी ने और रिसाकर कहा—"कौन अपनी गौनिहाई बहू पर विधवा की परछाई पडने देगी ? अपना शुभ सभी चाहते हैं। तू इतनी बडी तो हो गई, पर समझ कुछ भी नही आई।"

चम्पा कुछ कहा ही चाहती थी, कि इतने में गृह-स्वामी ने घर में प्रवेश करके कहा—"क्या चखचख है ?"

गृह-स्वामी का स्वर सुनते ही समस्त युवती-मण्डल हर्राकर भीतर भाग गया। गृहिणी बोली—

"अजी, चखचख क्या होती ? सभी अपनी-अपनी शुभ चाहते हैं,—विधवा को कौन घर मे घुसने देता है ?"

"कौन आई है ?"

"भग्गो—जयनारायण की लड़की !"

गृह स्वामी ने भी सिकोडकर कहा :

"जयनारायण ने भाँग खाली है, या पागल हो गया है ? निकालो इसे यहाँ से !"

भगवती चुपचाप चल दी। चम्पा भी उल्टे पैरों लौट चली। गृहिणी ने चम्पा को बहुतेरा रोका, पर उसने एक न सुनी। घर आकर भगवती किवाड़ बन्द कर पड़ गई। उसका हृदय कैसा हो रहा था तथा उसपर कैसी बीती, सो हममें लिखने की शक्ति नही है। चम्पा ने बहुत दिन तक भगवती को मुँह दिखाने का साहस न किया।

१३

ठीक दोपहरी झलमला रही थी। लू के तपते शोले, हवा की साँय-साँय आवाज और गाँव की गली के सन्नाटे ने समय को और भी भीषण बना दिया था। गाँववाले सब घर में पड़े विश्राम कर रहे थे। इसी समय भगवती पैर बढ़ाये, चम्पा के घर जा रही थी। इतने ही में पीछे से किसीने आवाज दी।

"भगवती ! भगवती ! कहाँ जा रही है ?"

भगवती ने पीछे फिरकर देखा, एक युवक उसकी ओर लपका हुआ आ रहा है। उसे उस सुनसान में अपनी तरफ आता देख, भगवती पहले तो डर गई, और चाहा, कि भागकर चम्पा के घर में घुस जाय, पर इतने में ही उसने पास आकर कहा—"भगवती ! अच्छी तो है ?"

"हाँ; तुम कौन हो ?" यह कहकर भगवती उसका मुँह देखने लगी। उसने हँसकर कहा—"तुम मुझे नहीं जानती ? तुम्हारे भाई तो मेरे बड़े दोस्त है।"

"तुम्हारा नाम ?"

"गोविन्दसहाय।"

"तुम गोविन्दसहाय हो ?"

"हाँ, अब पहचान गई ?"

"पश्चिम तरफ बनियों के मुहल्ले में रहते हो न ?"

"हाँ, तुम कहाँ जा रही हो ?"

"चम्पा के घर।"

"चम्पा कौन ?"

"रूपनारायण चचा की लड़की।"

"समझा—वह तुम्हारी सहेली होगी ?"

भगवती ने कुछ मुस्कराकर सिर हिला दिया। युवक ने उसके और निकट आकर उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"तुमने यह सूरत कैसे बना रखी है ?"

"क्यो ?—जैसी थी, वैसी है।"

"तुम्हारे ब्याह पर मैंने तुम्हें देखा था। तब क्या तुम ऐसी ही थी ?"

सखी का नाम सुनने से जो प्रफुल्लता उसके मुख पर आई थी, इस बात को सुनकर उड़ गई। उसके नेत्र भर आये। अब वह बालिका नहीं रही थी, अपना दुःख समझने लगी थी। उसने अपना भाव छिपाने के लिए उधर मुँह फेर लिया।

गोविन्दसहाय ने कहा—"क्यों, चुप क्यों हो गई, मुँह क्यों फेर लिया ?"

भगवती के नेत्रो से आंसू टपक पड़े। उसने मुँह फेरे ही फेरे कहा—"वे दिन और थे, यह दिन और हैं। राम जिस तरह रखे, उसी तरह रहना पड़ता है।"

गोविन्दसहाय ने देखा—भगवती बहुत कुछ समझदार है, उसकी वाणी में कम्पन और घबराहट है। उसने उसका हाथ पकड़कर कहा—"अरे ! तुम रोती हो ?"

भगवती ने एकदम उसकी ओर देखकर कहा—"नही तो।" पर तभी उसकी आँखों से दो आंसू भी टपक पड़े। उसने बात फेरने के ढंग से कहा—"तुमने मुझे क्यों रोका ?"

क्षणेक ठहरकर युवक ने कहा—"तुम्हे घर के लोग अच्छी तरह नही रखते ?—वहाँ तुम्हे कुछ दुःख है ?"

बालिका ने करारेपन से कहा—"नही तो।" पर उसकी साँस ने कह दिया—मानो उसी को उसी की बात पर अविश्वास है।

"नही तो कैसे ? मैं देखता हूँ, तुम्हारा सोने का शरीर मिट्टी हो रहा है···।"

बात काटकर भगवती बोली—"मेरा हाथ छोड़ दो—तुमने मुझे क्यों पुकारा था ?"

"एक बात कहनी थी।"

"क्या ?"

"मानोगी ?"

"पहले कहो भी।"

"तुम्हें लिखना आता है ?"

"हाँ ।"

युवक ने कुछ इधर-उधर करके कहा—"तुम्हें जो तकलीफ हो, मुझे लिख भेजा करो। जो चीज चाहिए, उसकी तकलीफ न भोगनी पड़ेगी—मैं भेज दूंगा।"

भगवती ने विस्मय से कहा—"क्यों, तुम क्यों भेजोगे ?"

"तुम्हारी तकलीफ मुझसे नहीं देखी जाती।"

"मैं तुम्हारी चीज क्यों लूं ?"

"क्या हर्ज है ? मैं तुम्हारे भाई का मित्र जो हूँ।"

"मुझे ऐसी तकलीफ ही क्या है ?"

"यह बात झूठ है। तकलीफ न होती, तो तुम्हारी ऐसी सूरत हो जाती ?"

कुछ सोचकर भगवती ने कहा—"और भाई-भावज मना करें तब ?"

"उनसे कहने की ही क्या जरूरत है ?"

"देख लें तो ?"

"तुम सावधानी रखो—और देख ही लें, तो कह दिया करना कि चम्पा ने दी है।"

भगवती क्षण-भर चुप रहकर बोली—"पर मेरे पास वे सब चीजें आयेंगी कैसे ? मैं ही तुम्हे कैसे खबर करूंगी ?"

"युवक ने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—'छजिया नाइन को जानती हो ? वह तो तुम्हारे घर जाती रहती है। उसे जो तुम कागज दोगी, मुझे चुपचाप मिल जाएगा। मैं भी उसीके हाथ चीजें भेज दिया करूंगा, और खाने-पीने की चीजों के लिखने की तो जरूरत ही क्या है, मैं खुद भेजूंगा। थोड़ा मेवा और मिठाई शहर से लाई रखी हैं, उसे आज ही रात को भेजूंगा। पर देखना, किसी पर बात खुलने न पाये, भला !"

भगवती लालच में आ गई। वर्षों बीत गये थे, मेवा और मिठाई उसने जबान पर न रखी थी। भाई और पिता की जूठी थाली से ही उसका पेट भरता था। उसके मन में ऐसा हुआ, कि अभी यहीं यह मिठाई दे दे, तो यहीं खड़ी-खड़ी खा ले पर तुरन्त उसने सोचा—यह कौन है, इसकी चीज मैं

लूं ? कोई क्या कहेगा ? यह सोचकर उसने कहा—"नहीं, मैं नहीं लूंगी।"

"क्यों—हर्ज क्या है भगवती। मैं क्या गैर हूँ ?"

भगवती ने उसकी ओर देखा, करुणा और अनुराग उसके मुख पर दौड़ रहा था। उससे भयभीत होकर उसने कहा—"ना, तुम जाओ, मैं नहीं लूंगी।" कहकर भगवती चलने लगी।

युवक ने नम्रता से कहा—"जरा ठहरो तो भगवती, एक बात और कहनी थी।"

"जल्दी कहो।"

"तुम्हे एक बात मालूम है ?"

"कौन बात ?"

स्थिर दृष्टि से भगवती को देखते हुए युवक ने कहा—"पहले मेरे साथ तुम्हारा ब्याह पक्का हुआ था।"

"मालूम है।" यह कहकर भगवती ने दूसरी ओर को मुँह फेर लिया।

युवक ने देखा कि उसकी आवाज दु:ख से लबालब है। उसने उसी प्रसंग मे कहा—"अगर वैसा हो जाता भगवती।"

भगवती ने अन्यत्र देखते-देखते वेमन से कहा—"हो कैसे जाता। भगवान् जो करते है—वही होता है।"

"अच्छा, तो भगवान् ऐसा करते है।"

"पर किया तो नहीं।"

"और यदि ऐसा करते तो ?"

"तो क्या ?" कहकर भगवती ने उदास दृष्टि से युवक की ओर देखा।

युवक ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"तो क्या तुम ऐसी गली की भिखारिन की तरह मारी-मारी फिरती ? तुम्हें क्या भाभी की जूतियाँ उठानी पड़ती ?—जूठे टुकडों का आसरा ताकना पडता ?"

भगवती रो उठी। बिना रोये कैसे रह सकती थी ?

उसके सामने उसका सब कष्ट रख दिया गया था। उसने रोते-रोते कहा—"जो भाग्य मे लिखा था वही हुआ।"

"वही तो मैं कहता हूँ। तुम्हारे पिता जिद न पकडते, तो आज मेरी सारी सम्पत्ति तुम्हारी होती—मैं तुम्हारा दास होता; जिनकी तुम गुलामी

करती हो, वे तुम्हें फूल की तरह हाथो मे लिए फिरते ! सुहागिन क्या तुम्हे देखकर मुंह छिपाती ? अपने बालको पर छाया भी न पड़ने देती ? वे तुम्हें सखी बनाने को ललचा उठती···"

भगवती के मन मे तूफान उठने लगा। उसने स्पष्ट देखा, एक पर्वत के शिखर पर सुख के ढेर पडे है, पर वहाँ पहुंचने का द्वार बन्द हो गया है। जब द्वार खुला [था, तो उसके बाप ने उसे नही जाने दिया था, अब उस ओर देखना भी वृथा है। भगवती ऐसी ही बात सोच रही थी। अचानक उसे चेत हुआ, और "मैं जाती हूँ" कहकर वह चल दी।

युवक ने उसके पीछे चलते-चलते कहा—"छजिया को भेजूंगा। देखना, यह बात कोई न जान सके···।"

भगवती ने भयभीत होकर कहा—"तुम मेरे पीछे मत जाओ। कोई देख लेगा।"

युवक खडा देखता रहा। भगवती लपककर चम्पा के घर में घुस गई।

१४

किरपू ने दादी की नाक में दम कर दिया। उसे कुरते की जिद चढ़ गई है। गोपाल का वह नया कुरता देख आया है, अब वैसा ही कुरता वह पहनेगा। पहले वह अपनी माँ के पास गया, पर हरदेई ने एक ही धक्के में उसका मिजाज ठीक कर दिया। किरपू हताश न हुआ, वह दादी के सिर हो गया। उसने बहुतेरा बहलाया, पर उसने एक न सुनी। अन्त मे हारकर गृहिणी ने अपनी कपड़ो की बुकची खोली, और डोरियां निकालकर, कुरता सीने लगी। किरपू उसके सामने प्रसन्नतापूर्वक पालथी मारकर बैठ गया।

दादी ने कैंची चलाते-चलाते कहा—"देख किरपू ! यह कुरता सीकर सन्दूक में धर देंगे ! तीज के मेले पर पहनकर दादा के साथ मेले में जाना।"

किरपू ने बड़े ध्यान से दादी की बात सुनकर कहा—"नई सन्दूक मे ?"

"हाँ-हाँ, नई सन्दूक मे रख देंगे।"

किरपू ने कुछ देर सोचकर कहा—"तो तीज कब आएगी ?"

"बस, अब थोड़े दिन और हैं।"

किरपू ने प्रसन्न होकर कहा—"अच्छा।"

इतने में ही मुखिया आ पहुँची।

किरपू ने ताली बजाते-बजाते, कुरते की तरफ उँगली उठाकर कहा—"देख मुखिया हमाला कुलता!"

मुखिया हाथ की गुड़िया को फेंककर बोली—"कहाँ है?"

किरपू ने फिर उँगली कुरते पर रखकर कहा—"ये रहा। हम दादा के संग तीजों के मेले पै इछे पैन के जायँगे।"

मुखिया ने भाई के पास बैठते-बैठते कहा—"हम भी जायँगे दादा के संग।" इतना कहकर उसने कुरते की बाँह से नाक पोंछ डाली।"

"हम नया कुरता पैन के जायँगे।"

"औल हम भी नया कुलता पैन के जायँगे।"

"तो तू भी मिलवा ले—नया कुलता।"

मुखिया ने दादी से कहा—"दादी, हमें भी कुलता सी दे।"

दादी ने तनिक घुड़ककर कहा—"चुप रह! लौंडिया कुरता नहीं पहना करती।"

बालिका ने अचरज से पूछा—"क्यों?"

"हौवा पकड़कर ले जायगा।"

बालिका पर आतङ्क छा गया। वह चुपचाप बैठी, दादी का सीना देखती रही। कुछ कर्तव्य न सूझा। उसने हताश होकर भाई की तरफ देखा। किरपू ने उसे रोनी सूरत में देखकर, हँसकर, और सैन मटकाकर, फिर उँगली से अपने कुरते की तरफ संकेत किया।

अब की बार बालिका ने कुनमुनाकर कहा—"ऊँ ऊँ! हम तो कुलता लेंगे।"

दादी उसकी बात पर ध्यान न देकर, कुरता सीती रही। बालिका ने यत्न निष्फल जाते देखकर, फिर भाई की तरफ हताश दृष्टि से देखा। किरपू पूरा नटखट था, उसने फिर उँगली से संकेत करके मानो कह दिया कि—"देख, यह रहा, हमारा कुरता।"

अब तो मुखिया ने अमोघ शस्त्र संभाला। वह धरती पर लोटने लगी,

पैर पटकने लगी।

दादी ने कोप से उसे देखते हुए कहा—"अच्छा सुखिया, तू न मानेगी। ठहर, अभी गंगासहाय बावले से तेरे कान कतरवाऊँगी। तू बड़ी बिगड़ गई है—भला।"

सुखिया ने डर से एक बार अपने कानों को अच्छी तरह टटोल लिया, और फिर रोने-मचलने लगी। उसके रोने की आवाज सुनकर भगवती धीरे-धीरे वहाँ आई। उसने माँ से कहा—"क्या तूफ़ान मचा रक्खा है?"

किरपू ने संक्षेप से सब दास्तान एकदम सुना दी।

उसने उठकर, भगवती का आँचल पकड़कर कहा—"बीबी! हमाला कुलता है—सुखिया का नईं।"

भगवती ने सुखिया को गोद में उठा लिया। उसकी धूल झाड़-पुचकार-कर बोली—"वाह जी! अपनी रानी को हम बड़ा अच्छा कुरता बनवायेंगे—झालर लगवायेंगे। किरपू को दिखावेंगे भी नहीं।"

किरपू ने मुँह फुलाकर कहा—"छुखिया, हमें कुलता न दिखायेगी।"

सुखिया ने सिर हिलाकर साफ़ इन्कार कर दिया।

किरपू ने कहा—"अच्छा, हम वी नईं दिखायेंगे।"

सुखिया ने उसकी कुछ परवाह न की। इतने ही में हरदेई उधर से आ निकली। उसने कहा—"क्या है री सुखिया।"

"बीबी हमे कुलता देगी।"

हरदेई ने हँसकर एक धप उसकी पीठ में जमाकर कहा—"मुण्डो! बुआ कहा कर।"

सुखिया ने कहा—"नईं, बीबी।"

"जा तो!" कहकर वह एक तरफ चल दी। अचानक उसने द्वार की तरफ देखकर कहा—"ओहो छजिया! आज तू किधर रास्ता भूल गई। आज जरूर मेह बरसेगा!" सबने आँख उठाकर देखा—छजिया नायन आ रही है।

गृहिणी ने हँसकर कहा—"आरी छजिया, बड़े दिन में आई।"

छजिया ने हँसते-हँसते गृहिणी के पैर छूकर कहा—"क्या हूँ... घर-गिरस्ती के काम-धन्धों को तुम जानती हो। (भगवती की ओर

ओहो, भग्गो है। अरी राजी है। बड़ी लजा रही है!"

भगवती एक बार सिर से पैर तक काँप उठी। वह मुँह फेरकर सुखिया को ले बैठ गयी।

छजिया ने गृहिणी से पूछा—"क्या सी रही हो।"

बूढ़ा को मुंह खोलने की जरूरत ही न पड़ी। किरपू ने तुरन्त कह दिया—"हमाला कुलता है!"

छजिया ने हँसकर कहा—"ओहो! किरपू बाबू, तुम्हारा कुरता है।"

"हाँ, हम दादाजी के संग मेले जायँगे।"

छजिया ने हँसते-हँसते किरपू को गोद में उठा लिया।

सुखिया ने भगवती से कहा—"बीबी, हमें कुलता दो।"

छजिया ने किरपू को गोद से उतारते-उतारते कहा—"आ, इधर आ! मैं दूँ तुझे कुरता।" इतना कहती-कहती सुखिया को लेने वह भगवती की ओर लपकी। भगवती बड़ी घबराई, पर छजिया ने उसी के पास बैठकर कहा—"क्यों भग्गो बीबी, मुझसे बोलती भी नहीं हो। क्या नाराज हो?—या मुझे पहचानती नहीं हो।"

गृहिणी ने कहा—"इसके सभी लच्छन ऐसे हैं। घर में इतनी-इतनी औरतें आती हैं, पर किसी से बात ही नहीं करती, दिनभर किताबों को लिये बैठी रहती है। बाप ने किताब ला दी है। जाने क्या-क्या आप ही बाँचा करती है। ज्ञान की बातें हमारी समझ में तो आती नहीं हैं।"

छजिया ने नखरे से कहा—"तुम्हारी समझ में आयगा पत्थर! ताईजी, अब क्या बूढ़े तोते पुरान पढ़ेंगे?"

गृहिणी ने हँसकर कहा—"हमारी जब ऐसी उमर थी, तब तो किताबों का नाम भी नहीं सुना था बहन। यह नई तौत्री हुई है—इसकी सभी बातें नई हैं।"

छजिया ने भगवती का हाथ पकड़कर कहा—"क्यों भग्गो तुम्हें किताबें आदमी से भी अच्छी लगती हैं?"

गृहिणी ने कहा—"बस, एक चम्पा से इसकी घुटती है। जिस दिन वह आ जाय, उस दिन इनकी बातों का तार नहीं टूटता।"

छजिया हँस पड़ी। उसने कहा—"ताईजी, बराबरवालियों में सभी

का जी लगता है।"

सुखिया अब तक चुपचाप बातें सुनती रही थी, अब उसने कहा—"ला कुलता दे।"

मुँह चूमकर छजिया बोली—"हाँ-हाँ ! अपनी बिटिया को बड़ा अच्छा कुरता दूंगी। बता, कैसा कुरता लेगी सुखिया ?"

"ऐछा" कहकर उसने दादी के घुटनों में दबा हुआ कुरता उँगली से दिखा दिया।

छजिया ने कहा—"अच्छी बात है—अभी बजाज को बुलाकर पाँच-छ: थान मँगवाती हूँ।"

भगवती ने हँसकर कहा—"थोड़े नव हुत, पाँच-छ: थान ?"

छजिया ने और भी हँसकर कहा—"सुखिया को नीचे से ऊपर तक कुरतों में दबा दूंगी—थोड़े से न बनेगा।"

थोड़ी देर तक सब हँसते रहे। सुखिया ने इस उपहास का कुछ भी अभिप्राय न समझा, बड़ी देर तक सबका मुँह देखती रही। फिर वह भी हँस पड़ी। 'जैसी बहै बयार पीठ पुनि तैसी दीजे'—इसका उसने भी अनुकरण किया। पर तुरन्त ही उसे अपने कुरते की याद आई। उसने मचलना शुरू किया। छजिया ने दूसरे उपाय का अवलम्बन लिया। उसने अपने आँचल में से एक गाँठ खोली। सबने देखा, उसमें मिठाइयों का दोना है। भगवती उसे देखकर सहम गई। छजिया ने एक दृष्टि उसपर डालकर कहा—"आरे किरपू, तू भी ले, और सुखिया, ले, तू मिठाई खा। कुरते का क्या करेगी ?"

किरपू और सुखिया दोनों आ जुटे। छजिया ने दो-दो लड्डू दोनों के हाथ में धर दिये। गृहिणी ने कहा—"यह क्या करती है, छजिया ! ठहर, ठहर !"

इतना कहकर उसने किरपू और सुखिया को पकड़कर अपनी तरफ खींच लिया।

छजिया ने कहा—"ताईजी ! तुम बालकों के बीच में भाँजी मत मारा करो। वाह ! ले रे किरपू ! यह गुड़िया, और ले जा।"

गृहिणी ने कहा—"कहाँ से लाई है ? सब यहीं लुटा जायगी—या छिट्टू के लिए भी ले जायगी ?"

"छिट्टू इनसे भी ज्यादा है ? ले री सुखिया ।" कहकर एक पेड़ा उसने उसके हाथ में पकडा दिया । फिर उसने कहा—

"आज पच्छिम तरफ चली गई थी। वहाँ गोविन्द सहाय मिल गए। उन्होंने आवाज देकर बुलाया, और मिठाई बांध दी। बेचारे बडे भले आदमी है।" इतना कहकर उसने भगवती की ओर तिरछी नजर से देखा। भगवती कांप रही थी। छजिया ने कहा—"ले री भग्गो ! तू भी ले ! मेरे लिए तो जैसे ये बालक वैसी भग्गो।"

भग्गो ने कहा—"मैं तो नही लेती।"

"वाह ! नही कैसे लेगी ?" इतना कहकर छजिया भगवती से लिपट गई। गृहिणी ने कहा—"रहने दे छजिया ! उसके भाग मे मिठाई खानी बदी होती, तो उसका भाग ही क्यों फूटता ?"

छजिया ने कहा—"तुझे मेरी सौगन्ध ! न लेगी, तो मेरा जी बडा दुखेगा !"

भगवती ने कहा—"अच्छा ठहर।" इतना कहकर एक लड्डू उठाकर कहा—"बस !"

"बस नही, सब ले। मेरे और कौन बैठा है !" इतना कहकर वह दोना वही पटककर अपनी जगह आ बैठी।

गृहिणी ने सीते-सीते मुंह भारी करके कहा—"इसी लौंडे से ब्याह की बात-चीत पक्की हुई थी। जो यही होता, तो आज मेरी भग्गो को कौन पाता ?" गृहिणी के नेत्रों से पानी टपक पड़ा। उसे हाथ से पोंछकर वह फिर सीने लगी।

छजिया ने कहा—"अब पछताने से क्या होता है जी ! विधाता ने जहाँ जिसकी जोडी रखी है, वही काम होता है। ऐसे वर क्या जगह-जगह मिलते है ? कैसा सुन्दर, कमाऊ, पढा-लिखा लड़का है—कुन्दन की तरह शरीर दमकता है !"

भगवती सुखिया को लेकर चल दी। उससे वहाँ ठहरा ही न गया।

१५

राजा साहब का नाम न बताना ही अच्छा है। यह तो हम कह ही चुके हैं कि उनकी आयु चालीस के लगभग है, रङ्ग साँवला, और आँखो में लम्पटता कूट-कूटकर भरी है। प्रजाजनो मे उनके अत्याचार से त्राहि-त्राहि मच गयी थी। किसीकी भी बहू-बेटी की इज्जत सलामत न थी। इस बात को लेकर सरकार से उन्हें बहुत मलामत मिली। अन्त मे रियासत कोर्ट-आफ वार्ड्स हुई, और आपको मिलता है, वजीफा। अब आप शहर मे रहते हैं, और निश्चिन्ततापूर्वक अपने लुच्चे, लफगे नौकरो द्वारा शहर की बहू-बेटियों का सर्वनाश किया करते है। इस समय वे अपनी आरामकुर्सी पर धूप मे पैर फैलाये पड़े पान चबा रहे थे, और एक दुबला-पतला कमीना-सा आदमी सामने जमीन पर बैठा, निर्लज्जता से भिन्न-भिन्न बातें कर रहा था। राजा साहब ने कहा—"तो आखिर घर का पता तो लग ही गया ? वह अकेली ही तो रहती है ?"

"जी हाँ, उसके सिवा वह बुढिया मकान वाली है, सो वह हत्थे चढ गई है, और सौ-पचास रुपये पाकर वह सब काम कर देगी ! सब काम सहूलियत से हो जायगा। मगर एक बात है !"

राजा साहब ने अकचकाकर कहा—"वह एक बात अब कौन-सी रह गई ?"

"वह नौजवान, जिसने उसे उस दिन छुड़ाया था न !"

"उसकी क्या बात है ?"

"वह नित्य ही उसके पास आता है।

"उससे उसका क्या सम्बन्ध है ? क्या वह उसका रिश्तेदार है ?"

"बुढ़िया के कहने के अनुसार तो वह उसी दिन से आता है।"

"तब तो वह हमारे रास्ते का कण्टक है। साले को साफ ही न कर दिया जाय ?"

"क्या जरूरत है ? ऐसा क्यों न किया जाय कि साँप मरे न लाठी टूटे।"

"तो तुम यह समझती हो, कि तुम उसे बगीचे मे ले आओगे ?"

"इसमे कुछ भी गोल-माल न होने पायगा।"

"अच्छो वात है, ठीक आठ बजे। समझ गये न ?"

"जी हां। तो अब मैं जाता हूँ। मैं एक किराये की गाड़ी ले लूंगा। हुजूर नाराज न हो, तो इनाम की बाबत कुछ अर्ज···"

राजा साहब ने जेब से कुछ नोट निकालकर फेंक दिये। वह व्यक्ति सलाम करके चल दिया।

जिस समय उपर्युक्त बात-चीत हो रही थी, दोपहर का समय था। वह व्यक्ति सीधा चलकर वृद्धा के पास आया, और बडी देर तक बात-चीत करता रहा। उसने वृद्धा के हाथ मे कुछ रकम भी धर दी, उसने उसे चुपचाप लेकर कहा—"काम बड़ा सङ्गीन है। मैं उस लड़के से बहुत डरती हूँ। यदि उसे कुछ पता लग गया, तो बुरा होगा।"

"तुम खातिर-जमा रक्खो—तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा।" यह कहकर वह आदमी चला गया।

उस आदमी के चले जाने के बाद ही बुढिया ने ऊपर जाकर देखा—सुशीला सीने के काम मे लगी हुई है! उसने पास बैठकर, मीठे स्वर में कहा—"हर वक्त न सिया कर। कभी फुरसत से भी बैठा कर, कपड़े-लत्ते भी साफ रखा कर—यह भी कोई ढङ्ग है। अब तो तुम्हें खर्च की ऐसी तङ्गी नही।"

"नही चाची, भाई साहब पर इतना भार डालना क्या अच्छा है? मुझे अपनी जरूरत पूरी करने के लिए मेहनत करना ही अच्छा है।"

"पर मेहनत में मर मिटना तो अच्छा नही।"

"चाची, अब तो मैं पहले से चौगुनी मेहनत कर सकती हूँ। अब मुझे चिन्ता क्या है? भगवान् ने भाई को भेज दिया है।"

"तभी तो कहती हूँ, इतना काम न किया कर। हाँ, सुना था, आज वे कुछ बीमार हैं।"

सुशीला ने सुई रोककर कहा—"किसने कहा ?"

"मेरा एक रिश्ते का लडका वहीं पढ़ता है, वह कहता था। उसका कहना था—"वे एकाएक ही बीमार पड गये हैं।"

"कल ही तो आये थे—भले-चंगे।"

"शरीर का क्या ठिकाना ?"

"और अभी आने की बात भी थी। उन्हींकी तो कमीज सी रही थी।"

बुढ़िया घबराई। उसने कहा—"देखो आयेंगे, तो मालूम पड जायगा, लडका झूठा तो नहीं है।"

"चाची, एक बार उसे भेजकर हाल-चाल मँगया तो लेती।"

"अच्छी बात है, मैं अभी जाती हूँ।" यह कहकर बुढ़िया उठकर नीचे आई। वह द्वार पर प्रकाशचन्द्र की प्रतीक्षा में बैठी रही।

प्रकाशचन्द्र ने आते ही हँसकर कहा—"कहो चाची, आज तो द्वार पर ही बैठी हो ! सुशीला भीतर है न ?"

"कहीं पडोस में किसी के घर गई है। अभी तक नहीं लौटी, उसी की इन्तजार में बैठी हूँ।"

प्रकाश भीतर जाते-जाते रुक गये। कहा—"वहाँ क्यों गई है ?"

"उनकी लडकी से बहनापा है, आपस में मिलती-जुलती रहती हैं।"

"तब अभी लौटने की कोई उम्मीद नहीं।"

"कैसे कहा जाय, बच्ची ही तो है ! कोई ऊपर तो है नहीं, जो डांट-डपट करे।"

"मैं तो ज्यादा ठहर सकता नहीं। तुम कह देना, कि प्रकाश आया था। मैं कल आऊंगा।"

प्रकाश चला गया।

वृद्धा घर में आकर बैठी—दिन छिप गया।

सुशीला ने वृद्धा की कोठरी में आकर कहा—"चाची, कुछ खबर आई ?"

"आई तो। सुना, वे बेहोश हैं।"

"कोई अपना भी नहीं है।"

"वहाँ अपना कौन है ?"

"फिर क्या करना चाहिए ?"

"कल फिर खबर मिल सकेगी।"

"चाची, यह तो बड़ी बुरी खबर है।"

"फिर मैं क्या करूँ बेटी, तू कह तो तुझे ले चलूँ।"

"वहाँ क्या स्त्रियों को जाने की इजाजत है?"

"है तो, मैंने लड़के से पूछा था।"

सुशीला सङ्कोच में पड़ गई। कुछ ठहरकर उसने कहा—"चाची, फिर चलो; एक गाड़ी मँगा लो।"

वृद्धा सहमत हुई।

गाडी आई, और अबोध बालिका उसपर चढ बैठी—दुष्टा विश्वास-घातिनी वृद्धा उसे ले चली।

सुशीला को मार्ग का ज्ञान न था। फिर रात्रि का अन्धकार। जब एक विशाल बँगले में गाडी खडी हुई, और वृद्धा ने कहा—"उतरो," तब सुशीला को चेत हुआ। वह घबराई हुई थी—निश्शंक उतरकर साथ हो ली। सामने के वृक्ष के नीचे से भूत की भाँति एक मनुष्य-मूर्ति ने उनका अनुसरण किया।

सुशीला ने वृद्धा का हाथ पकडकर कहा—"चाची, वह पीछे-पीछे कौन आ रहा है?"

"कोई नौकर होगा।" यह कहकर वृद्धा उसका हाथ पकडकर, तेजी से आगे को चल दी। बालिका ने देखा आगे-आगे अँधेरे में एक और आदमी जा रहा है, वृद्धा उसका अनुसरण कर रही है।

एक शका की छाया सुशीला के हृदय में उठी। उसने खड़ी होकर कहा—"चाची, लौट चलो। मेरी इच्छा वहाँ जाने की नहीं है।"

वृद्धा ने कठोर स्वर मे कहा—"इतनी दूर आकर लौटना भी हँसी-खेल नहीं है! आई हो तो मिलती चलो।"

सुशीला जमकर खड़ी हो गई।

हठात् एक बलिष्ठ पुरुष ने पीछे से आकर, उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया, और उसे हाथों-हाथ उठाकर चल दिया।

सन्ध्या हो गई। धीरे-धीरे अन्धकार फैल रहा है। गायें रम्भा रही हैं उनके दूहने का मधुर शब्द सुनाई दे रहा है। ऐसे समय में छजिया नायन ने जयनारायण के घर में प्रवेश किया। गृहिणी उस समय गौ-सेवा में लग रही थी, और हर देई रसोई बना रही थी। नारायणी आँगन में पीढ़े पर बैठी थी। अभी वह दुर्बल थी। बैठी-बैठी वह किरपू और मुन्निया को दूध-बताशे से रोटी खिला रही थी। भगवती अपनी कोठरी में बैठी, कुछ अनमने भाव से दरी की डोरी बट रही थी। कमरे में अँधेरा छा गया था, पर वह बैठी ही थी। छजिया ने वहीं पहुँचकर कहा—"अरी, क्या कर रही है?"

भगवती ने चमककर छजिया की ओर देखा। कुछ देर तक वह उसी की ओर देखती रही, फिर गिड़गिड़ाकर बोली—"छजिया! छजिया!! तू इस तरह मेरे पास मत आया कर। देख, मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ, तू रोज-रोज यह क्यों ले आती है?"

छजिया ने आँचल की गाँठ खोलते-खोलते हँसकर कहा—"पगली कहीं की! तुझसे सौ बार तो कह चुकी हूँ—डर किस बात का है? मुझे क्या तैंने ऐसी-वैसी समझ लिया है। अरे! हवा को तो खबर लग ही नहीं सकती है।" इतना कहकर उसने ताजा मिठाई का एक दोना उसके हाथ में दे दिया। भगवती ने उसे डरते-डरते हाथ में ले लिया। छजिया ने कहा—"कपड़ों के बुकचे में छिपाकर रख आ।" भगवती ने वही किया। मिठाई छिपाकर भगवती कठपुतली की तरह फिर छजिया के पास आ खड़ी हुई। छजिया ने मुस्कराकर कहा—"बता, और क्या चाहिए?"

"कुछ नहीं, अब तू जा! देख, माँ न आ जायें।"

"माँ आजायगी, तो क्या है?—आ जाने दे!"

"तुझे यहाँ अकेली मेरे पास खड़ी देखकर क्या कहेगी?"

छजिया ने कटाक्ष-पात करके कहा—"क्या कहेंगी? मैं कोई हर-गोविन्द तो हूँ नहीं। औरत के पास औरत आती ही है—उसमें कहना-

सुनना क्या है ?"

भगवती ने उलटकर कहा—"अच्छा, अब तू जा।"

"अच्छा जाती हूँ, पर और चीज सब वापस ले जाऊँ क्या ?"

भगवती ने जल्दी में कहा—"और क्या है ?"

"कुछ भी हो, तुझे तो 'जा-जा' लग रही है।" इतना कहकर छजिया नखरे से चलने लगी।

भगवती ने तनिक हंसकर कहा—"अच्छा, बता तो क्या है ? दिक मत कर।"

"तैंने कुछ उस दिन मँगाया था ?"

"किस दिन ?"

"किस दिन ! अब याद थोड़े ही है ?—जिस दिन नदी नहाने गई थी ?"

"हाँ-हाँ कघी। जैसी चम्पा के पास थी—रबर की !"

"यह ले।" कहकर कंघियों का एक बढ़िया जोड़ा छजिया ने भगवती के हाथ पर धर दिया।

भगवती ने बड़ी प्रसन्नता से उन्हें लेकर कपड़ों में छिपा लिया। छजिया बोली—"सिर में लगाकर तो देख।"

"नहीं-नहीं, अभी नहीं—सोती बार !"

"सोती बार कौन देखेगा ? ऐसी चीज पहनकर साजन को दिखाते हैं।"

भगवती सिकुड़ गई ! उसने कहा—"छजिया, अब तू जा; फिर आ जाना।"

छजिया ने कहा—"अच्छा, जाती हूँ पर उस बात का क्या जवाब रहा ?"

भगवती के शरीर का रक्त-प्रवाह रुक गया। वह खड़ी-खड़ी पसीने में नहा गई, आंखों में अंधेरा छा गया, मुँह से शब्द न निकला।

छजिया ने उसके कन्धों पर हाथ रखकर धीरज से कहा—"इतने घबराने की क्या बात है ? सब काम ऐसी उस्तादी से होगा कि कानों-कान किसी को खबर न पड़ेगी, और तू अब बालक तो है नहीं। भगवान् ने औरत-मर्द का जोड़ा बनाया ही है। जब मेरी उमर तेरे बराबर थी······।"

कुछ ठहरकर उस दुष्टा ने एक कटाक्ष फेंककर कहा—"अपने भाई-भौजाई को ही देख ले ! तेरा जन्म क्या इसी अंधेरी कोठरी में सड़ने को है ? कैसा चांद-सा मुखड़ा है !" इतना कहकर छजिया ने भगवती के मुख पर हाथ फेर दिया।

भगवती की जीभ में बोलने की शक्ति नहीं थी। पसीना पनाले की तरह बह रहा था।

छजिया फिर कहने लगी—"और वह भी कैसा जवांमर्द है। झूठ नहीं कहूंगी—दिन-रात तेरा ही नाम उसकी जबान पर रहता है। तेरे आगे रुपये-पैसे को तो वह कुछ समझता ही नहीं। ऐसी रेशमी साड़ी लाकर रक्खी है, कि देखती रह जाय—पर भेजी इसलिए नहीं, कि कोई देखे-भाले तो नाम धरे। जिस दिन उसे पहनेगी, तू ही तू दीखेगी।"

भगवती बेसुध-सी हो रही थी। उसने बात काटकर कहा—"अब तू जा। देख, कोई सुन न ले।"

"सुनेगा कौन ? अच्छा, तो बता एक जवाब मिलना चाहिए।"

भगवती ने घबड़ाकर कहा—"नहीं, नहीं, मैं नहीं जाऊंगी।" इतना कहकर भगवती छजिया को धक्का देकर जाने का संकेत करने लगी।

छजिया ने हाथ मटकाकर कहा—"यह कैसी बात बीबी ? न जाओगी, तो कैसे बनेगा ? वह इतना खर्च-परेशानी तो इसीलिए उठा रहा है।"

भगवती ने बात काटकर कहा—"नहीं-नहीं, मैं न जाऊंगी। इन्हें तू ले जा, फिर मत लाना—मुझे नहीं चाहिए।"

अब की बार छजिया ने दूसरा शस्त्र फेंका। उसने कहा—"समझ-सोचकर बातें करो भग्गो बीबी, पहले तो तुमने माल उड़ाए, अब काम के वक्त 'ना-ना' करती हो। इस तरह तो न चलेगा। तुम्हारे बाप को सब खबर कर दी जायगी। मर्द की जात को जानती नहीं—उसका कुछ नहीं बिगड़ता, पर तुम्हारी हड्डी-पसली चूर-चूर हो जायगी। मुंह काला होगा, वह अलग ! वही मसल होगी—माया मिली न राम !"

दवा कारगर हुई। छजिया का एक-एक शब्द तीर की तरह भगवती के कलेजे के पार हो गया। भय, उद्वेग और चिन्ता से वह पागल हो गई। वह हाथ जोड़, घुटनों के बल छजिया के पैरों में गिरकर रो-रोकर कहने लगी—

"छजिया, मेरी अच्छी छजिया मेरी जान बचा ! छजिया, मैं तेरी काली गऊ हूँ !" इतना कहकर भगवती उस नीच स्त्री के पैरों पर लोटने लगी।

जिस प्रकार प्रफुल्ल नेत्रो से शिकारी अपने वश मे आये हुए शिकार को देखता है, ठीक वैसा ही भाव छजिया के नेत्रों में फूट पडा। अबोध बालिका का हाथ पकडकर उसने उठाया, और सान्त्वना-युक्त स्वर में बोली—"मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ, कि मेरे मन के माफिक चलेगी, तो कुछ डर नही है, सब काम ठीक बैठ जायगा। जब तक मेरे दम में दम है, मजे में मौज उडा। किसकी मजाल है, जो तुमसे आँख भी मिलावे।"

भगवती ने रोते-रोते कहा—"तो मैं वहाँ कैसे जाऊँगी छजिया ? कोई देखेगा, तो क्या कहेगा ?"

"अरी बावली, कौन देखेगा ? किसी को कानो-कान खबर भी न होगी। इसका जिम्मा मेरे सिर रहा।"

भगवती चुपचाप बैठी रही। छजिया ने कहा—"मजे से रस के घूंट पियेगी तू—और सिर खपाना पडता है मुझे ! अभी तुझे चस्का नही लगा है, नही इतना सोच-विचार न करती।"

इतना कहकर छजिया ने हँसकर भगवती को चुटकी भर ली। भगवती के मुख-मण्डल से हँसी कोसों दूर थी। वह चुपचाप खडी काँप रही थी।

छजिया ने कहा—"अब जल्दी जवाब दो, तो जाऊँ। देखो, कोई देख लेगा।"

कोई देखता तो नही है—इस भय से भगवती ने आँख उठाकर चारो ओर देखा। फिर कहा—"अच्छा, फिर आना। तब सोचकर पक्का जवाब दूँगी।"

"बावली हुई है तू ? इतने दिन से टाल रही है, आज उन्होंने कहा है कि पक्का जवाब न आएगा, तो आज ही रस्सातोड हो जायगा। अब तू देख ले—राजरानी बनकर मौज उड़ाना मंजूर है या झूठे टुकड़े खाकर कुत्तो की तरह उम्र काटना। माँ-बाप किसी का कोई नही है—सब मतलब के हैं। अभी तू सुहागन होती, तो भाभी कैसा आदर करती, पर अब तू देख ही रही है—कैसी-कैसी विपता पड रही है ! भला हो बेचारे हरगोविन्द का, जिसके खर्च से जी रही हो, नहीं इस दुःख मे क्या जान बचती ? सो तू अपनी

बेवकूफी से उन्हें भी नाराज कर रही है।"

भगवती की दशा लज्जा, भय, अनुताप और दुःख से अत्यन्त शोचनीय हो रही थी। वह वारम्वार कुपथ पर पैर रखने से डर और हिचक रही थी। पर अब उसे कुछ सूझता नही था। अन्त में उसने स्थिर करके कहा—"परसों मां पूरनमासी नहाने गङ्गाजी जायेंगी। मैया भी साथ जायेंगी। घर में भाभी ही रहेगी। चाचाजी इलाके मे गये हैं। तभी दुपहरी को चलूँगी।"

छजिया ने मन की खुशी मन मे ही दबाकर कहा—"तो यही बात पक्की रही न ?"

"हाँ हाँ, पक्की ! पर छजिया, किसीको खबर न हो।"

इतना कहकर भगवती ने उसके पांव पकड़ लिए। 'इस बात से खातिर-जमा रख' कहकर छजिया चम्पत हुई।

१७

पाठक, इस परिच्छेद मे जिस घटना का वर्णन है, उसको लिखने की इच्छा हमें तनिक भी नही है। पर क्या करें। लेखकों का भाग्य ऐसा नहीं होता, कि इच्छा करने से ही वे किसी प्रकृत घटना को छिपा जायँ। उन्हें इच्छा से, अनिच्छा से जिस तरह हो—सब बात यथावत् कहनी पड़ती है। हम भी इस घृणित और कुत्सित प्रसङ्ग से अपनी लेखनी को काला किये बिना नहीं रह सकते। आज पूर्णिमा का पर्व है। आज भगवती की माता पतित-पावनी गङ्गा मे गोता लगा रही है, और आज ही भगवती घोर पाप-पङ्क में निमग्न होने को, छजिया के साथ घर की ड्योढियों से बाहर जा रही है। कैसी कटु कथा है,—कैसी दु.खद घटना है ! यदि भगवती हमारी बहिन या पुत्री होती, तो हम कदाचित् इस बात को ऐसी शान्ति के साथ न पढ़ सकते। मान लें, कि समस्त भारतीय देवियां हमारी सगी बहन-बेटियां हैं, तो निश्चय भगवती के इस अध.पतन पर आपके हृदय में भयङ्कर वेदना का अनुभव होगा।

ठीक दुपहरी झलझला रही थी—जब छजिया के साथ भगवती ने

गोविन्द सहाय के घर में प्रवेश किया। अपने शयनागार में गोविन्द सहाय बड़ी उत्कण्ठा से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। भीत-चकित भगवती ने उसी कोठरी में प्रवेश किया। छजिया तो बाहर ही से अन्तर्द्धान हो गई थी। भगवती का सिर घूम रहा था। पहले तो उसे कमरे में कोई न दिखाई पड़ा पर फिर देखा—गोविन्द सहाय सामने खड़ा, तृषित नेत्रों से उसे घूर रहा है। अब तो उसके शरीर से पसीना छूट पड़ा। गोविन्द सहाय ने तभी पास आ उसका हाथ पकड़कर कहा—"डर किस बात का है भगवती?"

"तुम मुझे घर भेज दो। देखो, मेरा सिर घूम रहा है।"

गोविन्द सहाय ने कहा—"अच्छा, तुम्हारी इच्छा होगी, तो भेज देंगे, पर जरा तबियत तो ठीक होने दो भगवती! तुम इतना क्यों घबरा रही हो?"

"मुझे बड़ा भय मालूम हो रहा है।" भगवती ने कातर दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा।

युवक ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"यहाँ घर-भर में कोई नहीं है, डरने की कौन बात है? चलो, जरा वहाँ चलकर बैठो।" इतना कहकर, वह पलँग की तरफ उसे ले चला। भगवती भी मन्त्र-मुग्धा की तरह चलकर जा बैठी। मानो उसे कुछ दीखता-सूझता नहीं है।

गोविन्द सहाय ने उसकी चादर उतारते-उतारते कहा—"बड़ी गर्मी है। कपड़ा हल्का करो। गर्मी से तुम्हारा जी बड़ा खराब हो गया है।"

भगवती ने चादर को दृढ़ता से पकड़कर कहा—"ना-ना, चादर मत उतारो! अच्छा, अब मैं जाती हूँ।"

धूर्त युवक ने मानो बात ही नहीं सुनी। उसने एक हाथ से पङ्खा करना शुरू किया, दूसरे हाथ से उसका वस्त्र हटाते हुए कहा—"इस तरह घबराने से कैसे काम चलेगा? तुम्हें मालूम नहीं है भगवती, तुम्हारे लिए मैं कितना तरस रहा हूँ?"

भगवती ने बात काटकर, उसका हाथ हटाते हुए कहा—"देखो, ये सब बातें चिट्ठी में लिख भेजना, अब जाने दो, बड़ी देर हुई। कोई आ न जाय।"

"ऐसी दुपहरी में कौन आयेगा पगली! बाहर छजिया पहरा दे रही है। तुझे मुझपर तरस नहीं आती?"

हाय ! अभागिनी आज लुट गई। नीच दुष्ट ने बलात्कार से असहाया बालिका का सर्वनाश कर डाला !!

१८

भयङ्कर तूफान आ चुकने के बाद प्रकृति एकदम शान्त हो जाती है। नर-पिशाच गोविन्द सहाय जब असहाया बालिका का सर्वनाश कर चुका, तब उसे होश आया, उसे आत्म-बोध हुआ। उसने मन ही मन लज्जा, भय, ग्लानि और सन्ताप का अनुभव किया—बारम्बार अपने-आपको धिक्कारने लगा। तदनन्तर कुछ शान्त होकर उसने शय्या की तरफ देखा—उस समय बालिका मूर्छित पड़ी हुई थी, उसका चेहरा मुर्दे के समान हो रहा था। उसने उसके मस्तक पर हाथ रखकर जगाना चाहा, पर देखा—मस्तक बर्फ के समान शीतल हो रहा है, नाड़ी क्षीण है। अधर्मी युवक एकदम घबरा गया। उसने भगवती के मुख पर पानी के छींटे देकर चैतन्य करने की चेष्टा की, पर कुछ न हुआ, अब वह छजिया को बुलाने दौड़ा।

छजिया ने रंग-ढंग देखकर कहा—"क्यों, क्या हुआ ?"

"वह बेहोश हो गई है।"

"सो तो होना ही था, तुमसे तनिक धीरज न रक्खा गया। इतनी कोमल लड़की से कहीं ऐसा व्यवहार किया जाता है ? मैं उसे धीरे-धीरे आप ही रास्ते पर ले आती।"

गोविन्द सहाय ने घबराई जबान से कहा—"उसे चलकर देख तो सही।"

"अच्छा, मेरा इनाम दो, तुम्हारा सब काम ठीक-ठीक हो गया है।"

"इनाम क्या मारा जाता है, चलकर उसे ठीक तो कर।"

"यह बात झूठी है—पहले इनाम—पीछे काम।"

गोविन्द सहाय ने पाँच रुपये उसके हाथ पर रखकर कहा—"और पीछे खुश करेंगे।"

"अच्छा, यही सही।" कहकर छजिया भीतर आई।

भगवती अभी तक बेहोश थी, पर इन लोगों के भीतर पहुँचते ही उसे होश आ चुका था। छजिया को देखकर वह गाय की भाँति डकरा उठी।

छजिया ने कहा—"घबरा मत, अभी सब ठीक हुआ जाता है।"

बालिका लज्जा और पश्चात्ताप से छटपटाने और रोने लगी। उसने उठने की चेष्टा की, पर सिर में चक्कर आने से गिर पड़ी।

छजिया बड़ी ही घाघ थी। उसने ऐसे-ऐसे अनेक अवसर देखे थे। उसने कहा—"बाबू ! तुमने बड़ा गजब किया, आज का इनाम पूरा-पूरा लूँगी।"

गोविन्द सहाय घबरा रहा था। उसने कहा—"तू इसे यहाँ से ले लो जा बाबा, इनाम क्या माँगता है?"

छजिया ने गोविन्द सहाय को बाहर भेज दिया, और पंखे से भगवती को हवा करने लगी। कुछ देर में भगवती की तबीयत कुछ ठीक हुई तो वह गिड़गिड़ाकर कहने लगी—"छजिया ! मुझे घर पहुँचा। हाय ! मैं लुट गई !"

"घबराओ नहीं, कोई कानोंकान न जान पायेगा।"

भगवती कुछ काल तक चुप बैठी रही। अब एकाएक वह उठ खड़ी हुई। छजिया ने कहा—"कुछ देर और ठहरो।"

पर भगवती ने एक न सुनी। वह सीधे अपने घर चल पड़ी।

१९

कुपथ पर पैर रखना ही बुरा है। एक बार जो गिरा, फिर सम्हल नहीं सकता। मकड़ी के जाले में मक्खी फँसकर जितना ही निकलने के लिए छटपटाती है, उतना ही अधिक फँसती है, अभागिनी बालिका भगवती की भी यही दशा हुई। गत परिच्छेद में जिस घटना का वर्णन किया गया है—उसे आज तीसरा ही दिन है। छजिया फिर उसे लेने को आ उपस्थित हुई है—उसका प्रस्ताव सुनते ही भगवती भयभीत दृष्टि से उसके मुख की ओर ताकने लगी। छजिया ने कहा :

'इतना डरना किस लिए है? उस दिन किसी को कुछ खबर हुई? जब

पहला-पहला मामला ही फतह हो गया, तो अब तो बात ही क्या है?" इतना कहकर छजिया चुप हो गई। भगवती अब भी उसी प्रकार उसके मुख को ताक रही थी। छजिया ने धीरे से कहा—"आज चलोगी न?"

भगवती ने खीझकर कहा—"ना, मैं कभी न जाऊँगी। तू जाकर साफ कह दे, और खबरदार जो मेरे पास कुछ चीजबस्त लेकर आई तो।"

छजिया ने अचरज की मुद्रा बना और ठोडी पर उँगली रखकर कहा—ऐ है! बड़ी नादान बिटिया बनी हो—रोज-रोज समझाना पड़ेगा इन्हें! पहले दिन न जाती, तो एक बात भी थी। अब तो सब कुछ हो गया। जो सब बात खोल दी जाय, तो कहो, कैसी बने?"

भगवती किंकर्तव्य-विमूढ की तरह बैठी-बैठी छजिया का मुँह ताकने लगी।

छजिया ने कहा—"चलो, अब देर का मौका नहीं है।"

भगवती अब भी भयभीत दृष्टि से उसे देख रही थी। उसकी लालसा भड़क गई थी। वह कष्ट, लज्जा, भय और कामना के थपेड़ों में पडकर हत-बुद्धि हो गई थी। उसने कहा:

"छजिया, यह काम अच्छा नहीं। तू जा, मैं नहीं जाऊँगी। मैं जहर खाकर मर जाऊँगी।"

"पगली, मरेंगे तेरे दुश्मन, अभी तू बहुत-कुछ देखेगी। क्या तुझे मालूम नहीं, वे तेरे साथ पुनर्विवाह की बातचीत कर रहे हैं।"

भगवती अधिक देर तक स्थिर न रह सकी। छजिया फिर उसे उस पाप-पथ पर ले चली। फिर तो यह पथ खूब चला। उन सब बातों को लिखकर हम अपनी लेखनी को कलंकित न करेंगे। यही यथेष्ट है कि भगवती खूब सावधानी से इस पाप-सागर में गोते लगाने लगी।

२०

इस परिच्छेद में हम अपने पाठकों को एक सर्वथा नवीन प्राणी का परिचय देंगे, जो हमारी कहानी में सबसे पवित्र और सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र है।

शरद् की विशुद्ध रात्रि थी। बाहर मानो दूध बखेर दिया गया था। शीतल चन्द्रमा की चाँदनी, मन्द पवन और प्रशान्त रात्रि—इसमें अधिक और चाहिए भी क्या ?

नगर के बाहर एक बँगला था। वह उसी उज्ज्वल रात्रि में खड़ा, मानो दूध मे नहा रहा था। सामने प्रशस्त हरी घास का लॉन एक अनिर्वचनीय सौन्दर्य बखेर रहा था।

दो प्राणी धीरे-धीरे इस लॉन पर टहल रहे थे—एक पुरुष, एक स्त्री। दोनो परस्पर सटे हुए, हाथ से हाथ मिलाये, दीन-दुनिया से दूर, प्रगाढ़ प्रेम मे तन्मय—मानो जगत् मे वे परस्पर एक-दूसरे की हस्ती को छोड़कर और कुछ जानते ही न थे।

पुरुष ने कहा—"प्रिये ! अधीर न हो, प्लेग के प्रबन्ध के लिए मुझे कल ही देहात के दौरे पर जाना होगा। सरकारी आज्ञा है, चारा नही। सारा शहर भाग गया है। मेरे बिना न जाने यहाँ तुम्हें कितनी असुविधा होगी। तुम विनोद को लेकर घर चली जाओ। मैं तुम्हे छोडता जाऊँगा, वहाँ निश्चिन्त रह सकोगी।"

"नही स्वामी, मैं आपके साथ ही रहूँगी। प्लेग के भयानक वातावरण मे मैं क्या आपको अकेला जाने दूँगी ?"

"यह तो सब ठीक है, पर स्त्रियो को लेकर सर्वत्र तो नही घूमा जाता। फिर प्लेग-प्रबन्ध का भार—यह तो सोचो ? अच्छा तुम्हारी ही बात रहे, पर बच्चे का तो खयाल करो।"

स्त्री पति से लिपट गई। उसने रोते-रोते कहा—"मुझे आप अकेली न छोड़िये। मैं हाथ जोडती हूँ। नही तो इस्तीफा दे दो।"

"इस्तीफा दे देना अपमानजनक है। मैं जिम्मेदार अफसर हूँ। क्या मुझे ऐसे नाजुक मौके पर इस्तीफा दे देना उचित है ? मुझे दु ख है, कि तुम इस समय ऐसी अधीर हो रही हो।"

थोडी देर तक स्त्री चुपचाप टहलती रही। वह अपने हृदय के दुःख को दबाने की चेष्टा कर रही थी। अन्त मे उसने दिल कडा करके पति का प्रस्ताव स्वीकार किया।

इन दोनो पति-पत्नी का परिचय भी देना होगा। पति का नाम है डिप्टी

कलक्टर बाबू दीपनारायणसिंह, और पत्नी का कुमुद। प्रात काल ही दोनों ने यात्रा प्रारम्भ कर दी। गोद का शिशु और एक नौकर साथ था।

रेल मे भगदड़ मची थी। प्लेग के कारण भीड़ का ठिकाना न था। तीसरे दर्जे मे मुसाफिर ठसाठस भर रहे थे। बाबू साहब और उनकी पत्नी सेकेण्ड-क्लास के डब्बे में बैठे थे। बच्चा सो रहा था। स्त्री ने कहा—"आप इस समय इतने उदास क्यो हैं?'

"कह नही सकता, दिल ऐसा क्यो हो रहा है। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था।"

"रात देर तक ओस में भी तो आप फिरते रहे। जरा आप लेट जाइये न।"

बाबू साहब लेट गये, परन्तु उन्हें नीद नही आई। थोडी देर में स्टेशन आ गया। यहाँ सरकारी प्रबन्ध था। यहाँ डाक्टर, पुलिस और मजिस्ट्रेट सब उपस्थित थे। प्रत्येक यात्री की स्वास्थ्य-परीक्षा होती थी। चेष्टा की जाती थी कि कोई रोगाक्रान्त व्यक्ति आगे न जाने पावे।

स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होते ही मुसाफिरो के चीत्कार से स्टेशन गूंज उठा। प्रत्येक डब्बे की चाभी वन्द थी। सभी लोग डाक्टरी-परीक्षा से घबरा रहे थे। दोपहर हो गयी थी, देर से पानी न मिला था। अब वे 'पानी-पानी' चिल्ला रहे थे। एक बुढिया ने कहा—"हाय! बच्चे को बुखार हो रहा है, अब क्या करूँ?"

दूसरी बोली—"ये मुये डाक्टर पकड़-पकड़कर क्यों करते है?"

"काली माई की भेंट चढ़ाते है।"

दूसरे ने कहा—"अस्पताल में जो गया, सो मरा। वह यमराज का दूसरा घर है।"

"अजी, इनका तो बाप पैसा है। जिसने पैसा दिया, उसका सब काम हो गया।"

एक ने कहा—"नही जी, सरकार तो जो करती है, वह अच्छा ही करती है।"

दूसरा दिनककर बोला—"तब कुएँ-तालावों मे जहर क्यो डलवाया है?"

"यह जहर नहीं है, दवा है—जो प्लेग के कीटों को मारने के लिए है

धीरे-धीरे एक डॉक्टर, एक लेडी डॉक्टर, और दस-बारह कॉन्स्टेबिल और मजिस्ट्रेट का जत्था गाड़ी के पास आया, और एक सिरे से गाड़ी का मुआयना करने लगा।

"सब लोग नीचे उतर आओ और अपने-अपने टिकट निकाल लो! बच्चों को और असबाब को गाड़ी ही में रहने दो!"

यात्रियों ने चुपचाप प्लेटफॉर्म पर कतार बाँध ली।

लेडी डॉक्टर ने स्त्रियों की, और पुरुष डाक्टरों ने पुरुषों की जाँच करना प्रारम्भ कर दिया। जाँच क्या थी—छूमतर था—जरा छुआ, और मुआयना हो गया। परन्तु जिनके चेहरे जरा मैले थे—टिकट प्लेग के स्थानों से था, उनकी खास तौर पर देख-भाल की गई। जिन्हें रोकना होता, उनकी तरफ पुलिस को संकेत करके वे आगे बढ़ते।

चालीस-पचास आदमी इस प्रकार पुलिस के कब्जे में पहुँच गए। उनमें भी कुछ पूजा कर-करके फिर गाड़ी में लौट रहे थे।

डाक्टरों का दल बाबू साहब के डब्बे के सामने पहुँचा। वे सोये पड़े थे। टिकट-कलक्टर ने डब्बे में घुसकर कहा—"आप कहाँ जाएँगे बाबू?"

कुमुद ने कहा—"उन्हें न जगाइये, उनकी तबीयत ठीक नहीं है।"

"आप कहाँ से आ रही है?"

"रामपुर से।"

"वहाँ तो प्लेग है। बाबू को क्या हुआ है?" डाक्टर ने गाड़ी में घुसते-घुसते कहा।

बातचीत सुनकर बाबू साहब जाग चुके थे। उन्होंने कहा—"और कुछ नहीं; थकान से जरा तबीयत सुस्त हो गई थी, मैं समझता हूँ, सोने से ठीक हो जायगी।"

डाक्टर ने थर्मामीटर लगाकर कहा—"साहब, आपको ज्वर है।"

बाबू साहब और कुमुद दोनों पर मानो वज्र गिर पड़ा। डाक्टर ने कहा—"आपको आराम होने तक यहाँ ठहरना पड़ेगा।"

"यह तो असम्भव है।"

"आपका आगे जाना और भी असम्भव है।"

"मैं डिप्टी-कलक्टर हूँ, और सरकारी काम से जा रहा हूँ।"

"मैं भी सरकारी काम कर रहा हूँ। मेरा फर्ज है, कि मैं किसी भी सन्दिग्ध रोगी को आगे न जाने दूँ।"

"पर मैं रोगी नहीं हूँ।"

"क्षमा कीजिये, यह निर्णय करना मेरा काम है।"

"मैं अभी कमिश्नर को तार दूँगा।"

"आप चाहे कुछ भी करें।"

"सरकारी काम मे यदि विलम्ब हुआ, तो उसके जिम्मेदार आप होंगे।"

"इन बातों से मुझे कोई सरोकार नहीं।"

"खैर, मेरे साथ मेरी स्त्री और नौकर है, उन्हें आप मेरे साथ रहने की व्यवस्था कर देंगे?"

"यह असम्भव है।"

"तब वे लोग अलहदा ठहरेंगे कहाँ?"

"यह मेरे विचार का विषय नहीं।"

"आप बड़े निर्दयी प्रतीत होते है।"

डॉक्टर क्रुद्ध होकर बिना जवाब दिये कान्स्टेबल को सकेत कर गाड़ी से उतर गये। विवश होकर, बाबू साहब को उतरना पड़ा। उन्होंने स्त्री से कहा—"तुम भोलू के साथ धर्मशाला मे ठहरो, मैं तार भेजकर सुबह तक सब प्रबन्ध कर लूँगा।"

कुमुद ने विवशता देख धैर्य से पति की आज्ञा मान ली और पुलिस के पहरे में बाबू साहब अस्पताल मे पहुँचाये गये।

बाबू साहब की रात कैसे कटी—यह जानने का कोई उपाय बेचारी कुमुद के पास न था। नौकर इतना योग्य न था कि वह कुछ खबर लाता। फिर उसे भेजते हुए वह भय खाती थी कि अकेली कैसे रहेगी? विवश होकर वह बच्चे को छाती से लगा धर्मशाला मे रात काटने चली गई और बड़ी कठिनता से उसने रात काटी।

अभी प्रभात हुआ ही था कि पुलिस के दो-तीन आदमी वहाँ आये और सूचना दी कि आपके पति को प्लेग का आक्रमण हुआ है और उनकी हालत खतरनाक है। कमिश्नर साहब ने तार के जरिये उनके ठहरने और

चिकित्सा का पृथक् प्रबन्ध कर दिया है। अब आप चलकर उनके पास ठहर सकती हैं।

सब कुछ सुनकर कुमुद को काठ मार गया। वह मानो सज्ञा-विहीन हो गई। ईश्वर को क्या करना है—इसकी किसे खबर? वह झटपट पति की सेवा में जाने को तैयार हो गई।

अस्पताल के एक पृथक् और प्रशस्त कमरे में बाबू साहब का प्रबन्ध किया गया था। वे मूर्च्छित अवस्था में पड़े हुए थे। कुमुद उनकी तरफ दौड़ी। परिचारिका ने कहा—"आप इनसे स्पर्श न करें। यह छूत का भयानक रोग है, आप पर आँच आने का भय है।"

"ओह, मुझे उसका भय नहीं, यह समय इन बातों के विचार करने का नहीं।"

"परन्तु बच्चे का खयाल तो आपको रखना है।"

कुमुद कुछ क्षण रुकी। इसके बाद उसे नौकर की गोद में देकर कहा—"इसे दूसरे कमरे में ले जा।" इसके बाद ही वह पति का सिर गोद में लेकर बैठ गई।

दो दिन व्यतीत हो गये। कुमुद ने अन्न-जल भी नहीं ग्रहण किया है। वह परमेश्वर से लौ लगाये बैठी है। उसके सौभाग्य पर भयानक सकट आया है। क्या यह समय टल जायगा? वह बारम्बार ईश्वर को पुकारती थी, रोती थी, और स्वयं ही ढाढ़स बाँध लेती थी। ईश्वर को छोड़कर उसका कहीं ठौर न था।

दूसरे दिन, तीसरे पहर घर के सभी लोग वहाँ आ गये। शहर के आफीसरों ने भी अच्छे से अच्छा प्रबन्ध कर दिया। कई प्रतिष्ठित डाक्टरों ने मिलकर चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। कुमुद स्थिर होकर पति के पलँग के पास बैठी है। डाक्टर की योजना पर ठीक समय पर दवा और पथ्य देती है। मलमूत्र स्वयं साफ करती है।

परन्तु भावी प्रबल है। सब कुछ होने पर भी बाबू साहब की दशा क्षण-क्षण पर खराब होती जा रही है। लोगों की आशा भी टूटने लगी। लोग हताश और अनमने होने लगे। कुमुद के लिए यह मानो वज्र-सम्वाद था। वह आशा के कच्चे तार के सहारे चुपचाप बैठी अपना कर्त्तव्य-पालन

कर रही थी। एक बार वह बैठी-बैठी चक्कर खाकर गिर पड़ी। सिर से रक्त की धार बह चली। वह बेहोश हो गई। डाक्टरों ने उपचार किया पर होश में आते ही वह फिर पति के पलँग पर आ बैठी। वह कई दिन से सोई न थी, और नींद उसपर आक्रमण कर रही थी। उसी आँखें झँपी पड़ती थीं, और सिर लटका पड़ता था। सभी लोग उससे जरा सो जाने के लिए आग्रह करते थे, परन्तु इस समय उसके सौभाग्य-सिंदूर पुछने की घड़ी निकट आ रही थी। सदा के लिए उसके प्रिय पति की जुदाई का समय आ रहा था। उसके जीवन की तमाम आशा और भरोसों का सुख-सूर्य डूबनेवाला था। वह सोती कैसे? पलक भी कैसे मारती? न जाने कब वह घड़ी आजाय, और कब उसके जीवन में वह दारुण क्षण टूट पड़े! अन्त में वह क्षण भी उसीके नेत्रों के देखते-देखते आ गया, और उसके परम प्रिय पति ने अपनी अन्तिम श्वास पूरी की। कुमुद एक बार एकाएक खड़ी होकर चीख उठी, फिर वह धड़ाम से धरती पर गिर गई। डाक्टरों ने समझा, कि यह भी मर गई। परन्तु फिर देखा, साँस चल रही है। वे उसे होश में लाने के उपचार करने लगे। एक घण्टे में उसे होश आया। होश में आते ही प्रथम तो वह कुछ देर विमूढ़-सी बनी बैठी रही। उसने चारों तरफ आँखें फाड़-फाड़कर देखा, मानो वह उस भयानक दुर्घटना को भूल गई थी, पर जब उसकी दृष्टि पति की लाश पर पड़ी, तो वह एकदम कपड़े फाड़ने और पागल की तरह अस-म्बद्ध बकने लगी। उसकी दशा देखकर देखनेवालों का कलेजा मुँह को आता था। पर उसे समझाना-बुझाना सम्भव ही न था। दो-तीन स्त्रियाँ उसे कस-कर पकड़े हुई थीं। वह बीच-बीच में जब बेहोश हो जाती, तब कुछ मिनट को शान्त हो जाती, पर होश में आते ही वह फिर उसी भाँति चिल्लाने लगती।

अन्ततः बाबू साहब की अन्त्येष्टि-क्रिया की गई। तीन दिन सब वहीं रहे। इसके बाद अर्द्धविक्षिप्त कुमुद, रूप, शोभा, सौभाग्य सबको खोकर विधवा वेश में पति-घर को लौटी।

२१

कुमुद की ससुराल बहुत वडी थी। ससुर, सास, जिठानी, देवरानी, देवर, जेठ, उनके बच्चे, दो कुँवारी, एक ब्याही, एक विधवा ननद और एक विधवा मौसी थी। दो-चार दास-दासी भी थे। बडी भारी हवेली थी।

कुमुद की सभी खातिर करते थे। सास उसे कमाऊ पुत्र की बहू समझकर आँखों पर रखती थी, कुमुद जब कभी दस-बीस दिन को जाती, हाथोंहाथ उसकी खातिर होती। ननद-जिठानी उससे कुछ प्राप्त करने के लालच मे उसकी लल्लो-चप्पो मे लगी रहती। नौकर-दासी इनाम-कपड़ा पाने के लोभ मे उसकी बड़ी सेवा बजाते। कुमुद मन की उदार, हृदय की मधुर और हाथ की खुली थी। वह बडी हँसमुख भी थी। हास्य का फव्वारा सदैव उसके मुख से झडा करता था। उसकी सखी-सहेलियो की भी कमी न थी। जब-जब वह ससुराल मे रहती—बस, एक जमघट उसके कमरे मे दिन-भर बना रहता था।

वह वास्तव मे उदार और मिष्ट-भाषिणी ही न थी। वह सास, ससुर, जिठानी और ननदो की छोटी-वडी सेवायें दास-दासी के रहते अपने हाथों से करती। एक वक्त का भोजन भी स्वय बनाती। घर की किसी भी स्त्री को काम ही न करने देती। जिठानियों के बच्चो का लाड-प्यार करते उसका दिन बीतता था। उन्हें नये-नये वस्त्र पहनाना, खिलाना, नहलाना-धुलाना उसका धन्धा था। सबसे 'जी' कहकर बोलना और हुक्म के साथ उठ खड़ा होना उसका व्यवहार था।

जिठानी-देवरानी कुपढ देहाती स्त्रियाँ थी। सास भोली और वृद्धा थी। प्राय. घर गन्दा, अव्यवस्थित और देहती ढग पर पडा रहता। उसे आदत थी, अग्रेजी टग मे सजे बँगले मे रहने की—वडी नफासत और सुघराई के साथ। सो, वह आते ही घर का सस्कार शुरू कर देती। उसने नौकरो के वेतन भी वढा दिये थे। गरज, घर मे सभी उससे सन्तुष्ट और प्रसन्न थे, और वह सवकी प्रिय पुतली, सवके हृदय की दुलारी, और सवकी आँख की

नूर थी। यह साध्वी, गुणवती, सौभाग्यवती स्त्री आज कुछ और ही वेश में उस घर मे आ रही थी। वह 'विधवा' थी, अब उसका सर्वस्व नष्ट हो चुका था। क्या ससार मे हिन्दू स्त्रियों के वैधव्य से भी भयानक कोई वस्तु है—जहाँ सब ससार पलट जाता है! वह मलिन वस्त्र पहने, धरती मे पडी रहती है। पास-पड़ोसिन, सहेलियाँ, ननद, जिठानी-देवरानी—मानो उसके लिए कोई नही। सब आई, सब ने भिन्न-भिन्न भाँति से सहानुभूति प्रकट की, पर वह बोली नही, रोई भी नही, कुछ कहा भी नही—जडवत् धरती मे पडी रही। वह कभी-कभी अपने बच्चे को और जिठानियो के बच्चों को अत्यन्त सतृष्ण नेत्रो से देखा करती, पर उन्हे छूती नही, बात भी नही करती। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख-दु.ख से परे—मानो वह विदेह रूप मे सांस ले रही थी। जीवन-बन्धन उसका टूट चुका था, वह मानो जीवनमुक्त थी। धीरे-धीरे शोक पुराना होने लगा। कुमुद कुछ खाने और अति सक्षेप मे बातचीत करने लगी। घर की स्त्रिया भी धीरे-धीरे उस दुखिया के दारुण दु ख को उपेक्षा से देखने लगी। करोडो ही विधवाएँ हिन्दू घरो मे इस दारुण दु.ख को लेकर जी रही है। फिर इसमे नवीनता क्या है?

दो मास व्यतीत हो गए। अब कुमुद का हास्य सदा को उड गया था, वह किसी भी सखी-सहेली से बात तक न कर प्राय: मौन ही रहने लगी। उस घर की सभी स्त्रियो के मन में उसके प्रति आदर और प्रेम का भाव नष्ट हो गया। कुमुद विदुषी थी। वह सब कुछ समझ गई, और सब कुछ सहने को तैयार भी हो गई। पति की सभी कमाई अपने आभूषण सहित उसने दान-पुण्य मे खर्च कर दी। सिर्फ उनके बीमे के दस हजार रुपये, बच्चे के समर्थ होने पर उसकी शिक्षा के लिए बैंक मे उठा रक्खे। धीरे-धीरे रामायण के पढने मे उसने मन लगाया। वह प्राय. उसे चुपचाप पढा करती और आँसू बहाया करती थी।

उसकी यह एकान्तप्रियता और मौनावलम्बन घर की स्त्रियो को खटकने लगा। शीघ्र ही उसपर ताने कसे जाने लगे, वह घर का कुछ भी धन्धा न करके पुस्तक पटा करती है—इसपर खुल्लम-खुल्ला आक्षेप होने लगे।

कुमुद ने सब कुछ सहने का निश्चय कर लिया था। वह एक बार भोजन करती, और चटाई पर बैठी रामायण-पाठ करते-करते उसी पर सो

रहती। भोजन ताजा है या बासी, रूखा है या सूखा, कम है या यथेष्ट—इसकी विवेचना से उसे कुछ प्रयोजन नहीं। अन्त में एक दिन वह भी हुआ, जो बहुधा होता है। कुमुद को ज्वर आ गया था, वह चटाई पर चुपचाप पड़ी थी। जिठानी ने कहा—"बहू, इस तरह पड़े-पड़े तो शरीर मिट्टी हो जायगा, कुछ काम-धन्धा किया करो।"

कुमुद कुछ बोली नहीं, चुपचाप एकटक देखती रही। जिठानी ने जरा उच्च स्वर में कहा—"क्या गूँगी हो, जवाब ही नहीं देती? या हम तुमसे बोलने के योग्य नहीं?"

कुमुद अब भी चुप रही। यह देख, जिठानी क्रोध से थर-थर काँपने लगी। उसने चिल्ला-चिल्लाकर कहना शुरू किया—"अरे! देखो, इस राँड की आँखें, इसका खसम कमाकर रख गया है, रानी पड़ी-पड़ी खायेंगी। घर का काम-धन्धा तो करेंगी नहीं, किसी आदमी से बात भी न करेंगी।"

घर-भर में हल्ला मच गया। सभी अपनी-अपनी बकती थीं, पर कुमुद ने एक शब्द भी न कहा। वह चुपचाप चटाई पर पड़ी रही।

वृद्धा सास ने आकर कहा—"क्या है री, क्यों उसे तंग कर रही है?"

"उसे अम्माजी, तुम माथे पर रख लो।"

"वह तुम्हारा क्या खाती है?"

"उसका खसम तो बहुत कमाकर रख गया है न।"

वृद्धा ने उन्हें एक झिड़की दी और कुमुद के माथे को छुआ। उससे कहा—"बहू उठ, खाट पर सो रह; तुझे ज्वर हो रहा है।" कुमुद बोली नहीं, उठी भी नहीं। हाँ, उसकी आँखों से टप-टप आँसू टपकने लगे।

२२

गर्मी के तो दिन थे ही, सन्ध्या को भोजन करके हरनारायण कोठे पर मजे से पड़े पान कचर रहे थे। तभी श्रीमती हरदेई ने पहुँचकर कहा:

"बड़े सुख से लेट रहे हो!"

हरनारायण आज जरा खुश थे। उन्होंने हँसते-हँसते कहा:

"सुख से लेटना तो कोइ पाप नहीं है।"

"तुम्हारे घर में पाप है ही क्या ?"

"बड़ी आफत है—तुम्हारी एक-एक बात गर्मा-गर्म होती है।"

"पर तुम ऐसे शीतल परसाद हो कि गर्मी छू नहीं जाती।"

हरनारायण ने देखा यह केवल उपहास ही नहीं है—जरूर कोई बात है। हँसी रोककर बोले—"आज फिर कोई सुर्खी लाई हो क्या ?"

अब हरदेई ने एकदम मामला साफ करने की गरज से एक तोड़ा-मरोड़ा कागज उनके हाथ में देकर कहा—"लो, इसे पढ़कर तो देखो।"

हरनारायण ने उसे हाथ में लेकर हँसते-हँसते कहा—"हम बिना पढ़े ही समझ गये—तुम्हारे भाई साहब की चिट्ठी आई है। कह डालो, कब की तैयारी है ? मुझे तुम्हारी रुखसती मन्जूर है—बस, अब तो खुश हो ?"

हरदेई ने कपाल ठोककर कहा—"हाय कर्म ! इसे पढ़ो तो, या मनमाना मतलब समझकर ही छुट्टी पाई ?"

हरनारायण अभी तक मौज में आ रहे थे, बोले—"तो इस अँधेरे में कैसे पढ़ा जाय ? जरा मुँह पास लाओ, शायद उसकी रोशनी में पढ़ सकूँ।"

हरदेई ने झुँझलाकर कहा—"भाड़ में जाय तुम्हारी हँसी ! आठ पहर की क्या हँसी ?"

"तो फिर तुम्हीं सुना दो—इसमें क्या लिखा है।"

अब की बार हरदेई को क्रोध चढ़ आया। उसने तड़पकर कहा—"जरा होश में आकर बैठो, सर्वनाश हो गया ! अपनी इज्जत की भी कुछ खबर है ?"

अब हरनारायण उठकर कहने लगे—"कहती क्या हो ? क्या सर्वनाश हुआ ?" वे बिना ही उत्तर की प्रतीक्षा के कमरे में आकर पुर्जा पढ़ने लगे।

पुर्जे पर पेन्सिल से लिखा था :

"प्यारी भगवती !"

"दो दिन जी ललचाकर तुमने एकदम इधर की सुध ही भुला दी। उस दिन तुम परसों जरूर-जरूर आने का वादा करके गई थीं, पर वह 'परसों' आज तक न आई—पन्द्रह दिन बीत गये हैं। छजिया रोज हारकर लौट आती है। तुम भाई के डर का बहाना करके टाल देती हो। पर यह डर

तुम्हारा फजूल है। अब तक जैसे चुपचाप काम हुआ है, वैसे ही सदा होगा। मैंने ब्याह की बाबत आर्यसमाज के पंडित से पूछा था, सो उसने कहा कि उसके माँ-बाप को राजी कर लो, ब्याह हम करा देंगे। अब तुम मौका पाकर उनको टटोलना। पक्का वायदा करो—कब मिलोगी। मेरा एक-एक पल सौ-सौ वर्ष का कटता है। ज्यादा क्या लिखूँ? आज थोड़ा कुछ भेजता हूँ। छजिया को जवाब देना। चिट्ठी पढ़कर फाड़ डालना।

तुम्हारा दास
गोविन्दसहाय"

चिट्ठी पढ़कर हरनारायण के तो होश उड़ गये। वे भौंचक-से खड़े स्त्री की ओर ताकते रहे। हरदेई ने कहा—"क्यों? समझे न अब बहन की करतूत?"

उसकी बात मानो अनसुनी करके उन्होंने पूछा—"यह पुर्जा तुम्हें मिला कहाँ?"

"सुखिया कहीं से ले आई थी—वह खेलती फिर रही थी। किरपू उससे छीनने-झगड़ने लगा। सुखिया मचलकर धरती पर पड़ गई। तब मैं किरपू से छीनकर उसे बहलाने लगी। अचानक लिखावट पर नजर पड़ी। पहले तो समझा, कोई रद्दी कागज होगा। पर छजिया का नाम लिखा देखकर जो पढ़ा, तो पता लगा कि इसमें कौतुक भरे पड़े हैं।"

हरनारायण बिना कुछ कहे, भगवती के कमरे की ओर दौड़े। उस समय वे क्रोध में पागल हो रहे थे।

२३

भगवती बैठी हुई गोविन्दसहाय की भेजी हुई मिठाई खा रही थी। अभी रसगुल्ले का एक टुकड़ा उठाकर मुँह में रखा ही था, कि इतने में उसके कान में आवाज पड़ी—"भग्गो! भग्गो! अरी भग्गो! कहाँ गई?"

भगवती भाई की आवाज पहचानकर, एकदम घबरा उठी। उसका

खून थम गया। उसने मुँह की मिठाई खाट के नीचे थूककर और जल्दी से मुँह पोछकर कहा—"हां भाई, आती हूं।" कहकर और जल्दी से मिठाई को बिस्तरे में छिपाकर बाहर को दौड़ी। बाहर हरनारायण को देखकर कहा—"क्यों भैया, क्या है? तुमने मुझे पुकारा था!"

हरनारायण ने कड़ी नजर से उसकी ओर देखकर कहा—"तू कर क्या रही थी?"

भगवती ने सिटपिटाकर कहा—"मैं? मैं कुछ नहीं—पढ़ रही थी?"

"हूं, पढ़ रही थी? अंधेरे में बिना दिये-बत्ती के क्या पढ़ रही थी?"

भगवती का मुंह सूख गया। उसने सम्हलकर कहा—"भैया! मुझे पढ़ते-पढ़ते अभी नींद आ गई थी। तुमने क्या मुझे कई आवाजें दी थीं?"

इतना कहकर उसने भाई के क्रुद्ध मुख को देखा। उसे देखकर उसके रहे-सहे होश भी जाते रहे। हरनारायण ने उसे अग्निमय दृष्टि से देखकर कहा—"अभागिनी! तू वहाँ क्यों गई थी?"

अब तो भगवती थर-थर काँपने लगी! पर उसने सावधान होकर जवाब दिया—"कहाँ भैया?"

"कम्बख्त लड़की! तुझे यहीं जमीन में गाड़ दूंगा। इस बहानेबाजी को छोड़कर जवाब दे। सच बता, तू वहाँ क्यों गई थी? नहीं तो आज तेरी शामत आई रक्खी है।"

भगवती के सारे शरीर में आग-सी लग रही थी। घर के छप्पर, द्वार घूमते दीखते थे। अब की बार वह कुछ न बोल सकी। हरनारायण और क्रुद्ध होकर बोले—"जिन्दी है, कि मर गई? मेरी बात का जवाब दे।"

भगवती ने रोकर कहा—"मैं तो कहीं नहीं गई भैया!"

"तू कहीं भी नहीं गई? सच कहती है? अच्छा, इस चिट्ठी में क्या लिखा है?"

अब तो भगवती का चेहरा पीला पड़ गया। उसका सारा शरीर पसीने से सराबोर हो गया। वह चिट्ठी को हाथ में लिये नीची दृष्टि किये खड़ी रही। हरनारायण ने कड़ककर कहा—"बोल—इस चिट्ठी में क्या है?"

"मैं क्या जानूं?"

"तू कुछ नहीं जानती? इसमें क्या लिखा है, पढ़ तो सही!"

२४

उपर्युक्त घटना यद्यपि चुपचाप ही हुई थी, भगवती न तो रोई, न चिल्लाई, न उसके मुँह से कोई शब्द ही निकला। फिर भी उस छोटे-से घर में वह घटना छिपी न रही। जिस समय बालिका भगवती धरती पर मूर्च्छित पड़ी हुई थी, और हरनारायण क्रोध मे आग-बबूला होकर अनाप-शनाप बक रहे थे, उसी समय उसकी माता ने कमरे मे प्रवेश किया। कोठरी का रंग-ढग देखकर उसने अकचकाकर पूछा—"यह क्या हुआ रे?"

हरनारायण कुछ देर तक ज्वालामय नेत्रों से माँ की ओर ताककर बडबडाता रहा। गृहिणी ने देखा मामला कुछ सगीन है। उसने गम्भीरता से कहा—"अरे बता तो, कहा—हुआ क्या?"

हरनारायण ने लडखड़ाती हुई जबान से कहा—"हुआ तेरा सिर! तुम सब जाकर कुएँ मे डूब मरो!"

इतने मे हरदेई और नारायणी भी वही आ पहुँची। हरदेई ने कहा—"माँजी! क्या पूछती हो, कहने की बात ही नही रही!"

गृहिणी ने बहू की ओर फिरकर कहा—"तू ही कुछ बता, बात तो मालूम हो!"

हरदेई ने धीमे स्वर मे कहा—"तुम्हारी धी ने खूब जस कमाया है!"

गृहिणी ने झुंझलाकर कहा—"बेहूदी! क्यों जबान चलाती है, साफ-साफ क्यों नही कहती?"

हरनारायण ने तमककर कहा—"तेरी आँखें तो नही फूट गई। यह देख, अपनी लाड़ली बेटी को, ये सामान तूने ही खरीद कर दिये थे न?" इतना कहकर उसने एक-एक चीज साबुन, लेवेण्डर, कंघी, इत्रदान, उठा-उठाकर माता के सामने पटक दिये।

वृद्धा ने पुत्र की ऐसी कडी बात कभी नही सुनी थी। सुनकर जो उसे क्रोध हुआ था, वह इन चीजों को देखकर काफूर हो गया। वह आतङ्क से आँखें फाड़-फाड़कर पुत्र के मुख को ताकने लगी।

हरनारायण ने कहा—"अब भी समझी कि नही या और समझाऊँ ?"

इतना कहकर उसने पत्र निकालकर अपनी स्त्री के हाथ पर धरके कहा—"इसे भी सुना दो, जिससे इसके कान खुल जायं ।"

हरदेई ने पत्र ज्यों का त्यों सुना दिया । गृहिणी का माथा घूमने लगा। वह सिर पकड़कर वहीं बैठ गई। घर में गोल-माल देखकर जयनारायण भी वहाँ आ गये थे, और सब कथा सुन रहे थे। परन्तु उन्हें किसी ने देखा नहीं था। सब कुछ सुनकर ठण्डी साँस लेकर नीचा सिर किये, वे घर से बाहर निकल गए।

गृहिणी के हृदय में बड़ी चोट लगी थी। वह कुछ देर तक चुपचाप वज्राहत की भाँति बैठी रही। घर-भर में सन्नाटा छा गया। अन्त में वृद्धा अत्यन्त दु.ख से छटपटाकर रोने और 'हाय-हाय' करने लगी। हरदेई ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"अब उठो। यह तो जन्म-भर का रोना है—अच्छी तरह आराम से रोना—कर्मों के पाप क्या बिना फले रह सकते हैं।"

गृहिणी ने दाँत पीस और छाती कूटकर कहा—"छजिया वन्दी ! तेरे कोढ़ चुए—तेरे मांस को कौवे-चील खायें—तेरे कीड़े पड़ें !! मेरी दूध की बच्ची को तूने जहर पिलाया है। हत्यारी ! मुझे क्या खबर थी कि इसीलिए तेरे पैर इस घर में पड़े हैं ! हाय हत्यारी, तेरा सर्वनाश हो जाय !" इतना कहकर गृहिणी बिलख-बिलखकर रोने लगी।

हरदेई ने कहा—"मैं रोज देखती थी—जब देखो, खुसुर-फुसुर, जब देखो, तभी जाने क्या-क्या मन्सूबे गाँठा करती थी। हमें क्या खबर थी कि यह गजब ढाया जा रहा है !"

इतने में हरनारायण ने माता का हाथ पकड़कर कहा—"चल उठ यहाँ से, देखें—भगवान् की क्या मरजी है।"

वृद्धा ने देखा कि पुत्र के मुख पर अब कठोर भाव नहीं है, उसके नेत्रों में आंसू छलछला रहे हैं। वृद्धा उठ खड़ी हुई। सब कमरे से चल दिये।

पाठक, भगवती का क्या हुआ ? उस समय वह सभीके क्रोध और घृणा की पात्री थी। उस घृणित अपराधिनी को कोई क्यों आँख उठाकर देखता ? किसीको क्यों उसपर ममता आती ? वह मरी है या जीती है—इसे जानने की कौन चिन्ता करता ! मार से उसकी चमड़ी उधड़ गई है, मांस निकल

आया है, अधमरी हो गई है, प्यास से कण्ठ सूख रहा है, प्राण कण्ठ मे आ रहे हैं, फिर भी वह किसी की दया और अनुकम्पा की अधिकारिणी नही है। वह पापिनी जो है ! पापिनी पर दया और सहानुभूति दिखानेवाला भी पापी समझा जाता है, चाहे वह उसका मां, बाप, भाई, बहन ही क्यों न हो। पाठक ! मनुष्य-समाज की सभ्यता का ऐसा ही नियम है। कोई करे भी तो क्या ? इसीमे उसकी तरफ एक-आँख बिना देखे ही सब चले गए !!!

तब क्या भगवती अकेली मूर्च्छित पड़ी है ? नही पाठक, एक प्राणी है, जो उसे प्यार करता है। क्यो प्यार करता है, सो हम नही जानते। दो बातें हो सकती हैं--या तो वह उसके पाप को नही समझती और या उसे उसकी परवाह ही नही है। जो हो, वह प्यार करता अवश्य है। तब वह व्यक्ति कौन है ? वह है हतभागिनी बालिका की अभागिनी बहन नारायणी।

जब तक यह काण्ड होता रहा, वह चुपचाप पत्थर की तरह खड़ी रही। जब सब चले गये, तब वह धीरे-धीरे धरती पर पड़ी हुई बहन के पास घुटनो के बल जा बैठी।

भगवती बड़ी देर की होश मे आ गई थी। पर वह कुछ तो भय और लज्जा के मारे चुपचाप पडी हुई थी, कुछ तकलीफ के कारण उठने की शक्ति भी उसमें नही थी। नारायणी ने धीरे-धीरे उसकी पीठ पर हाथ फेरते-फेरते *कहा— "जीजी !"*

भगवती ने सुन लिया, पर न वह बोली, न मुंह ऊपर को उठाया।

नारायणी यद्यपि रोग और दुःख से छुटकारा पा चुकी थी, फिर भी उसकी आकृति और वाणी अत्यन्त करुणापूर्ण थी—इस समय वह अत्यन्त दुःखी हो रही थी। उसने अत्यन्त करुणार्द्र स्वर से फिर पुकारा—"जीजी !" पर भगवती वैसी ही मौन बनी रही।

अब नारायणी रोने लगी। सब रो चुके थे, वही बच रही थी, अब उसकी भी बारी आई। वह चुपचाप बहन के ऊपर झुककर रोने लगी, उसके गर्म-गर्म आँसू जब भगवती की पीठ पर गिरे, तो भगवती ने मुंह उठाकर क्षीण स्वर से *कहा—"क्यों रोती हैं नारायणी ?'*

नारायणी रोती रही।

भगवती ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"अरी, रोती क्यों है ?"

भगवती उठकर बैठ गई। उसने नारायणी के आँसू पोंछकर कहा—"रो मत, अब मैं बैठ गई।"

नारायणी और जोर से रोने लगी।

भगवती ने बार-बार आँसू पोंछकर कहा—"चुप हो जा नरो, इतना क्यों रोती है, बता तो ?"

नारायणी ने हिचकी लेते-लेते कहा—"तुझे भाई ने इतना क्यों मारा था ?"

भगवती का कलेजा मुँह को आ गया। उसने जल्दी से बहन को छाती से चिपका लिया। दोनों मे कौन अधिक रो रहा था, यह बताना कठिन है। पर उनका तार टूटता ही न था। दोनों एक-दूसरे को धीरज देने के लिए रोना बन्द करना चाहते थे, पर रोए ही जाते थे। अस्तु, अवसान सबका है —रोने का भी अवसान हुआ। नरो ने बहन की छाती में से सिर निकालकर कहा—"जीजी ! चल, खाट पर सो रह।"

भगवती ने बहन को बहलाने के लिए उसकी बात को स्वीकार कर लेना ही उचित समझा, भगवती चलकर सो रही, नारायणी पास बैठकर पंखा करने लगी।

भगवती ने कहा—"नरो आ, तू भी यहीं सोजा।"

नारायणी चुपके से बहन के पास जा पड़ी।

२५

प्रभात होने मे देर है। ऊषा का उदय हो गया है। तारों की ज्योति फीकी पड़ गई है। पूर्वाकाश में पीली प्रभा की झलक दिखाई दे रही है। शीतल-मन्द-सुगन्ध बयार बह रही है। समस्त विश्व सुख की नींद ले रहा है। पर एक एकान्त कोठरी में एक बालिका भयकर ज्वर मे तड़पती हुई बेहोश पड़ी है, और दूसरी अत्यन्त बेसबरी के साथ दिन निकलने की प्रतीक्षा में बैठी उसका मुँह निहार-निहारकर और बीच-बीच मे उसका शरीर छू-

छूकर रो रही है।

धीरे-धीरे और भी कुछ उजाला हुआ। बालिका नारायणी धीरे से उठकर कोठरी से बाहर हुई। सब पड़े सो रहे थे। नारायणी चुपचाप पैर दबाये माता की कोठरी में घुस गई। देखा, माता बेसुध पड़ी सो रही है। उसने उसका कन्धा हिलाकर कहा—"माँ, माँ, जरा उठो तो।"

वृद्धा ने आँख खोलकर कहा—"कौन, नारायणी? क्या है?"

"माँ, जीजी को तो चलकर देख—वह कैसी हो रही है?"

वृद्धा ने माथा सिकोड़कर कहा—"क्यों, कैसी हो रही है? चल, परे हो यहाँ से! मरने दे—खबरदार! जो यहाँ आई!!" इतना कहकर वह मुँह फेरकर पड़ रही। थोड़ी देर तक नारायणी खड़ी-खड़ी सोचती रही, कि अब क्या करे। एक बार उसने फिर माँ का कन्धा छूकर कहा—"माँ! वह बहुत बीमार हो गई है।"

बुढ़िया ने झुँझलाकर कहा—"वह मरे भी किसी तरह! जब वह मर जाय, तब मुझे खबर देने आना।"

बालिका हताश होकर लौट चली। सोच-विचारकर उसने पिता के पास जाना निश्चय किया। वह डरते-डरते पिता के कमरे में घुस गई।

जयनारायण की आँखों में उस दिन नींद नहीं आई थी, उसने कन्या को देखते ही कहा—"कौन नरो? क्यों बेटा, क्या हुआ?" इतना कहकर वे उठकर पुत्री के पास आ खड़े हुए।

नारायणी ने काँपते स्वर से कहा—"जीजी बहुत बीमार हो गई है, रात-भर बकती रही है। कभी-कभी उठकर भागती थी। मैंने बड़ी मुश्किल से रोका है। सारा बदन आग की तरह तप रहा है।"

जयनारायण ने एक ठण्डी साँस लेकर द्वार की तरफ देखा और चुपचाप भगवती के कमरे की ओर चल दिये। देखा, भगवती ज्वर में बेहोश पड़ी है। तब तक कुछ प्रकाश हो गया था। उसके वस्त्र को उठाकर जो उन्होंने उसका शरीर देखा, तो उनके सिर में चक्कर आ गया। हाय! शरीर-भर में चमड़ी नहीं बची थी। जयनारायण थोड़ी देर तक अपनी अभागिनी पुत्री की दशा देखते रहे—मानो वह कोई भयंकर स्वप्न देख रहे थे। उनका मुख रह-रहकर भयंकर होता जाता था। जयनारायण से वहाँ ठहरा न गया। उन्होंने

नारायणी से कहा—"बेटी, मैं अभी वैद्य को बुलाता हूँ, तू यहीं बैठ।" इतना कहकर वे बाहर आये। देखा, हरनारायण लोटा लेकर शौच जाने की तैयारी में है।

जयनारायण ने दुःखी स्वर से कहा—"अरे? उसे तूने जान से ही मार डाला होता तो अच्छा होता—जिन्दा क्यों छोड़ दिया? तुझे उस पर कुछ भी दया नहीं आई?"

हरनारायण ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह ज्वालामय नेत्रों से पिता को घूरते हुए लोटा लेकर बाहर निकल गया।

जयनारायण पुत्री के औपधोपचार में लगे।

२६

बिजली के ज्वलन्त प्रकाश में कमरा धक-धक चमक रहा था। उसमें खूब ठाठ से विलायती वस्तुओं की सजावट भी हो रही थी। कमरे के बीचों-बीच एक कोच पर एक सुन्दरी लेटी थी, और एक युवक पास ही एक आरामकुर्सी पर सामने बैठा उसे मना रहा था। सुन्दरी के वस्त्र महीन और सुगन्ध से तर थे। वे अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे। वह युवक पर मान कर रही थी। उसकी किसी आज्ञा का पालन युवक नहीं कर पाया था—यही इस मौन कोप का विषय था। युवक ने कहा :

"नाराज न हो वसन्ती, मैं इसी हफ्ते में तुम्हारी मनचाही चीज जरूर बनवा दूँगा। अभी रुपये की जरा कमी आ पड़ी है।"

स्त्री ने मुँह फुलाकर कहा—"चलो हटो, आजकल झूठों का बाल भी बाँका नहीं होता। पहिले झूठे झट मर जाया करते थे।"

"लो, अब झूठा समझने लगी।"

"खैर, तुम बड़े सच्चे आदमी सही, परन्तु मेहरबानी करके हमसे न बोलो।"

"तो यों रूठा करोगी?"

"किसे हमारे रूठने की परवाह है?"

"क्या तुम नही जानती, मैं तुम्हे कितना चाहता हूँ !"

"मैं खूब जानती हूँ, तुम अपने रुपयों को चाहते हो।"

"यह झूठ है।"

"ऐसा न होता, तो क्या दो-तीन सौ रुपये के लिए इतना कहलाते ?

"प्रिये, इस वक्त कारबार का हाल ऐसा ही हो रहा है।"

"तब तुम कारबार का फिक्र करो।"

"अब गुस्से को थूक दो, मैं इस हफ्ते मे जरूर तुम्हारी चीजें ला दूँगा।"

"मैं गुस्सा करके कर ही क्या सकती हूँ ? मेरी किस्मत में ही जो नही, उसकी क्या बात है ?" इतना कहकर सुन्दरी ने लम्बी साँस खींची।

"तब मैं समझ गया—तुम मुझसे तनिक भी प्रेम नहीं करती।"

"तुम्हारी समझ पर पत्थर पड़ें !"

"अब यों जली-कटी सुनाओगी ?"

"दिल जलेगा, तो जली ही बात निकलेगी।"

"अच्छा, मैं आग पर पानी डाल देता हूँ।" इतना कहकर युवक ने एक प्याला शराब का भर उसके होंठों से लगा दिया। युवती गटागट पी गई। इसके बाद युवक ने कहा—"लो अब एक मुझे पिला दो, फिर हम लोग रस-रंग मे डूब जाएँ।"

युवती ने प्याला भरकर युवक के होठो से लगा दिया। इसके बाद और एक-एक प्याला चढ़ाकर, दोनो अनाप-शनाप बकने लगे !

युवक ने कहा—"प्यारी बसन्ती, उस छोकरी का भी फिर कुछ हाल-चाल मिला ?"

"उस दर्जिन की बात कहते हो—वह तो उस दिन जो छिटककर भागी, तो फिर दिखाई ही नही पडी। मैं उस दिन गई भी थी, पर उसने तो रुख ही न मिलाया।"

"उसे मिला लिया जाय, तो मजा ही मजा है। कुछ लोभ-लालच दो।"

"इसका उसपर कुछ असर न पड़ेगा।"

"यही हाल भगवती का भी था, पर अन्त मे आ गई हाथ मे या नही ?"

"तब इस तरह तुम मेरा भी जिक्र दूसरी जगह करते होगे ?"

"नहीं, तुम्हे तो मैं दिल से प्यार करता हूँ।"

"और मुझे नही देखते ? घर-द्वार-इज्जत सभी पर लात मारकर आ बैठी हूँ ! तुम्हारे सिवा किसी को जानती तक नही।"

"पर मेरी तितली, उस दर्जिन को हथियाओ, तो बात है।"

"यह मुश्किल है।"

"क्यों ?"

"वह किसी और के हत्थे चढ चुकी है।"

"क्या सच ?"

"एक गबरू जवान रोज ही उसके घर आता है।"

"ईश्वर की कसम—उसे मैं जान से मार डालूँगा।"

"क्यों तुम उस अभागिनी के लिए किसीको मारोगे ? और फिर मैं कहाँ जाऊँगी ?"

"तुम्हारे लिए तो जान हाजिर है।"

"फिर उसपर इतना मन क्यों ?"

"बस, दिल की हालत ही ऐसी हो रही है। नई सूरतें दिल को हमेशा भाती हैं।"

"तो अब मैं पुरानी हो गई।"

"लो, तुम तो फिर उखड़ी-उखड़ी बातें करने लगी ! लो, एक प्याला और चढा लो।"

और एक-एक प्याला दोनों ने साफ किया। इसके बाद क्या बातें हुईं —क्या हुआ—उसमे हमारे लिए कुछ सार नही।

२७

ग्यारह बज चुके है। जयनारायण के घर मे किसी की आँखों में नीद नही है—सब मुँह लटकाये उदास मन बैठे है। जयनारायण धीरे-धीरे लम्बी साँस ले रहे हैं। उसके साथ ही न जाने कितने दु:खोद्गार वायु-मण्डल मे मिल जाते है ! पास ही उनकी स्त्री बैठी आँसू वहा रही है, और बार-बार भगवान् से मौत की प्रार्थना कर रही है। हरनारायण क्रोध से बेचैन

होकर टहल रहे है। मालूम होता है, उसके सारे शरीर में आग लग रही है। अन्त मे जयनारायण ने करुण दृष्टि से पुत्र की ओर देखकर कहा—"अब क्या होगा हरनारायण ?"

हरनारायण चचल दृष्टि से पिता को घूरते हुए कहा—"क्या होगा ? जो होना था, सो हुआ है, और जो होना है, वह होगा। इसे भी देखा है—उसे भी देखेंगे।"

जयनारायण मुँह लटकाकर बैठ गए। उन्होंने माथा ठोककर कहा—"हाय ! इसीलिए मैं बूढा हुआ था ? मेरे भाग्य मे मरना भी नही था—मौत भी माँगने से नही आती !"

हरनारायण ने बीच में ही बात काटकर कहा—"मरने से क्या कुल-कलंक धुल जावेगा ?"

"मैं तो न देखूँगा, मेरी आँखें बन्द होने पर जो हो, सो हो।"

जयनारायण की स्त्री ने बात काटकर कहा—"इन बहकी बातों मे क्या धरा है ? काम की बातें करो, जिससे मामला बराबर हो जाय। जो हुआ सो हुआ, अब इस बात पर धूल डालना चाहिए। कुल-खान्दान की लाज सब गई—चुल्लू-भर पानी मे डूब मरने की बात हो गई। भगवान् ! यह क्या हुआ !!"

जयनारायण ने झुंझलाकर कहा—"क्यों नाहक भगवान्-भगवान् चिल्ला रही हो ? तुम्हारा ही तो पाप है ! अब भगवान् को पुकारने मे क्या रखा है ? जैसा किया, वैसा भोगो।"

"मैंने क्या किया ?"

"भगवती के पुनर्विवाह का नाम सुनते ही तो ऐसे उछल पड़ी थी जैसे बिच्छू ने डक मार दिया हो ?"

"और सुनो ! अधरम की बात कैसे मानी जा सकती है ?"

"अब तो तुमने धर्म की रक्षा कर ली ? अब तो तुम्हारा दूधधोया धर्म फूल उठा ?"

"हमारी तकदीर फूट गई—कपाल मे जो लिखा था, सामने आया।"

"तो उसे भुगतो—फिर यह हाय-हाय क्या ?"

गृहिणी ने करुण दृष्टि से पति की ओर देखकर कहा—"कुछ उपाय

करो।"

"क्या उपाय करूँ?" यह कहकर जयनारायण ने नर्मी से स्त्री की ओर देखा। अब गृहिणी ने धीरे से स्वामी के पास खिसककर उनके कान में मुँह रखकर कहा—"अभी बात फूटी नहीं है। एक काम करो—इसे हरसोने में छोड आओ। वहाँ मेरी विधवा बहन रहती है। सब बात ठीक हो जाएगी।"

"ठीक क्या धूल हो जायगी। वहाँ भी बदनामी फैल जायगी।"

"तो करना क्या है? इस तरह रोने-धोने से तो काम न चलेगा।"

जयनारायण कुछ चिन्तित होकर बोले—"हरनारायण, इधर तो आ।"

हरनारायण उद्विग्न मन से पिता के पास आ बैठे। पिता ने कहा—"गोपाल पाँडे से जाकर सब बात कहनी चाहिए। असल बात तो खोलना नहीं, कहना किसी के लिए जरूरत है।"

हरनारायण ने झुंझलाकर घृणा से कहा—"मैं इस काम के लिए कभी न जाऊँगा। सुनेगा—तो क्या कहेगा? और वह है पूरा लालची, एक बात हाथ लगते ही 'हो-हुल्लड़' मचाकर गाँव-भर में बात फैला देगा।"

"दस रुपये पाते ही ठण्डा पड जायगा। मैं उसे खूब जानता हूँ, उसने कितने ही ऐसे काम किए है।"

हरनारायण चुपचाप पिता का प्रस्ताव सुनने लगा। उसके चेहरे का रंग गिरगिट की तरह बदलने लगा। क्रोध, भय, घृणा, ग्लानि और दु:ख के भाव उसके मन में उथल-पुथल मचा रहे थे। कुछ ठहरकर उसने कहा—"उससे तो अच्छा यही है कि शहर के डाक्टर-हकीम को कुछ लालच देकर काम निकाल लिया जाय।"

"शहर के डाक्टर-हकीम! बेटा, उनका मुँह तो बहुत बडा होता है। इतना रुपया कहाँ है? (कुछ पास आकर) मालूम है खूबचन्द चौधरी की बात? दो सौ रुपये ले लिए, और लडकी को घर बुलाकर इज्जत-आबरू बिगाड़ी। फिर पुलिस में खबर कर दी। देखा था? कितना थुक्कम-फजीता हुआ था?"

हरनारायण एकदम हतबुद्धि हो, बैठ रहे। बडी देर तक उनके मुख से शब्द न निकला। उनकी आँखों में अँधेरा छा रहा था। जयनारायण बोले—"इससे तो गोपाल पाँड़े से ही काम लेना ठीक है।"

"तो तुम्हीं यह काम करो। मेरा तो साहस नहीं होता।"

जयनारायण कुछ देर ठहरकर और ठण्डी साँस लेकर बोले—"अच्छा बेटा, अपनी सुलच्छनी बेटी के लिए वह काम बूढ़ा बाप ही करेगा। तुम सुख से आराम करो।" इतना कहकर हृदय के अगाध दु:ख को छिपाने के लिए जयनारायण वहाँ से उठ चले।

उनकी स्त्री अब तक चुपचाप बैठी, बात सुन रही थी। अब उसने भी एक साँस खींचकर कहा—"हा भगवान् ! तुमने यह क्या किया ?"

जयनारायण उसकी 'आह' सुनकर लौट पड़े और क्रोध से पागल होकर बोले—"तू बहुत 'भगवान्-भगवान्' चिल्लाती है। जो अबकी बार तूने भगवान् का नाम लिया, तो तेरा सिर फोड़ दूँगा।" इतना कह, कुछएक क्षण ज्वाला मय नेत्रों से स्त्री को देखते रहे, फिर झपटकर बाहर निकल गए। हरनारायण भी सिर नीचा किए घर से बाहर हुए। अकेली गृहिणी रोती हुई पड़ी रही।

२८

गोपाल पाँड़े का परिचय दिये बिना नहीं चलेगा। इसलिए प्रथम उनका परिचय ही सुनिये। आजकल के कोष के अनुसार इन्हें 'महात्मा', 'हजरत', 'देवता'—जो चाहें कह सकते हैं। उम्र इनकी ५५ से ऊँची नहीं है, पर लम्बी दाढ़ी और बड़े-बड़े सिर के बालों से, जो जटा का काम देते हैं, इनकी शोभा कुछ और ही हो गई है। पढ़ने के नाम आप अटक-अटककर कुछ अक्षर उखाड़ लेते हैं। आपको दो बातों का बड़ा शौक है, एक भङ्ग पीने का, दूसरा साँप पालने का। दिन-भर में दस-पाँच बार की कोई गिनती नहीं। जब कोई भगत आ जाता, तभी घोटना चलने लगता। इसके सिवा आपको और कुछ काम भी नहीं था। बस, दिन-भर घोटना। यों तो चरस का भी एकाध दम लगाने की आपको कसम नहीं थी, पर शराब के आप एकदम विरोधी थे। उसके गुण-दोष बखानने जब आप बैठते, तो आपकी वक्तृता सुनने ही योग्य होती थी। पर किसी-किसी का कथन था कि जब उनका

सम्बन्ध छदम्मोजान से था, तो उन्होंने सब-कुछ खाया-पिया था। भोला का तो यहाँ तक कहना है, कि पाँडेजी को अपनी आँखों से हमने बोतल लिए छदम्मो के घर जाते देखा है। और मछली तो उसने स्वयं कई बार उनके हाथ बेची है। अपनी आयु में उन्होंने तीन बार ब्याह किया, पर न जाने क्या दैव कोप था—किसीका सुख इन्हें बदा ही नहीं था। साल-डेढ़ साल से अधिक कोई स्त्री जीवित नहीं रही। मिजाज इनका जरा तुर्श है। पहली स्त्री ने एक बार शाक में नमक अधिक डाल दिया, बस, चाकू गर्म करके उसके नाखूनों में घुसेड़ दिया, जिससे फिर ऐसी भूल न हो। पर वह बेचारी अस्पताल में छः मास तक पड़ी रहकर मर गयी।

दूसरी स्त्री को न जाने क्या हुआ कि भयानक खून थूकने लगी, और दो ही दिन में मर गई। पड़ोसियों का कहना है कि पाँडेजी की राक्षसी मार ही कारण थी। तीसरी, बेचारी के पेट में बच्चा उलट गया, उसी वेदना में परलोक सिधारी। तब से उन्होंने फिर ब्याह नहीं किया। उसके बाद छदम्मोजान से उनकी जान-पहचान हुई। पर एक दिन घर में उसकी लाश पाई गई। इसके खून का मुकदमा पाँडेजी पर चला भी, पर सबूत न मिला। फिर भी न जाने किस सन्देह पर छः मास उन्हें 'बड़े घर' में रहना पड़ा। उसके बाद ही वह महात्मा हो गये। अब जीव के नाम पर इनके घर में साँप ही हैं—साँप पकड़ने में इनका बड़ा नाम है। अनेकों प्रकार के साँप इनके घर में रखे हैं। जब बाजार में महात्माजी निकलते हैं, एक-दो साँप गले में या कमर में अवश्य सुशोभित रहते हैं। आँखें आपकी छोटी-छोटी साँप की जैसी ही हैं। शरीर कसरती, बलिष्ठ और रङ्ग गहरा है। वस्त्रों में साधारण कुरता, धोती, खड़ाऊँ और गले में रुद्राक्ष की माला, माथे पर भस्म का बड़ा-सा त्रिपुण्ड रहता है। कभी-कभी सिर पर साफा भी बाँध लेते हैं। आस-पास के गाँवों में सभी गोपाल पाँडे को जानते हैं। उनके इनसे अनेक काम निकलते हैं! सच तो यों है कि गोपाल पाँडे न होते, तो इन गाँववालों का जीना मुश्किल हो जाता। इनमें अनेक गुण हैं। भूत-प्रेत निकालना, जादू-टोना, मन्त्र-इलाज करना, प्रेम की चुटकी, मारण-मोहन, वशीकरण-उच्चाटन—आदि सब प्रयोग इन्हें सिद्ध हैं। स्त्रियों के तो एक-मात्र सब कुछ पाँडेजी ही हैं, और वे उन्हें मानती भी बहुत हैं। नित-नये अनेकों व्यञ्जन, सबसे

प्रथम पाँडेजी की सेवा में पहुँच जाते हैं। फिर भी कुछ लोग इन्हें महाधूर्त, पाखण्डी, नीच और कुमार्गी कहकर इन्हें गालियाँ दिया करते हैं। कुछ का तो यहाँ तक कथन है, कि उन्होंने उनकी बहू-बेटियों को पथभ्रष्ट कर डाला है, जिससे वे कुएँ में गिरकर मर गईं। जो हो, ऐसे ही हमारे गोपाल पाँड़े हैं। अपना मान, सम्मान, इज्जत और कुल-कान बचाने के लिए जयनारायण को इन्हींकी सहायता की जरूरत पड़ी है। न जाने कितने भलेमानसों की पगड़ी ऐसे धूर्तों के अपवित्र चरणों में ठुकराया करती होगी !!

दोपहर ढल चुका था। एक बेला बैठा था। पाँड़ेजी धीरे-धीरे गुनगुनाते हुए पानी में भङ्ग धो रहे थे। ऐसे ही समय में जयनारायण ने उनकी कुटी में प्रवेश किया। जयनारायण को देखते ही उन्मत्त जैसे नेत्रों को उनकी ओर घुमाकर पाँडेजी ने कहा—"ओ हो, दीवानजी ! आओ। अरे हरिया, जरा एक चटाई तो उठा ले !"

जयनारायण सकुचित भाव से प्रणाम करके आप ही एक चटाई खींचकर बैठ गए, और बोले—"नाहक क्यों तकलीफ करते हैं ? मैं अच्छी तरह बैठ गया हूँ।" पाँडेजी ने हँसते-हँसते कहा—"अच्छा ! अच्छा ! आज किधर रास्ता भूल गए ?"

जयनारायण ने हृदय का उद्वेग छिपाकर कहा—"कल अमावस्या है न; हरनारायण की माँ ने जिद की, कि पाँडेजी को नौता दे आओ।"

पाँडेजी ठठाकर हँस पड़े, और बोले—"ओहो ! इतनी-सी बात ! किसी से कहला भेजते, तो मैं आप ही चला आता।"

"मैं, इधर माधोदास की ओर चला था। सोचा कि लगे हाथ इस काम से भी निपट चलूँ। दर्शन ही होंगे।"

पाँडेजी फिर हँसकर बोले—"दर्शन तो महन्त-महात्मा के होते हैं, बाबा, हम तो आप के दास हैं। जब याद कीजिए, तभी ड्योढ़ी पर जा पहुँचें।"

"आप क्या किसी महन्त से कम हैं ?" यह कहकर जयनारायण मुस्कराने की चेष्टा करने लगे, पर उनके नेत्रों में घृणा का भाव आ गया।

पाँड़ेजी दोनों कानों पर हाथ धरकर बोले—"हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! हम नरक के कीट हैं ! साधु-महात्मा कैसे हो सकते हैं ?"

मन की घृणा को मन ही में दबाकर जयनारायण बोले—"आप चाहे-जो कहें—पर लोग तो ऐसा ही समझते हैं।"

पांडेजी भग धोकर इकट्ठा करते-करते बोले—"यह तो उनकी भगती है।" इतना कह, ऊँचे स्वर से पुकारा—"अरे हरिया ! इधर तो आ। दीवानजी के लिए दूधिया बना ले। झपाके से तैयार कर।"

जयनारायण ने विनय से हाथ जोड़कर कहा—"मुझे तो माफ करें। मुझे जाना है।—और आप जानते ही है, मैं यह सब पीता-खीता नही हूँ।"

पांडेजी ने अत्यन्त आग्रह से कहा—"यह सब न चलेगा। और न हो, आचमन ही कर लेना, पर ठण्डाई पीनी अवश्य पड़ेगी। यह तो देवाधिदेव की बूटी है, इसका तिरस्कार क्या ?"

जयनारायण उठते-उठते बोले—"नही-नही, इसके लिए मुझे कसम समझिए। जिद्द न करें।" कहकर लगे जूता पहनने।

पांड़ेजी ने कुछ ढीले पड़कर कहा—"यह तो बात अच्छी न रही। बड़ी मुश्किल से तो आए, और योंही चल दिए,—न खातिर न तवाजा।"

जयनारायण ने मुस्कराकर कहा—"अब वहाँ भी आप ही का है, और यह तो मेरा घर है।" इतना कहकर जान लेकर वे भागे। उनके जाने पर पांडेजी एक आँख से उनकी ओर घूरते रहे। उनके लाल-लाल मदमाते नेत्र खुशी से फूल उठे थे। इतने में हरिया ने आकर कहा :

"गुरु, आज यह खूसट क्यों आया ? कैसा नौता है ? आज तक तो साला गालियाँ देता था !"

पांडेजी ने चेले की ओर झुककर कहा—"इसीके घर न दो-दो हथिनी पल रही हैं ? अच्छा, कल देखा जायगा। अब मार लिया है !!"

चेले ने धीरे से कहा—"अब देखेगा गुरु के हथकण्डे ! बड़ी लड़की बड़ी चटक्की है—उसी पर हाथ साफ करना चाहिए। (कुछ पास सरककर) सरनीवाले गोविन्दा से उसकी नैन-सैन है। बस, एक इशारे मे डोरी पर चढ़ जायगी।"

महात्माजी ने दबी जबान से पूछा—"सच ! यह कैसे मालूम हुआ ? चीज तो बढ़िया है, पर उस दिन तो वह गालियाँ देने लगी थी। तुम्हे क्या गोविन्दा ने कुछ कहा था ?"

"वह साला बड़ा बिज्जू है। उसके पेट में बात नहीं फूटती। पर वह छजिया ही उसकी भी खबर लाती है।" इतना कहकर उसने भेद-भरी दृष्टि से पाँड़ेजी की ओर देखा।

पाँड़ेजी फूलकर कुप्पा हो गए। उन्होंने उमग में हरिया के हाथ में हाथ मारकर कुछ कहना ही चाहा था, कि पीछे से किसी ने कहा—"जय शकर बाबा की?"

पाँड़ेजी ने देखा—बन्सी भगत खड़े हैं।

अब वे हरिया से चटपट ठण्डई बनाने को कहकर हँस-हँसकर भगतजी से बातें करने लगे।

२९

आज जयनारायण के घर में पाँड़ेजी का निमन्त्रण है। खाने-पीने का विशेष आयोजन किया गया है। समय पर पाँड़ेजी ने हँसते-हँसते घर में प्रवेश किया। आज वे खूब बन-ठनकर आये थे। रेशमी धोती, हरी फलालेन की बण्डी, सिर पर रेशमी साफा, पैर में खड़ाऊँ और माथे पर भस्म का बड़ा-सा टीका। उन्हें देखते ही जयनारायण ने बड़े आव-भगत से कहा—"आइए, आइए! मैं आपका इन्तजार ही कर रहा था!"

पाँड़ेजी ने घरौआपन जताकर कहा—"कुछ ज्यादा देर तो नहीं हुई?"

"नहीं-नहीं, आइए, भीतर चलिए, सब तैयार है।"

पाँड़ेजी चारों तरफ भेदभरी दृष्टि से ताकते-ताकते चले। भीतर आँगन में पहुँचते ही कहा—"आपके लड़के-बच्चे कहाँ हैं? सब राजी तो है? लड़की तो दोनों यहां है?"

जयनारायण मन का दुःख दबाकर बोले—"हाँ, यहीं हैं। सब आपकी दया है।"

"उन्हें बुलाओ तो—जरा गुरु की भभूत तो दे दूं।" इतना कहकर उन्होंने एक पोटली निकाली।

जयनारायण ने अत्यन्त विनय से कहा—"नरो! भग्गो! यहां आओ!

देखो पाँड़ेजी क्या देते हैं।" नारायणी चौके में काम कर रही थी, पिता की आवाज सुनते ही आ खड़ी हुई। पाँड़ेजी ने चट से उसके माथे पर टीका लगा दिया। फिर चारों तरफ घूरकर देखा, और कहा—"अरे दूसरी कहाँ गई? अरी आ जल्दी—ले, गुरू का परसाद ले जा।"

भगवती भीतर चुपचाप उदास बैठी थी। अन्त में वह धीरे-धीरे सकुचाते हुए सामने आ खड़ी हुई। उसे देखते ही पाँड़ेजी ने कहा—"अरी बावली! तू अब तक कहाँ थी? ले!" कहकर उसके माथे पर भी टीका लगा दिया, और जयनारायण से कहा—"यह लड़की बड़ी सीधी-सादी दीख पड़ती है, दीवानजी।"

जयनारायण भगवती को आती देख, मुँह फेरकर खड़े थे। अब उन्होंने बात टालने की गरज से कहा, "तो अब भोजन करें, देर हो गई है।" कहकर वे चौके की ओर लपक गये। इससे पाँड़ेजी का कटाक्ष तथा संकेत, जो उन्होंने भगवती से किया, वे न देख सके। भगवती भी घबराकर भीतर चली गई। पाँड़ेजी मुस्कराते हुए रसोई की तरफ बढ़े।

भोजन के उपरान्त अच्छी दक्षिणा पाकर, पाँड़ेजी चलने को ही थे कि जयनारायण ने कहा—"थोड़ी देर बैठक में चलकर विश्राम कीजिये न?"

पाँड़ेजी बोले—"बस, अब चलने दो, फिर देखा जायगा।"

"मुझे कुछ जरूरी बातचीत करनी है, क्या आपको बहुत जल्दी है?"

"ऐसा? अच्छा चलो—जरूरी काम है तब भी तुम्हारे लिए छोड़ सकता हूँ।"

"बात कुछ ऐसी आ पड़ी है, कि आपको तकलीफ दिये बिना न चलेगा।" यह कहते-कहते जयनारायण के होंठ सूख गये।

"अच्छा, क्या है? देखता हूँ, आप बुरी तरह घबरा रहे हैं। मेरे लायक कोई काम हो, तो बे-खटके कह डालिए। आपके लिये जान तक हाजिर है, दीवानजी!"

"इसमें क्या शक है, मुझे तो आपपर पूरा भरोसा है!" इतना कहकर जयनारायण ने मन की बात छिपाने के लिए जरा दाँत दिखा दिए।

पाँड़ेजी बोले—"खड़े-खड़े कब तक बातें करेंगे? चलकर बैठक में बातचीत करें।"

जयनारायण उन्हें लेकर बैठक में आए।

कुछ देर सन्नाटा रहा। जयनारायण यही सोच रहे थे कि किस तरह काम की बात चलायें। पाँडेजी बोले—"हाँ, तो अब कहिए, क्या मामला है?"

जयनारायण कुछ झिझकते हुए बोले—"बात पेट में ही रखने की है, पाँडेजी!"

अब रग-ढग देखकर पाँडेजी समझ गए, कोई सङ्गीन मामला है। उन्होंने कहा—"इस पेट में जो बात जाती है, वह जीते-जी बाहर नहीं निकलती। आप बेखटके कह डालिए।"

"काम होने पर आपकी खिदमत भी की जायगी।"

"खैर, तो बात कहिए।" यह बात धीरे से कहने के लिए पाँडेजी जयनारायण के और पास खिसक आए, और उनके मुँह से अपना कान सटा दिया।

जयनारायण कुछ ठहरकर बोले—"आपकी दवा-दारू से बहुतों का भला होता है, आस-पास के गाँवों तक में यह बात छिपी नहीं है।"

"यह तो गुरु की कृपा है, हम तो अधम कीट हैं।

"यह तो आपका बड़प्पन है, पर आज मुझे भी आजमाने की जरूरत पड़ी है···

जयनारायण का रग-ढग और बात-चीत सुनकर पाँड़ेजी असल मामला भाँप गए। उन्होंने बीच में बात काटकर धीरे से कहा—"तुम्हें धोखा न होगा, दीवानजी! गुरु की कृपा से मेरे पास भी वह-वह लटके हैं कि बस!" इतना कहकर पाँड़ेजी ने जयनारायण की जाँघ पर हाथ रखकर टीप दिया, और आँखें चलाईं।

जयनारायण बोले—"यही आशा थी, तभी तो आपको तकलीफ दी गई।"

"कहिए, मामला क्या है, काम फतह समझो।"

"बात बड़ी बेढगी है।" इतना कहकर जयनारायण अनुनय और करुणा की दृष्टि से पाँड़ेजी की ओर देखने लगे। आगे उन्हें कहने का साहस ही न होता था।

पाँड़ेजी ने कुछ साहस बढाते हुए कहा—"खैर, जो हुई सो हुई, पर उपाय सब बात के है। कुछ लड़कियों का हुआ है क्या ? हरवंश चौधरी की बात याद है ? उसकी लड़की का ऊँचा-नीचा पैर पड़ गया, बड़ी मुश्किल पड़ी, उसकी माँ ने मुझे खबर दी, बस, चुटकी बजते-बजते सब ठीक हो गया। जो पीछे से पुलिस न आती, तो किसीको इस बात की खबर भी न होती। पर उस झमेले में मेरे भी दो सौ रुपये बिगड़े। साले मेरे ही पीछे पड़ गये।"

जयनारायण कांपकर बोले—"नहीं-नहीं, एक और आदमी है, उसका यही मामला है। इसका तो उपाय करना ही होगा पाँड़ेजी। आपपर विश्वास है, तभी यह बात कही है।"

पाँड़ेजी बड़े घाघ थे। जरा गम्भीर बनकर बोले—"जैसा विश्वास है, वैसा काम भी होगा। पर दीवानजी, नाराज न होना, आप बात छिपाते है। (कान में) मुझे तो भगवती के पैर भारी मालूम होते है।"

जयनारायण अत्यन्त चंचल हो उठे। उन्होंने रोककर पाँडेजी के पैर पकड़ लिए, और हाथ जोड़कर बोले—"मेरी पगड़ी आप के हाथ में है। जैसे हो, इज्जत बचाइए। जन्म-भर अहसान न भूलूँगा।" यह कहकर वे उसके अपवित्र चरणों में लिपट गए।

अब जैसे सिंह अपने छटपटाते शिकार को देखता है, वैसी ही दृष्टि से उन्हें देखते हुए पाँडेजी ने कहा—"इस तरह छटपटाने से तो काम न चलेगा। जब मैं हूँ, तो डर किस बात का है ? पर एक बात है।"

"क्या बात ?" जयनारायण ने कातर दृष्टि से उसे देखकर कहा।

"रुपये सौ खर्च होंगे आपके। हाँ—मामला साफ ही अच्छा होता है।"

"सौ रुपये ?" कहकर जयनारायण ऐसी अनुनय दृष्टि से देखने लगे कि पत्थर भी पसीज जाता।

पर पाँडेजी ने अन्यत्र देखते हुए कहा—"यह अधिक नहीं है। कभी-कभी इसमें मे पड़कर इससे दूना खर्च कर देना पड़ता है। चौधरी का ही मामला देखिए न ?"

"वह तो ठीक है, पर मेरी हैसियत को देखकर माँगिए।"

"अच्छा, और दस रुपये कम सही। पर इससे कम तो न होगा।" इतना कहकर पाँड़ेजी उठने लगे।

जयनारायण ने पैर पकड़कर कहा—"जरा ठहरिए तो सही, अच्छा पच्चीस रुपये ले लीजिए।"

"नहीं जी।" इतना कह और अवज्ञा की हँसी हँसते हुए पाँड़ेजी चलने के लिए अपना दुपट्टा सम्हालने लगे।

जयनारायण उनके पैर पकड़कर गौ की तरह डकराने और विनती करने लगे। पर उस पत्थर के पसीजने का लक्षण नहीं दीखा। बड़ी खींच-तान से पचास रुपये में फैसला हुआ। बात यह ठहरी, कि आधे रुपये पहले दिए जाएँ, और आधे काम होने पर।

अब पाँड़ेजी जेब से तम्बाकू की डिबिया निकाल, चूना मलते-मलते बोले—"बस तो करार के रुपये जब पहुँच जावेंगे, काम शुरू हो जायगा।"

इस पर जयनारायण ने गिड़गिड़ाकर कहा—"देखना, किसीको कानों-कान न मालूम हो, वरना मुझे डूब मरने को जगह न रहेगी।"

"नहीं, ऐसा कभी हो सकता है? ऐसी-ऐसी कितनी बात पेट में छिपी पड़ी है, पर किसीसे कहते थोड़े ही है?"

जयनारायण काँप उठे! पाँडेजी के जाने पर उन्होंने सोचा, कैसे भयंकर और नीच आदमी को उन्होंने अपनी इज्जत सौंप दी है! इसे याद करके वे ऐसे घबराये कि उस रात एक पल को उनकी आँखें न लगीं।

३०

कुमुद स्नान कर, एक स्वच्छ साड़ी पहिनकर अपनी कोठरी में पूजा करने बैठी थी। वह आँख बन्द किए चुपचाप पति-परमेश्वर का ध्यान कर रही थी। सामने एक चौकी पर राधाकृष्ण की युगल-मूर्ति थी। उससे तनिक हटकर नीचे की ओर खड़ाऊँ का भी एक जोड़ा धरा था, जो भली भाँति धो-पोंछकर धरा गया था। उनपर ताजे फूलों का ढेर पड़ा था, सुगन्धित धूप जल रही थी। कुमुद मानस-नेत्रों में पति के दर्शन कर पुलकित हो रही थी। वह अपनी समस्त वेदना और अपमान भूल गई थी। वह मन ही मन कह रही थी—हे स्वामी, हे परमेश्वर, हे शरीर और आत्मा के स्वामी! मैंने जब

शरीर और आत्मा आपको प्रदान ही कर दी, तब आपकी यह वस्तु यहाँ रही तो क्या, और वहा रही तो क्या। आपकी इस प्यार की वस्तु को मैं क्यो नष्ट करूँगी ? क्यो, उस स्मृति-मन्दिर को विध्वस करूँ, जिसमे गत बारह वर्षों से उस देवता की प्रतिमा मैंने स्थापित की है, जिसने मुझे सौभाग्य दिया, स्त्रीत्व दिया, जीवन दिया और अन्तत-जगत् का एक अनमोल लाल दिया।

वह अपने मानसिक भावावेश में विभोर हो रही थी। उस समय जीवन और मृत्यु उसकी दृष्टि में कोई घटना ही न थी। वह प्रत्यक्ष अपने प्रिय पति को अपने अत्यन्त निकट देख रही थी इतने निकट, जितना कभी भी पति को जीवित अवस्था मे वह नही देख सकती थी,वह और उसके पतिदेव अब एक थे, शरीर और आत्मा एक हो गई थी। उसने बड़ी देर तक आत्मविवेचन किया, और फिर आँखें खोल दी। उसने झुककर उन खडाउओं को छाती से लगा लिया। वह आँखें बन्द कर बहुत देर तक उसी स्थिति मे बैठी रही। थोडी देर मे उसकी आँखो से आँसुओ की झडी लग गई। परन्तु यह आँसू प्रेम और आनन्द के थे, शोक और उद्वेग के नही।

उसने रामायण की पोथी निकाली और धीरे-धीरे उसका पाठ आरम्भ किया। वह अनुसूया-वर्णित पतिव्रत धर्म को पढ रही थी। उसकी वाणी कोमल,विश्वस्त और स्निग्ध थी। उसे इस बात का तनिक भी गुमान न था कि अचानक कौन उसके पीछे चुपचाप आ खड़ा हुआ है। जब वह तन्मय होकर रामायण-पाठ कर रही थी, तब किसीने पीछे से एक सुन्दर फूलमाला उसके गले में डाल दी।

कुमुद ने पीछे फिरकर देखा, मालती थी। मालती उसके पड़ोस की एक वकील की विधवा कन्या थी। कुमुद से उसका कई वर्षों का स्नेह था। जब मालती विधवा थी और कुमुद सधवा तथा प्रतिष्ठा और अधिकार की देवी थी, तभी से मालती पर उसका बहुत प्रेम था। मालती चपल स्वभाव की स्त्री थी। उसके पास रूप था, आयु थी, स्वास्थ्य था, धन था, पीहर का निर्विरोध वातावरण था, तिसपर नई शिक्षा। वह वैधव्य-धर्म पर अश्रद्धा करती थी। वैधव्य उसपर अचानक श्राप होकर पडा था। उसे वैधव्य की चाह न थी। उसकी आँखों मे सुन्दर जगत् रम रहा था। उसकी प्रत्येक इन्द्रिय चैतन्य और भोग की अभिलाषिणी थी, परन्तु शिक्षा और उच्च परि-

वार की मर्यादा ने उसे संयमित कर दिया था।

वैधव्य उसपर सजता न था। कुमुद इसीलिए उसे अत्यधिक प्यार करती थी। प्यार को प्यार जानता है। वह कुमुद की प्राणों से प्यारी सखी थी। जब-जब कुमुद यहाँ आती, मालती का अधिकांश समय यहाँ ही व्यतीत होता। इसके लिए किसीको रोक-टोक न थी। कुमुद मालती को वैधव्य-जीवन की पवित्रता बताती। वह आत्मा का आत्मा के साथ आध्यात्मिक संबंध पर व्याख्यान देती। वह मृत्यु के हस्तक्षेप को नगण्य बताती। यह सब सुनकर मालती कभी तो हँस देती, कभी गम्भीर होकर सुनती। परन्तु वह जब कुमुद के पास से लौटकर जाती, तब बहुधा एकान्त में रोती थी। क्यों? इसलिए कि वह उन पवित्र विचारों और उच्च आदर्शों के अनुकूल अपने विचारों को न बना सकती थी। वैधव्य के दुःख से उसका हृदय हाहाकार करता था। वह उस सुखद मनोहर मूर्ति के अभाव को सहन न कर सकती थी जिसे उसने जी भरके देखा भी न था। उसके चर्म-चक्षु प्रबल थे, वे ज्ञान को भीतर नहीं घुसने देते थे।

परन्तु जब उसने सुना, कि कुमुद पर भी वही वज्र टूट पड़ा—वह विधवा होकर आई है, तो वह कुछ दिन तक तो उसके सम्मुख आने का साहस ही न कर सकी। वह सोचती—कुमुद, मेरी प्यारी सखी अब कैसी हो गई होगी! पर जब एक दिन उसने उसके समक्ष आने का साहस किया, तो देखा—समुद्र के समान गम्भीर, कुमुद खड़ी है। उसने मालती को प्रेम से गले लगाया, और कहा—"बहन, अब हम-तुम परस्पर बहुत ही निकट हो गये।"

मालती फूट पड़ी। वह अपना, और अपनी सखी का दुःख कैसे सह सकती थी? उसने कहा—"जीजी, तुम कैसे सहोगी? मैं तो तुम्हारे आसरे सह सकी थी।"

कुमुद ने करुण नेत्रों से मालती को देखा, और कहा—"मालती, अब तू सत्य बात को देख सकेगी। मेरे जानते तो मेरे स्वामी मेरे अत्यधिक निकट हो गये हैं।" कुमुद ने बारम्बार मालती को वैधव्य-तत्त्व समझाया।

वैधव्य के कारण कुमुद को जो तिरस्कार और लाञ्छना की मार पड़ी, उसने कुमुद के सत्य को मानों अग्नि पर तपा दिया। कुमुद की आँखों में तप-

स्विनी के समान तेज उत्पन्न हो गया। गम्भीर विवेचना; सहिष्णुता, पवित्रता, धैर्य, यह सब मिलकर कुमुद के चरित्रवान् सौन्दर्य में जब रम गये, तो उसमे एक अद्‌भुत माधुर्य और तेज आ गया।

मालती पर उसका बहुत ही प्रभाव पड़ा। कुमुद ने मालती का सकोच और खेद, जो उसे कुमुद के दुर्भाग्य पर हुआ था, शीघ्र ही दूर कर दिया। कुमुद से मालती वैसे ही प्रसन्नतापूर्वक मिलने लगी, अलबत्ता उसके मन मे कुमुद के प्रति श्रद्धा तथा आदर और बढ गया। वह कुमुद की ही भांति पूजा-पाठ और रामायण-पाठ मे मन लगाने लगी। वह उस अदृष्ट पति का मानस चक्षु से दर्शन पाने की भी इच्छा करने लगी जिसे उसने वास्तव में कभी भली भांति देखा भी न था।

आज अभी वह पूजा से उठकर, उसी पूजा-स्थान पर एक माला गूँथकर कुमुद को पहनाने आई थी। माला उसने गूँथी थी—उस अदृष्ट पति-परमेश्वर के लिए, पर वह उस अमूर्त मूर्ति को बहुत चेष्टा करके भी न देख सकी। वह कुछ खिन्न हुई अवश्य, पर बिना देखे वह उस परिश्रम और प्रेम के सम्पुट से युक्त माला को यो ही नष्ट न कर सकी। उसने सोचा—इस समय उसके हृदय के जो सबसे अधिक निकट है, सबसे अधिक प्रिय है, सबसे अधिक सुन्दर और स्नेहवती है, वही क्यों न इस कोमल-सुरभित माला को ग्रहण करे?

वह माला को आंचल मे छिपाकर वहां ले आई, और रामायण-पाठ करती, कुमुद के गले मे उसे पीछे से पहना दिया। इसके बाद उसने अपने मृणाल-से भुज उस स्नेहवती सखी के गले में डाल दिए।

मालती का ऐसा प्यार पाकर कुमुद गद्‌गद हो गई। उसने खींचकर उसे अपनी गोद मे बैठा लिया। वह बड़ी देर तक उस प्रगाढ प्रेम के आवेश मे हृदय से लगाए रही। फिर उसने कहा—"मालती, मेरी प्यारी सखी! मैं तुझे कितना चाहती हूँ! मैं अत्यन्त असहाय और अबला हूँ। तू इतना स्नेह इस नन्हे-से हृदय मे लिए फिरती है। तू आनन्द और प्रेम की प्रतिमा है। मेरी प्यारी मालती, मेरी इच्छा होती है, तुझे हृदय मे रख लूं।"

मालती की आंखें भर आई। आज वह अमूर्त दर्शन करने मे अक्षम होकर अस्वाभाविक रीति से गम्भीर हो गई थी। उसने कहा—"जीजी! मझे-

अपने जैसा पवित्र बना दो। मेरे हृदय की आग बुझा दो। मुझे शान्त कर दो। मैं जितना ही शान्त होना चाहती हूँ, उतनी ही अशान्ति मुझे आ दबाती है। मेरे चर्म-चक्षु और इस अधम शरीर का रोम-रोम उनका भूखा है। मैं उस अमूर्त के दर्शन तो कर ही नही पाती जिसे तुम अब प्रथम से भी अधिक निकट समझती हो। जीजी, जैसे बने, उनका दर्शन मुझे करा दो।"

कुमुद कुछ देर चुपचाप इस विकल बालिका की बात सुनकर सोचती रही। उसने सोचा, इस प्रेम और आनन्द की मूर्ति पर वैधव्य शाप होकर गिरा है। यह उसका तेज सहन नही कर सकती। वैधव्य का धर्म सहन करने योग्य क्षमता इसमें नही है। उसने कुछ न कहा। केवल गले से वह अम्लान पुष्प माला निकालकर मालती की ओर देखने लगी।

मालती ने उसे रोककर कहा—"जीजी, उसे गले ही मे पहने रहो, अभी मत निकालो। मैं हाथ जोडती हूँ।"

कुमुद ने कहा—"सुन मालती, देवता के भोग को मनुष्य ग्रहण नही कर सकता। यह मनुष्य का अक्षम्य अपराध है।"

मालती इसका अर्थ नही समझी। उसने कहा—"देवता का भोग क्या।"

"यह माला; यह देवता के निमित्त की पवित्र वस्तु है। क्या इसे तूने उस अदृष्ट पति के नाम पर ही नही बनाया था, जो तेरी नस-नस मे रम रहे है, पर जिन्हे तू देख नही पाती—जिन्हे देखने को तू इतनी व्याकुल है?"

मालती ने स्वीकार किया। उसने कहा—"उस अदृष्ट मूर्ति को किसी भाँति न देखकर मैं यह माला तुम्हारे लिए लाई हूँ, क्योंकि उसके बाद तो फिर तुम ही हो।"

कुमुद ने माला को आँखो मे लगाया, और कहा—"प्यारी मालती, देव-पूजा के फूल विलास के काम नही आ सकते। देव-पूजा विलास से पृथक् वस्तु है। विलास वह है जिससे इन्द्रियाँ अपनी तृष्णा को तृप्त करती है, परन्तु देव-पूजा से आत्मा तृप्त होती है। मेरा-तेरा सहयोग-सम्बन्ध-सम्भाषण सब विलास है, क्योंकि उससे इन्द्रियो के विषयो का अत्यन्त सान्निध्य है। देव-पूजा इन्द्रियों की वस्तु नही। अपने असाध्य अदृष्ट को तू भी देख

सकती है, अब अपनी दृष्टि को चर्म-चक्षुओं से दूर कर दे। उस वाणी को तू तभी सुन सकती है, जब तेरी श्रवण शक्ति कान के यन्त्र से अलग हो जाय। वह अन्तर्नाद है; वह तुझमें है। बाहर से भीतर को जा, तुझे वह अनायास ही दीखेगा। जल्दी न कर। घबरा नहीं। यह माला ले, और उस अदृष्ट देव को अर्पण कर, जो इसका वास्तविक अधिकारी है।"

मालती कुछ भी नहीं समझी। उसने माला खड़ाउओं पर एकत्रित फूलों के ढेर पर डाल दी, और फिर फूट-फूटकर कुमुद के गले से लिपटकर रोने लगी। कुमुद भी निरुपाय हो, मालती के दुख को न सहन कर, फूट पड़ी। दोनों स्त्री-हृदय रो रहे थे—एक अपने लिए, एक दूसरे के लिए।

३१

राजा साहब ने सुशीला का हाथ पकड़कर कहा—"बेवकूफ लड़की, अब तू जाल में फँस गई!"

सुशीला ने अपना हाथ झटककर कहा—"आप जैसे प्रतिष्ठित पुरुषों को गरीब लोगों पर इतना जुल्म करते दया नहीं आती? जूआ-चोरी करते और झूठ बोलते शर्म नहीं आती?"

राजा ने निर्लज्जता से हँस दिया। हँसकर कहा—"जुआ-चोरी कैसी?"

"धोखा देकर जो मुझे बुलाया गया।"

"धोखा दिया किसने? तू राजी से तो आई है, और अब नखरे करती है!"

"मुझे मालूम न था, कि वह पापिनी बुढ़िया भी इतनी दुष्ट है!"

"अब उसे क्यों कोसती है?"

"आप मुझे चली जाने दीजिए।"

"यह अच्छी कही!"

"मैं कहती हूँ, कि चली जाने दीजिए।"

"वरना?"

"तुम क्या कोई मजिस्ट्रेट हो कि सबूत तुम्हारे सामने पेश किया जाय ?"

"परन्तु मैंने कहा न, या तो बेगुनाही साबित करो, या दण्ड भोगने को तैयार हो जाओ।"

"मैं तैयार नहीं हुआ।"

"तब दण्ड भोगो।"

"क्या दण्ड दोगे ?"

"मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा।" इतना कहकर युवक ने चमचमाता छुरा हाथ में लेकर मजबूती से कलाई में पकड़ लिया।

राजा साहब भय से उठे। वे कमरे से बाहर भागे, पर युवक ने एक लात मारकर गिरा दिया, और छाती पर सवार होकर कहा—"अब भी समय है!"

राजा चिल्लाने लगा। युवक ने मुँह पर हाथ धरकर कहा—"क्या यह मतलब से स्वयं आई थी ?"

राजा ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं। मुझे छोड़ दो। छोड़ दो!"

"अरे पापी, पाप किया और झूठ बोलकर कलङ्क लगाया, तेरे लिए क्षमा नहीं है।" उसने बलपूर्वक छुरा राजा की छाती में घुसेड़ दिया। एक हल्की चीत्कार कर राजा ठण्डा पड़ गया। फेफड़े को आर-पार चीरता हुआ वह छुरा बाहर निकल आया था।

छुरे को वहीं छोड़कर युवक कुर्सी पर आ बैठा। मेज पर पड़े वस्त्र से उसने अपने हाथ का रक्त पोंछ लिया। अब भी रक्त की वेगवती धारा राजा के शरीर से बह रही थी और उनका शरीर हिल रहा था। उधर इधर-उधर देखकर युवक ने घण्टी बजा दी। नौकर ने प्रवेश करके जो देखा—उसके होश उड़ गए। वह थर-थर काँपने लगा। युवक ने सहज-शान्त स्वर में कहा—"डरो मत, मैंने इसे मार डाला है! वह पापी था। पराई बहू-बेटियों की इज्जत बिगाड़ता था। तुम जाओ, और पुलिस में इत्तला दे दो।"

नौकर भागा—शहर-भर में भगदड़ मच गई। पुलिस दलबल सहित आ गई। एक छोटे-से इन्स्पेक्टर साहब पिस्तौल ताने कमरे में घुस आए। उन्होंने चिल्लाकर कहा—"खूनी, खबरदार! भागने की चेष्टा न करना

वरना गोली मार दूंगा। चुपचाप हिरासत में आ जाओ।"

युवक ने बैठे ही बैठे आवाज दी—"इन्स्पेक्टर साहब, मैं यहां हूं। इधर आ जाइए।"

इन्स्पेक्टर ने देखा—युवक निर्भय कुर्सी पर बैठा है। उसके हाथ में कोई हथियार नहीं है। वे डरते-डरते उसके पास तक पहुंचे। और भी दो कांस्टेबिल घुस आए और युवक को घेरकर खड़े हो गए।

यह देख युवक मुस्करा दिया। इन्स्पेक्टर ने भी चढ़ाकर कहा—"क्या खून तुमने किया?"

"जी हां।"

"क्यों?"

"सजा देने के लिए।"

"किस बात की सजा?"

"यह पराई बहू-बेटियों का धर्म बिगाड़ता था।"

"तुम्हें यह मुनासिब नहीं था, कानूनी कार्यवाही करते।"

"कानून सपूर्ण नहीं है।"

"फिर भी तुम्हें अधिकार न था।"

"खैर, आप अपनी कार्यवाही कीजिए।"

"मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूं।"

"कीजिए न, मैं तो स्वयं बड़ी देर से आपकी इन्तजार में बैठा हूं।"

तुरन्त युवक को हथकड़ियां लगा दी गईं। इसके बाद लाश की जांच-पड़ताल होने लगी। फिर युवक को घेरकर पुलिस थाने में ले चली। राजा साहब के खून की खबर आग की तरह शहर में फैल गई।

३३

कुमुद का जेठ विधुर था। उसकी स्त्री का देहान्त हुए दो वर्ष हो गए ै। यह व्यक्ति साधारण लिखा-पढ़ा था, और एक कपड़े वाले की दूकान र मुनीमगीरी करता था। इस बार कुमुद के घर में आते ही इसकी कुदृष्टि

"मैं सिर्फ यह पूछता हूँ, कि क्या तुम कुछ दिन इसे आश्रय दोगे?"

"यह बात क्यों पूछते हो? क्या तुम मुझे अपने से भिन्न समझते हो?"

"नहीं, परन्तु यदि कोई झगड़ा-झंझट या बदनामी सिर पड़े?"

श्याम बाबू हँस पड़े। उन्होंने कहा—"वह भी सहूँगा। और बोलो।"

"बस, और कुछ नहीं।" प्रकाश उठ खड़े हुए; मित्र के साथ हँसे भी नहीं। उनकी आँखों और होठों पर एक कठोर छाया व्याप्त हो रही थी। श्याम बाबू ने इसपर लक्ष्य किया, और प्रकाश का हाथ पकड़कर कहा—"मुझे तुम्हारे रंग-ढंग अच्छे नहीं मालूम होते। तुम्हारा इरादा क्या है?"

प्रकाश ने संयत भाषा में कहा—"मेरा इरादा बहुत पवित्र है; और वह तुम्हें शीघ्र ही मालूम हो जायगा।"

"अभी क्यों नहीं बता देते?"

"इसके कारण है।"

श्याम ने गहराई तक जाने की चेष्टा नहीं की। वे हँसकर चुप हो गए। प्रकाश चलने लगे, तब श्याम ने कहा—"क्या सुशीला से मिलोगे नहीं?"

"नहीं, इस समय नहीं।"

वे चल दिए। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ रहे थे, उनकी चाल में तेजी आ रही थी। वे शहर की गलियों को पार करके सड़क पर आये, और सड़क को पार करके आये शहर से बाहर। शीघ्र ही वे राजा साहब की आलीशान कोठी पर पहुँचे। वहाँ आकर वे क्षण-भर ठहर गए। फिर उन्होंने पहरेदार से कहा—"क्या राजा साहब भीतर है? हमारा कार्ड उन्हें दो, और सलाम बोलो।"

पहरेदार कार्ड लेकर भीतर गया और शीघ्र ही बुलाकर भीतर ले गया।

राजा साहब अकेले बैठे चाय पी रहे थे, और अखबार उनके हाथ में था। युवक को देखकर कहा—"आपको क्या काम है?"

"मुझे आपसे कुछ जरूरी बातें करनी है।"

"कहिए।"

"मैं उस लडकी के विषय में बात किया चाहता हूँ, जिसे आपने धोखे से कल रात उठवा मँगवाया था।"

राजा साहब के हाथ से चाय का प्याला और अखबार दोनों छूट गए। वे अचकचाकर युवक की ओर देखने लगे। उन्होंने कहा—"आपका मतलब क्या है ?"

"यही, कि आपने एक गरीब बेगुनाह असहाय लडकी के साथ ऐसा असभ्य व्यवहार क्यों किया ?"

"आप इस बात के पूछनेवाले कौन हैं ?"

"मैं एक साधारण आदमी के नाते आपसे पूछता हूँ।"

"साधारण आदमियों से मैं बात नहीं करता। आप अभी बाहर चले जाइए।"

"मैं जब तक अपना काम पूरा न कर लूँगा, बाहर न जाऊँगा।"

"वह काम क्या है ?"

"या तो आप साबित कीजिये कि आप बे-कसूर है, वरना मैं आपको सजा दूँगा।"

"मुझे सजा दोगे, तुम—बदमाश···!"

"मैं तुम्हारी गाली को क्षमा करता हूँ।"

"बेतमीज, अभी बाहर निकलो, वरना नौकर बुलाता हूँ।" इतना कहकर राजा साहब ने घण्टी पर हाथ धरा ही था कि युवक ने उठकर घण्टी उनके हाथ से छीन ली, और कहा—"यह गाली भी मैंने माफ की, पर अब और गाली न देना !"

राजा थोडा भयभीत होकर युवक को देखने लगा। उसने कहा—"पराई पचायत मे पड़ने से तुम्हे क्या फायदा ?"

"मैं फायदे-नुकसान के लिए कोई काम नहीं करता। तुम झटपट जवाब दो !"

"तुम्हे पूछने का कोई हक नहीं।"

"तुम्हारे लिए बेहतर है कि तुम मेरी बात का ठीक-ठीक जवाब दो !"

"वह लडकी फाहशा है। लालच में होकर स्वयं आई थी।"

"इसका सबूत ?"

"तुम क्या कोई मजिस्ट्रेट हो कि सबूत तुम्हारे सामने पेश किया जाय ?"

"परन्तु मैंने कहा न, या तो बेगुनाही साबित करो, या दण्ड भोगने को तैयार हो जाओ।"

"मैं सफाई नही दूगा।"

"तब दण्ड भोगो।"

"क्या दण्ड दोगे ?"

"मैं अभी तुम्हे मार डालूंगा।" इतना कहकर युवक ने चमचमाता छुरा हाथ मे लेकर मजबूती से कलाई से पकड़ लिया।

राजा साहब कांप उठे। वे कमरे से बाहर भागे, पर युवक ने एक लात मारकर गिरा दिया, और छाती पर सवार होकर कहा—"अब भी समय है!"

राजा चिल्लाने लगा। युवक ने मुँह पर हाथ धरकर कहा—"क्या वह लालच से स्वय आई थी ?"

राजा ने सिर हिलाकर कहा—"नही। मुझे छोड दो। छोड़ दो!"

"अरे पापी, पाप किया और झूठ बोलकर कलङ्क लगाया, तेरे लिए क्षमा नही है।" उसने बलपूर्वक छुरा राजा की छाती में घुसेड़ दिया। एक हल्की चीत्कार कर राजा ठण्डा पड गया। फेफडे को आर-पार चीरता हुआ वह छुरा बाहर निकल आया था।

छुरे को वही छोड़कर युवक कुर्सी पर आ बैठा। मेज पर पड़े वस्त्र से उसने अपने हाथ का रक्त पोछ लिया। अब भी रक्त की बेगवती धारा राजा के शरीर से बह रही थी और उसका शरीर हिल रहा था। उधर ध्यान न देकर युवक ने घण्टी बजा दी। नौकर ने प्रवेश करके जो देखा—उसके होश उड गए। वह थर-थर कांपने लगा। युवक ने सहज-शान्त स्वर में कहा—"डरो मत, मैंने उसे मार डाला है! वह पापी था। पराई बहू-बेटियों की इज्जत बिगाडता था। तुम जाओ, और पुलिस मे इत्तला दे दो।"

नौकर भागा—क्षण-भर में भगदड मच गई। पुलिस दलबल सहित आ गई। एक मोटे-से इन्सेक्टर साहब पिस्तौल ताने कमरे मे घुस आए। उन्होने चिल्लाकर कहा—"खूनी, खबरदार! भागने की चेष्टा न करना

वरना गोली मार दूंगा। चुपचाप हिरासत में आ जाओ!"

युवक ने बैठे ही बैठे आवाज दी—"इन्स्पेक्टर साहब, मैं यहां हूं। इधर आ जाइए।"

इन्स्पेक्टर ने देखा—युवक निर्भय कुर्सी पर बैठा है। उसके हाथ में कोई हथियार नहीं है। वे डरते-डरते उसके पास तक पहुंचे। और भी दो कान्स्टेबिल घुस आए और युवक को घेरकर खड़े हो गए।

यह देख युवक मुस्करा दिया। इन्स्पेक्टर ने भौं चढ़ाकर कहा—"क्या खून तुमने किया?"

"जी हां।"

"क्यों?"

"सजा देने के लिए।"

"किस बात की सजा?"

"यह पराई बहू-बेटियों का धर्म बिगाड़ता था।"

"तुम्हें यह मुनासिब नहीं था, कानूनी कार्यवाही करते।"

"कानून संपूर्ण नहीं है।"

"फिर भी तुम्हें अधिकार न था।"

"खैर, आप अपनी कार्यवाही कीजिए।"

"मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूं।"

"कीजिए न, मैं तो स्वयं बड़ी देर से आपकी इन्तजार में बैठा हूं।"

तुरन्त युवक को हथकड़ियां लगा दी गईं। इसके बाद लाश की जांच-पड़ताल होने लगी। फिर युवक को घेरकर पुलिस थाने में ले चली। राजा साहब के खून की खबर आग की तरह शहर में फैल गई।

३३

कुमुद का जेठ विधुर था। उसकी स्त्री का देहान्त हुए दो वर्ष हो गए थे। यह व्यक्ति साधारण लिखा-पढ़ा था, और एक कपड़े वाले की . पर मुनीमगीरी करता था। इस बार कुमुद के घर में आते ही इसकी कु

उसपर पड़ी। जब-जब कुमुद पर अत्याचार होता—वह उसका पक्ष लेकर सबसे लड़ता। पर उसे कुमुद से मिलने, बात करने और अपनी अभिसन्धि प्रकट करने का अवसर नहीं मिलता था। उस दिन कोई पर्व था। कुमुद को छोड़कर सभी पर्व नहाने गये थे। घर में कोई स्त्री न थी। तब वह साहस करके भीतर घुस आया। उसे देखकर कुमुद सहम गई, पर बोली नहीं। उसने कहा—"बहू, तेरे ऊपर बड़ा जुल्म होता है, यह तो मुझसे सहा नहीं जाता।"

कुमुद जेठ से बोली नहीं—वह चुपचाप खड़ी रही। उसने फिर कहा—"इस तरह कब तक चलेगा? तू कब तक यह सब कुछ सहेगी!"

कुमुद को बोलना पड़ा।

उसने कहा—"जब ईश्वर ने यह दिन दिया है, तो सभी कुछ सहना पड़ेगा।"

"मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ।"

"कहिए?"

"चल कहीं भाग चलें, मैं तुझे जान से ज्यादा करके रखूँगा, अभी सारी उम्र पड़ी है, इस तरह थोड़े ही कट जायगी?"

कुमुद के सारे शरीर से पसीना बह निकला। उसने कम्पित स्वर से कहा—"कृपाकर आप यहाँ से अभी चले जाइए, और ऐसी बात फिर कभी जबान पर भी न लाइएगा!"

"क्यों, ऐसा क्या होता नहीं?"

"आप चले जाइये!"

"क्या भाई मुझसे ज्यादा सुन्दर थे?"

"मैं कहती हूँ, आप यहाँ से चले जायें।"

"बेवकूफ औरत, यह मेरा घर है। मैं कहाँ चला जाऊँ? तू बता, कि मेरी बात मानती है, या नहीं?"

"मैं आपकी बात पर धिक्कार भेजती हूँ।"

"अब तू इस घर में न रह सकेगी!"

"ईश्वर के राज्य में मेरे लिए बहुत जगह है।"

"मैं तुझे बदनाम कर दूँगा।"

"ग़रीब अनाथ स्त्री को सताकर आपको क्या मिलेगा ?"

"तुझे राजी से या जोर से मेरी बात माननी पडेगी।"

"प्राण रहते यह नही होगा !"

"और जो मैं जबर्दस्ती करूँ ?"

"आप पूज्य है, बडे है, आपको क्या ऐसी बातें शोभा देती है ?"

"मैं तेरा उपदेश सुनना नही चाहता।"

"आप चले जाइए। मैं भी आपकी बात नही सुनना चाहती।"

"तुझे मेरे हाथ से कोई नही बचा सकता।"

"परमेश्वर सभी को बचाते है।"

"देखें, परमेश्वर कैसे बचाता है ?" इतना कहकर वह दुष्ट उसपर टूट पडा। बच्चा रो पडा, उसे छीनकर उसने अलग ढकेल दिया।

कुमुद ने अपना पूरा बल लगाकर दुष्ट को गिरा दिया, और बाहर आँगन मे आकर 'दौडो-दौडो' चिल्लाने लगी।

इतने ही मे घर की स्त्रियाँ आ गई। यह माजरा देखकर वृद्धा बोली —"क्या बात है ?"

जेठ ने कहा—"एक सण्डा घर मे घुस रहा था, मैने उसे पकड़ लिया, तो इस पापिनी ने उसे भगा दिया, और मेरे हाथ मे काट खाया।"

सभी अवाक् रह गए।

जिठानी और ननद ने भी चढाकर कहा—"इसके ये लक्षण तो अब तक मालूम ही न थे।"

बडी ननद बोली—"बैठी-बैठी बच्चा खिलाने का बहाना था। यार को चिट्ठी लिखा करती थी।"

वृद्धा ने कुमुद के पास पहुँचकर कहा—"अभागिनी, अभी उसकी चिता भी ठण्डी नही हो पायी, और तूने यह यश कमा लिया !"

कुमुद को तो बोलने का अवसर ही नही मिला। वह चुपचाप खड़ी आँखें फाडकर उनको देखती रही।

धीरे-धीरे घर के सभी स्त्री-पुरुषों को यह बात विदित हो गई। 'वह कौन था ? वह कौन था ? सबके मुँह पर एक ही बात थी। मगर वह दुष्ट यह कहकर चुप हो गया—"मैं उससे समझ लूँगा, पर बताऊँगा नही। अपने

ही खानदान की बदनामी है।"

श्वसुर ने जब सुना, तो आगबबूला हो गए। गालियाँ दीं, और मारने का भी उपक्रम किया। गहना-पत्ता और रकम जो पास था, छीन लिया, और कह दिया—"इसका यहाँ एक मिनट रहना नहीं होगा। यह जहाँ चाहे, चली जाय।"

अन्त में यह निश्चय हुआ, कि उसके भाई को तार दे दिया जाय, कि वह इसे आकर ले जाय।

तार दे दिया गया कुमुद ने न कुछ खाया, न एक बूँद पानी पिया। वह बच्चे को छाती से लगाये पड़ी रही।

शाम हुई, कुमुद ने सोचा— अब क्या करूँ ? इस पृथ्वी पर मेरा सहायक कौन है ? उसे यह खबर न थी, कि उसके भाई को तार दिया गया है। उसने भाई के पास जाने का निश्चय किया, पर जाय कैसे ? पास में पैसा नहीं और वह कभी अकेली गई भी न थी, फिर जब घर में इतने शत्रु हैं, तो बाहर का ठिकाना क्या है ? पर इस वातावरण में एक क्षण भी ठहरना उसके लिए अशक्य था।

मालती ने जब यह सुना, तो दौड़ी-दौड़ी आई, दोनों लिपटकर खूब रोईं। कुमुद ने चले जाने का इरादा प्रकट किया। मालती ने कहा—"जीजी मेरे घर चलकर रहो। रूखी-सूखी जो जुड़ेगा खा लेंगे। मैंने माँ से पूछ लिया है।"

कुमुद ने कहा—"नहीं मालती, यह समय ऐसा नहीं है, अब तो मुझे मुँह छिपाना ही सार है। तेरे घर जाने में और भी बदनामी होगी। मेरे साथ तू भी बदनाम होगी, पर मेरा एक उपकार कर। एक टिकिट का प्रबन्ध करके मुझे गाड़ी में बिठलवा दे, मैं भाई के पास चली जाऊँगी।"

मालती ने वचन दिया। वह चली गई। उसी रात को जब सब घर सो रहा था—कुमुद उठी। चुपचाप बच्चे को छाती से लगाया, और घर से बाहर चल दी। मालती के भाई ने टिकट लेकर उसे गाड़ी में चढ़ा दिया।

प्रभात हुआ। कुमुद नदारद। घर-भर में ढूँढ़-खोज मच गई। चारों तरफ को आदमी दौड़े। 'हाय-हाय ! नाक कट गई ! इज्जत बिगड़ गई !' के वाक्य कानों के पर्दे फाड़ रहे थे। दोपहर तक दौड़-धूप हुई। इसके बाद

सब शान्त हो वैठे। सबने यही तात्पर्य निकाला, कि कुल-कलङ्किनी यार के साथ भाग गई। उसके भाई को दूसरा तार दे दिया गया—"तुम्हारी वहन किसी के साथ भाग गई। अव आना व्यर्थ है।"

३४

जिस समय भूखी-प्यासी थकित कुमुद भाई के द्वार पर पहुँची, उस समय रात हो चुकी थी। उसके पास दूसरा तार भी पहुँच चुका था, और भाई-भावज कुमुद को विविध रीति से कोस रहे थे। कुमुद ने धीरे से द्वार खटखटाया, और आवाज दी। स्वर पहचानकर कहा—"कुमुद तो आ गई दीखती है ?"

भौजाई ने घृणा से मुँह सिकोड़ लिया। रक्त के आवेश मे भाई ने नीचे दौड़कर द्वार खोल दिया। देखा—वह कुमुद, डिप्टी साहव की स्त्री, जिसके घर आने पर गाँव-भर मे धूम मच जाती थी, एक मैली साड़ी पहने; गोद में बच्चे को लिये, नगे पैर द्वार पर भिखारिन के वेश में खडी है। भाई ने उसे चुपचाप घर में ले लिया। कोई कुछ वोला नही। किसी ने कुछ पूछा भी नही। कुमुद ने देखा, यह क्या वात है, सारा संसार ही विमुख हो गया है। उसने कहा—"भाई, मैं वडी विपत्ति में पडकर यहाँ आई हूँ।"

भाई कुछ भी वोले नही, वे उठकर वाहर चले गये।

अन्त मे भावज का मुँह खुला। उसने कहा—"साखा रच आई बीबीजी ?"

कुमुद का हृदय हिल गया। पर वह वोली नही। वच्चे को धरती पर वैठाकर वह स्वय भी बैठ गई। वच्चे ने कहा—"अम्मा, पानी !"

कुमुद ने इधर-उधर देखा। वह स्वयं उठकर घडे के पास गई। यह देख भावज ने गरजकर कहा—"यह क्या किया, घडा छू लिया। तुम्हे कुछ अच्छे-वुरे का खयाल भी है ?"

उसने उठकर घड़ा फोड़ डाला। पानी सारे घर में फैल गया। कुमुद ने देखा—यहाँ तो एक क्षण भी कटने का ढग नही है। उसने कहा—"भाभी,

मुझे माफ करना। दुःख ने मेरी मति हर ली है। मुझे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहा। तुम मुझ दुखिया को क्षमा करना। सिर्फ रात-भर काटकर सुबह मैं चली जाऊँगी।"

कुमुद ने वहीं धरती पर अपनी साड़ी का पल्ला बिछाकर बच्चे को सुला दिया, और स्वयं भी जमीन पर ही सो गई।

प्रात काल हुआ। भाई ने देखा—कुमुद सूखकर कांटा हो गई है। उसके फूले हुए गाल पिचक गये है, रंग पीला हो रहा है, आँखें गढ़ों में घुस गई हैं। भाई के हृदय में दर्द हुआ। उसने कहा—"कुमुद, इतने ही दिन में तुम्हारी यह दशा हो गई ?"

कुमुद बोली नहीं। एक बूंद आँसू उसकी आँख में आकर सूख गया। उसने कहा—"भाई, मैं जो अपने दुःख में तुम्हें कष्ट देने आई, इसके लिए क्षमा करना। पृथ्वी पर मेरा तुमसे बढ़कर कोई सगा न था। तुम इतना कष्ट करो, कि मुझे काशी पहुँचा आओ। खर्च-पानी का सब प्रबन्ध मैं कर लूँगी। तुम्हें कुछ भी न करना होगा।"

भाई की आत्मा द्रवित हुई। उसने कहा—"कुमुद, इस तरह पराई की तरह बातें क्यों करती हो ? चाहे भी जो हो, तुम हमारी बहन हो। हम लोग एक माँ के पेट से जन्मे हैं। क्या एक मुट्ठी अन्न तुम्हें यहाँ नहीं मिलेगा ?"

कुमुद के होंठों पर बात आई, पर वह पी गई। उसने कहा—"नहीं भाई, मुझे उचित नहीं, कि किसी पर भी अपने दुर्भाग्य की छाया डालूँ। तुम कृपा कर मेरी इच्छा पूर्ण कर दो।"

अभी तक भाई के मन में तार की दुर्भावना थी, पर वह कुछ कह सकता न था। उसे बहन पर क्रोध था, पर उसकी आकृति देखकर उससे कुछ कहा न गया। फिर भी वह बोला—"कुमुद, जो कुछ सुना है, वह क्या सच है ?"

"तुमने क्या सुना है ?"

भाई ने दोनों तारों का परिचय दिया। कुमुद ने सुनकर कहा···"तुम मेरे भाई हो, इस असहाय अवस्था में मेरे रक्षक हो। तुम्हें उचित है, कि इस बात की सचाई की जाँच करो, और अपनी बहन का झूठे कलंक से उद्धार करो।"

"तब यह सब दुष्टों का उड़ाया हुआ है ?"

"यह तुम खोज कर निश्चय करो।"

"मैं तो तुझे देखते ही समझ गया था। पर कुमुद, अब तुम यहीं रहो।"

"नहीं भाई; इसका हठ न करो, तुम मुझे काशी पहुँचा आओ।"

भाई ने बहुत कहा, पर उसने एक न सुनी। विवश भाई को राजी होना पड़ा। उसने कहा—"अच्छी बात है, खा-पीकर रात की गाड़ी से चल देंगे।"

"रात की नहीं, जो गाड़ी सर्वप्रथम जा रही हो, उसी से चलना होगा।"

"भला बिना खाये-पिये······।"

"मैं अन्न-जल तो काशी पहुँचकर ही करूँगी।"

इतनी देर में भाई को खयाल आया—इससे रात भी किसीने भोजन के लिए नहीं पूछा। सम्भवत यह यात्रा में भी भूखी ही रही है! न जाने कब से भूखी है? यह तो बुरा हुआ। उसने कहा—"कुमुद, तुमने कब से खाया नहीं?"

"कुछ हर्ज नहीं, न खाने से मैं मरूँगी नहीं। मरना चाहती भी नहीं। मेरे पति का पुत्र मुझे पालना है!"

"तब भोजन कर लो।" यह कहकर वह भीतर लपके।

परन्तु कुमुद ने बाधा देकर कहा—"मैं कह चुकी, मैं अब जल काशी पहुँचकर पियूगी।"

"तुम भाई को कष्ट न दो, स्वय भी परेशान न हो!"

"पर यह कैसे सम्भव हो सकता है?"

"इसमे कठिनाई ही क्या है?"

भाई-बहन मे यह हुज्जत चल ही रही थी, कि उनकी स्त्री वहाँ आकर बोली—"मान-मनौवल अभी खत्म नही हुई?"

भाई ने रूक्ष होकर कहा···"तुमने रात कुमुद से खाने-पीने को भी नहीं पूछा? तुम्हारी अक्ल पर पत्थर पड़ गये दीखते है!"

"पत्थर नहीं ओले। उनसे पूछनेवाले लाख हैं, अकेली क्या मैं ही हूँ?"

भाई ने क्रुद्ध होकर कहा—"बकती क्या है?"

"एक मेरा मुँह रोक लोगे, और किस-किसका रोकेगे?" स्त्री तेजी से कहकर चली गई।

भाई ने स्त्री को गालियाँ देना प्रारम्भ किया। कुमुद ने खड़ी होकर कहा—"बोलने दो भाई, उसे कुछ मत कहो। अच्छा, अब तुम चलते हो, या मैं अकेली चली जाऊँ?"

भाई ने बहिन के पैर छूकर कहा—"कुमुद, इतनी हठ न कर, उस दुष्टा की तरफ न देख। तू कब की भूखी-प्यासी है, अब यों बिना-खाये-पीये मेरे घर से न जा। मैं वास्तव में भ्रमवश तुझपर अत्याचार कर बैठा।"

कुमुद ने धैर्य से, किन्तु दृढ़ स्वर में कहा—"भाई, हम रक्त और हृदय से एक हैं, हमी जब एक-दूसरे को न समझेंगे, तो कौन समझेगा? तुम हठ न करो, बहिन की रक्षा करो। मैं जरा भी नाराज नहीं, पर आत्म-प्रतिष्ठा का मैं अवश्य ख्याल रखूंगी। मैं एक प्रतिष्ठित पुरुष की पत्नी, और एक होनहार बच्चे की माता हूँ, यह मैं नहीं भूल सकती। तुम मेरी इच्छा-पूर्ति करो, वरना मैं अकेली ही अपनी इच्छानुसार करूँगी।"

अधिक हठ व्यर्थ देख, भाई सहमत हुए। दोनों व्यक्ति उसी क्षण घर से बाहर होकर काशी की ओर जानेवाली गाड़ी में बैठ चले।

३५

कुमुद के जेठ का नाम रामनाथ था। कुमुद के साथ मालती की घनिष्ठता को वह जानता था। घर-भर को यह बात मालूम थी। यह लम्पट आदमी उस बालिका के ऊपर भी कुदृष्टि रखता था। परन्तु मालती शिक्षिता और प्रतिष्ठित घर की बेटी थी। रामनाथ का साहस उसके सामने पड़ने का नहीं हुआ था। इस बार उसने मालती पर दृष्टि डालने का साहस संचित किया। मालती नित्य-ही स्थानीय कन्या-पाठशाला में नियमित समय पर पढ़ने जाती थी। उसने मैट्रिक परीक्षा पास करने की ठान ली थी। यह सब उसने कुमुद के अनुरोध से किया था। कुमुद चलते-चलते उससे कह गई थी—"पढ़ना न छोड़ना, पढ़ने में एकदम डूब जाना, परमेश्वर पर भरोसा रखना, इतना धीरज न हो, तो मुझपर रखना। तेरे संकट अवश्य ही कटेंगे।"

मालती को सखी की इस बात से बहुत ढांढ़स बँधा था। वह सब बातों

से मन हटाकर पढ़ने में लग गई थी। उसके चित्त में वासना थी, चंचलता भी थी। परन्तु वह उच्च घराने की लड़की थी। पतित होने योग्य उसके सस्कार न थे। साहस भी न था। सस्कार और स्वाभाविक भीरुता उसके रक्षा-कवच थे।

रामनाथ ने अब यह नियम बना लिया कि मालती जब स्कूल जाने लगती तो वह द्वार पर खड़ा हो जाता। स्कूल से आने के समय भी, वह उसे एक बार देखने को घण्टो खड़ा रहता था। स्त्रियाँ चाहे और बातें न समझ सकें, पर पुरुष की पाप वासना को जरूर समझ लेती है। मालती ने भी रामनाथ की कुदृष्टि को भाँप लिया। पहले वह कभी आवश्यकतानुसार रामनाथ से बात कर भी लेती थी, अब वह बिल्कुल उधर दृष्टिपात न कर सीधी निकल जाती।

रामनाथ बड़ा ही निर्लज्ज था। वह साहस करके खाँसने-खखारने और सकेत भी करने लगा। पर मालती के मन में उसके प्रति उपेक्षा और घृणा के भाव भरते ही गये। परन्तु यह बात उसने किसी से कही नहीं। कुमुद की ससुराल में आना तो उसने बिल्कुल ही छोड़ दिया था। अब उसने पाठशाला जाने का भी दूसरा मार्ग तलाश कर लिया।

मालती की एक भौजाई का नाम कामलता था, पर उसे लता ही के नाम से सब पुकारा करते थे। यह स्त्री नववयस्का थी। इसका विवाह हुए दो ही वर्ष हुए थे। इसके पति, मालती के भाई 'इलाहाबाद लॉ-कालेज' में पढ़ते थे। फलत. लता अकेली ही रहती थी। वह मालती की समवयस्का भी थी। वह मालती के साथ सोती, खाती और बहुधा रहती थी। मालती की अपने घर में एक उसी से घनिष्ठता थी। मन के आवेग को रोक रखने में असमर्थ होकर मालती ने रामनाथ की कुदृष्टि की बात उससे कह दी।

लता भी दुर्भाग्य से चंचलवृत्ति की स्त्री थी। वह सधवा थी, परन्तु विपत्ति के अभाव से उसकी चपलवृत्ति अधिकाधिक व्यग्र रहती थी। वासना सम्बन्धी बातों का उसके पेट में खजाना भरा रहता था। वैसी बातें कहने-सुनने में उसे बड़ा रस आता था। वह मालती के प्रति रामनाथ की चेष्टाओं को बड़े ध्यान से देखने-सुनने लगी। उसके मन मे रामनाथ को एक बार देखने की बड़ी इच्छा हुई, और उसने उसे देख भी लिया।

रामनाथ को देखकर भी उसके मन में रामनाथ के प्रति घृणा के भाव नहीं उत्पन्न हुए। उसने रामनाथ को नहीं, उसकी आँखों में नाचती हुई वासना को देखा। एक बार उसने हँसकर मालती से कहा—"तेरे उस बूढ़े सैंया को मैंने देख लिया है। क्यों बेचारे को इतना सताती है? और कुछ नहीं, तो जरा एकाध बार हँस दिया कर।"

मालती ने क्रोध करके कहा—"भाभी, ऐसी बात न किया करो। उसी पापी ने कुसुम जीजी को बे-घरबार कर दिया है। मुझे उससे बड़ी घृणा है।"

"घृणा की क्या बात है री, अगर तेरा दूल्हा ऐसा ही होता, तब?"

मालती वहाँ से रिसाकर उठ गई। लता ने देखा, यह उतनी रसिक नहीं है, पर फिर भी उसने साहस नहीं छोड़ा। वह समय पर उसकी चुटकियाँ लेती ही गई।

रामनाथ की दोस्ती मि० कालीप्रसाद से थी। इसे दोस्ती न कहकर मुसाहिबी कहें, तो अच्छा है। इसी मुसाहिबी की बदौलत उसका नाच-मुजरों; खेल-तमाशों का शौक पूरा हो जाया करता था। काली बाबू बस्ती के रईस युवक, सुन्दर, हँसमुख और उन सब गुणों में पूरे थे, जिनसे लम्पटों की शोभा होती है। एक बार बातों ही बातों में रामनाथ ने कालीबाबू से मालती का जिक्र कर दिया। तब से तो मालती की स्मृति काली बाबू के दिमाग में घर कर गई, और रामनाथ की इज्जत भी उनकी दृष्टि में बढ़ गई। वे बहुधा मिलकर उसे वश में करने के मसूबे बाँधा करते, और घण्टों मालती के ध्यान में डूबे रहते थे। कुछ दिन बाद उन्होंने मालती के नाम पत्र भेजना प्रारम्भ किया, जिसकी चर्चा भी मालती ने लता से की, परन्तु और कोई इस बात को न जान सका। अब मालती के लिए स्कूल आना-जाना भी भारी हो गया। स्कूल की एक महरी को भी इन पापियों ने गाँठ लिया, और एक दिन जब वह स्कूल से घर लौट रही थी, उसी महरी की सहायता से फुसलाकर उसे उड़ा लिया। उड़ाकर उसे कालीबाबू के बगीचे की कोठी में बन्द कर दिया गया। वहाँ वह तीन-चार दिन बन्द रही। उसे वश में लाने के लिए उसपर काफी अत्याचार किए गए, परन्तु मालती ने भी प्राण दे देने का संकल्प कर लिया था।

इस प्रकार मालती-जैसी प्रतिष्ठित घराने की लड़की के एकाएक गायब

होने से शहर में हलचल मच गई। चारों तरफ खोज-पड़ताल होने लगी। मालती के घर के लोगो का तो बुरा हाल था। पापी रामनाथ भी दो वार उनसे संवेदना प्रकट कर आया था।

मालती राजी न होगी—यह उन दोनो को मालूम हो गया था, परन्तु कालीवाबू ने भी निश्चय कर लिया था, कि या तो उसे वश मे करेंगे, या मार ही डालेंगे। इस प्रकार आसुरी भावना धारण कर, दोनो पापिष्ठो ने बगीचे में प्रवेश किया।

मालती दो-तीन दिन की भूखी-प्यासी थी। क्षण-क्षण उसे अपनी प्रतिष्ठा भंग होने का भय था। उसने निकल भागने के यथा-सम्भव उपाय किये थे, पर वे कुछ भी कारगर न हो पाये थे। वह बहुत-कुछ रो चुकी थी। कुमुद के वचन उसके साथ थे। अतः उसने एक उपाय स्थिर किया। जिस कमरे मे वह वन्द थी, उसमे ऊपर की ओर एक खिडकी थी, उसी के द्वारा वह बगीचे के पिछले हिस्से मे सडक पर आते-जाते स्त्री-पुरुषो को अपनी ओर आकृष्ट करने की चेष्टा करती, परन्तु एक तो वह स्थान ही कुछ निर्जन था, दूसरे उस तरफ किसीका ध्यान ही नही जाता था। मालती को इसमे कुछ सफलता नही मिली।

उसी खिड़की की राह वह निकल भागने की भी बहुधा सोचा करती। पर वह दूसरे मन्जिल पर थी, और खिड़की के नीचे का स्थान भी सुरक्षित न था। कोमल और निरुपाय बालिका मालती उस रास्ते नीचे उतरने का साहस न कर सकी।

सन्ध्या हो गई थी, और उसकी कोठरी में अन्धकार था। उसके द्वार खुलने की कुछ आहट प्रतीत हुई। पहले उसने सोचा, वह कुटिल मालिन खाना लेकर आई होगी, जो यहां उसकी देख-रेख पर नियत है, और जिससे वह हजारो मिन्नतें कर चुकी थी। पर जव उसने साक्षात् पिशाच के समान कालीवाबू और उससे भी घृणास्पद रामनाथ को लैम्प हाथ में लिये मुस्क-राते हुए कोठरी मे आते देखा, तो वह स्तब्ध रह गई। परन्तु समय और अवसर मनुष्य को साहस प्रदान करता है। मालती ने भी साहस का सचय किया। उसने भयभीत स्वर में कहा—"मैं हाथ जोड़ती हूं, मुझे यहाँ से निकाल दो।"

कालीबाबू ने जोर से हँसकर कहा—"समझ गया, अब सीधी राह पर आ गई मालूम होती है। रामनाथ, तुम जरा बाहर बैठो। लैम्प को यहीं रख दो। मैं देखता हूँ, कि यह पालतू बिल्ली कितनी उछल-कूद मचाती है।"

रामनाथ लालटेन वहीं रखकर चुपचाप बाहर चला गया। कालीप्रसाद ने कमरे का द्वार बन्द करते-करते कहा—"तो अब राजी हो न।"

कालीप्रसाद ने खूब शराब पी हुई थी, यह मालती अनायास ही समझ गई। वह पलँग से पीठ सटाकर चुपचाप इस भाँति खड़ी हो गई, जैसे एक खूँखार भेड़िये के आक्रमण के मुकाबले की तैयारी हो।

कालीप्रसाद ने दोनों हाथ फैलाकर कुछ अनर्गल शब्द मुँह से कहे, और मालती की ओर बढ़ा। मालती ने साहस किया। वह एक कदम पीछे हटी, और फिर उसने उस कमरे में पलँग के सिरहाने रक्खी हुई एक चिलमची उठाकर पूरे वेग से कालीबाबू के सिर पर दे मारी। कालीप्रसाद 'हाय' भी न कर सका। वह तुरन्त घूमकर धरती पर गिर पड़ा। खून का फौव्वारा सिर से बह चला।

मालती ने अब और साहस किया। उसने कम्बल और चादर को पलँग से उठाया। उसे फाड़कर और गाँठ बाँधकर रस्सी बनाई, तथा पलँग की पाटी में बाँध, वह उस खिड़की की राह, उसी के सहारे उतर चली। धरती तक पहुँचते-पहुँचते वह अर्द्धमूच्छित अवस्था में थी। जब उसके पैर धरती पर टिक गये, तब उसने कुछ सम्हलने की चेष्टा की, पर सम्हल न सकी। एक प्रौढ़ व्यक्ति उधर से आ रहे थे। उन्होंने दूर से ही उसे साहसपूर्ण ढँग से उतरते देखा, और लपककर उसे सम्हाल लिया। उस रात्रि के धुँधले प्रकाश में उन्होंने जान लिया, कि कोई आपद्ग्रस्त बालिका है। वे उसे हाथों का सहारा दिये, एक ओर ले गये। पास ही एक ताँगा जा रहा था। उसे बुला, उसमें उसे लिटाकर वे चल दिये।

मालती एक विपत्ति से बचकर दूसरी में आ फंसी।

३६

साक्षात् नर-पिशाच चाण्डाल-स्वरूप गोपाल पांड़े के साथ में धुजन जयनारायण की सारी इज्जत-आवरू चली गई थी। उन्हें पुत्री का पाप कहना पड़ा, और उस पापी की शरण लेनी पड़ी, बदले में देनी पड़ी दक्षिणा। एक पिता का इससे अधिक अपमान क्या हो सकता है?

परन्तु बात अपमान ही तक सीमित न थी, उसे पुत्री को वह भयानक दवा स्वयं खिलानी भी पड़ी। कैसी भयानक बात है! मनुष्य की आत्मा की यह अद्भुत दुर्बलता है कि वह अपराध के बीज से बचता है, पर अपराध में साहसपूर्वक डूबता है।

दवाखाने में भगवती ने बहुत ही आना-कानी की, पर जयनारायण ने उसे खिला ही दी। उसे खून की उल्टियाँ आने लगी और वह बेहोश हो गई। उसके मूत्र-मार्ग से भी रक्त का प्रवाह बह निकला। तीन दिन बीतने पर भी जब हालत खराब होती ही गई, तब जयनारायण पास के नगर से सरकारी डाक्टर को बुला लाए। डॉक्टर ने सहज ही में असली घटना का अनुमान लगा लिया। भगवती उससे कुछ छिपा भी न सकी। डॉक्टर क्रोध-से लाल मुँह किए बाहर आया, उसने जयनारायण को एकान्त में ले जाकर कहा—"मुझे तुम्हारी हालत पर अफसोस है, मगर मैं इस केस को बिना पुलिस में दिए नहीं रह सकता।" जयनारायण पर वज्र गिरा। वह पत्थर की भाँति निश्चल खड़ा डॉक्टर का मुँह देखता रहा।

डॉक्टर ने वहाँ से हट, हरनारायण को दवा दी। विधि भी बता दी, और जाकर गाड़ी में बैठ गया। हरनारायण दौड़कर गाड़ी के सामने आ खड़ा हुआ। उसने कहा—"डॉक्टर साहब, इस बदनसीब बूढ़े की सफेदी का कुछ ध्यान कीजिये।"

डॉक्टर ने देखा, दृष्टि फेर ली, और कोचमैन को बढ़ने का हुक्म दिया। क्षण-भर में बड़े डॉक्टर के आने की बात फैल गई। 'भगवती को क्या हुआ है?'—इसकी आलोचना होने लगी। भाँति-भाँति की चर्चा उठने लगी।

जयनारायण आनेवाली विपत्ति से सामना करने और सबकी आलोचनाओं से मुक्ति पाने के विचार से घर में जाकर बैठ रहे।

दिन ढलते ही दलबल-सहित पुलिस आ धमकी। गाँव-भर जयनारायण के द्वार पर इकट्ठा हो गया। स्त्री और पुरुष सब काम छोड़कर इस मनोरम दृश्य को देखने के लिये आ जुटे।

जयनारायण के पैरो से धरती निकल रही थी। उसने मुँह ढाँपकर पड़े हुए हरनारायण से कहा—"चलो बेटा, जो भाग्य मे भोगना बदा है, भोगें। इस तरह पड़े रहने से क्या काम चलेगा!" उन्होंने बाहर आकर दारोगाजी को सलाम किया।

दो भलेमानसो को साथ लेकर दारोगाजी ने भगवती के बयान लिये। वह सत्य बात न छिपा सकी। देखते ही देखते छजिया, गोबिन्दा और गोपाल पाँडे के नाम सिपाही छूट गये, छजिया और गोपाल पाँडे पकड़े गए। सब के इजहार हुए। छजिया और पाँडेजी ने एकबारगी ही इस मामले मे कुछ बताने से इन्कार कर दिया, फलत इन लोगों की खूब पूजा भी हुई।

जिस समय छजिया और पाँडेजी पर पुलिस के सिपाहियो की चरण-दासी की वर्षा हो रही थी, तो सारे गाँव पर भयकर आतक छा गया। वृद्धजन सिर झुकाकर खडे हो गये, किशोर पिता-दादा की छाँह मे छिपने लगे, और अबोध बच्चे गिल्ली-डण्डा फेंक-फाँककर घूँघटवाली माताओ की गोद मे जा छिपे।

जयनारायण चुपचाप वज्राहत की भाँति एक ओर बैठा सब कौतुक देख रहा था। शिवसहाय चौधरी ने पास आकर धीरे से कहा—"अब इस तरह पत्थर की तरह कब तक बैठे रहोगे? ज्यादा फजीता कराने का काम नहीं; हुआ सो हुआ—मामले को रफा-दफा करो।"

जयनारायण मुँह उठाकर चौधरी की ओर देख भी न सके।

वह दोनो हाथों मे मुँह ढाँपकर रोने लगे। चौधरी ने उनके पास बैठकर कहा—"कुछ रुपये-पानी का प्रवन्ध करो, मामला यों नही तै होगा।"

जयनारायण ने रोते-रोते कहा—"आपको किसी तरह मेरी इज्जत बचती दीखे तो बचाइए, वरना बर्बाद तो हो ही चुका हूँ।"

चौधरी साहब चुपके से बाहर उठ गए। देखा—गोविन्दसहाय को

बुलाने गया हुआ सिपाही लौट आया है। उसने कहा—"वे घर पर नहीं हैं।"

चौधरी साहब उस कास्टेबल को सकेत करके एक तरफ ले गये, और कहा—"थानेदार साहब से कहकर मामला रफा-दफा करो।"

"अरे—राम का नाम लो बाबा !"

"क्यों ?"

"वे तो रिश्वत का नाम सुनकर काटने दौड़ते है।—राम दुहाई !"

"भई, यह काम तो किसी तरह करना ही होगा।"

"मामला संगीन है, इनका मिजाज कडा है। मामला बनता दीखता नही।'

"कोशिश तो करो, तुम्हारा भी हक मिलेगा।"

सिपाही चुपचाप थानेदार के पास जाकर कान मे कुछ कहने लगा। थानेदार ने चमककर कहा—"नही जी, हमारे पास कोई मत आओ; हम किसीकी नही सुनेगे।"

सिपाही ने निराशा का भाव दिखाते हुए कहा—"चौधरी साहब, देखा आपने ? वे तो हाथ भी नही रखने देते।"

चौधरी साहब चुपचाप सोचने लगे। सिपाही महाशय बोले—"यह तो कहो, रकम कितनी मिलेगी ?"

"जो कुछ भी तय हो जाय।"

"पाँच सौ रुपये का मामला है।"

चौधरी साहब बोले —"अजी इतना उसके पास कहाँ है ?"

"है क्यो नही, गाँव का सबसे तगडा आसामी है।"

"बावले भाई दूर के ढोल सुहावने लगते है।"

"तो तुम जानो।"

"देखो सन्त्री, बूढ़े की सफेदी की लाज रक्खोगे, तो बड़ा जस पाओगे।"

अन्त में दो सौ रुपये पर मामला तय हुआ।

सिपाही थानेदार को एक तरफ ले गया। वह मिन्नत-खुशामद करता है, हाथ जोड़ता है, और थानेदार साहब तन-तनकर उठते हैं। बड़ी देर में कब्जे मे आये, तब सिपाही ने चौधरी साहब को सामने पेश किया।

उन्होंने सामने आते ही झुककर सलाम किया।

थानेदार ने मुस्कराकर कहा—"चौधरी साहब, सिर्फ तुम्हारे लिहाज से यह काम हुआ है; वरना खुदा की कसम, हम अपने बाप को भी नही सुनते है।"

चौधरी साहब ने कहा—"हुजूर की मेहरबानी है।"

"अच्छा तो विदा करने का प्रबन्ध करो।"

चौधरी साहब ने भीतर आकर सब हाल जयनारायण को सुनाया, तो उन्हे काठ मार गया। पर चौधरी ने साफ कह दिया—"अब दूसरा कोई चारा नही है।"

लाचार बाप-बेटो ने सलाह करके कर्त्तव्य स्थिर किया। हरनारायण चुपचाप अपनी स्त्री की कोठरी में घुस गया, और थोडी देर मे एक छोटी पोटली लेकर बाहर आया। जयनारायण ने वह पोटली लेकर चौधरी साहब से कहा—"इन्हे गिरवी रख आना चाहिए।"

"........."

× × × ×

आध घण्टे मे सब मामला तय हो गया। पुलिस ने उस गृह का पिण्ड छोडा। उस दिन से जयनारायण ने घर से निकलना ही छोड़ दिया। हरनारायण भी शहर मे मकान लेकर जा रहा। एक बात और रह गई। श्रीयुत गोपाल पाँडे की अगणित जूतियो और हण्टरो से खूब पूजा हुई, जिससे प्रसन्न होकर उन्होने सौ रुपये नकद दारोगा देवता की भेंट चढाये। गोविन्द सहाय की बात कुछ साफ-साफ नही मालूम हुई, पर पीछे सुना, कि वह आठ दिन तक कच्ची ससुराल मे सम्मानित हुआ था, और पाँच सौ रुपये चलती बार साले-सालियो को बख्शीस दे आया था!!

३७

सेशन जज की कचहरी खचाखच भरी थी। आदमी पर आदमी टूट रहा था। आज राजा साहब के खून का मुकदमा था। मैजिस्ट्रेट की

अदालत में कई पेशियाँ लगने पर मामला सेशन-सुपुर्द हो गया था। नीचे की अदालत में प्रकाश चन्द्र ने जो बयान दिया था, समाचार पत्रों की कृपा से जनता पर उसका बिजली का-सा असर हुआ था। इसीलिये आज अदालत के कमरे में कंधे से कधा छिल रहा था। जज-बैरिस्टर, वकील-सिपाही, अपनी अपनी जगह उपस्थित थे। कचहरी में बाहर-भीतर भारी भीड़ थी। सबके मुख पर एक ही बात थी।

ठीक दस बजे गाड़ी आकर कचहरी के पोर्टिको मे आ लगी, और उसपर से हथकड़ियो से जकड़ा हुआ प्रकाशचन्द्र उतरा। उसका चेहरा गम्भीर किन्तु प्रफुल्ल था—नेत्रो में निर्भयता थी, और वह गर्दन ऊँची किए इस प्रकार जा रहा था, मानो कोई प्रगल्भ व्याख्याता व्याख्यान देने मंच पर जा रहा हो।

सुशीला, श्याम बाबू, प्रकाश के माता-पिता—आदि सभी अदालत में उपस्थित थे। पिता को देखकर उसने प्रणाम किया, और श्याम बाबू को देखकर जरा-सा हँस दिया। वे लोग सब उदास थे। सुशीला रो रही थी। रोते-रोते उसकी आँखें सूज गई थी। मुकद्दमा प्रारम्भ होते ही एक वकील ने आकर कहा—"मैं अपने-आपको अभियुक्त की ओर से उपस्थित करता हूँ।"

प्रकाश ने उन्हे धन्यवाद देते हुए कहा—"इसकी आवश्यकता नही। जब मैंने कानून को हाथ में ले लिया है, तो अब मैं उसकी सहायता न लूंगा।"

जज ने नाम-धाम पूछकर उसका बयान लिया। प्रकाशचन्द्र ने बताया :

"मेरा नाम प्रकाशचन्द्र है, आयु 23 वर्ष, जाति हिन्दू। मेरे पिता पंजाब मे उच्च सरकारी अफसर हैं। मैं ला-कॉलेज का विद्यार्थी हूँ। सुशीला मेरी बहिन है। उसे मृत राजा ने फुसलाकर बलपूर्वक घर मँगवा लिया था। वह साहसपूर्वक भाग न आती, तो उसकी पवित्रता अवश्य लूट ली जाती। उसने और भी कई हमले उक्त बालिका पर किये। वह प्रसिद्ध दुराचारी रईस था। बालिका ने रोकर अपने पर अत्याचारी होने की घटना सुनाई। मैंने देखा, कानून इस विषय मे अपूर्ण है। और उसके आसरे बैठना मनुष्यत्व

के विपरीत है। मैं राजा के पास गया। उससे पूछा, कि तुम अपराधी हो या नहीं ? उसने अपराध स्वीकार किया, और मैंने उसे मारकर उचित दण्ड दे दिया। इसके बाद अपने को पुलिस के हवाले कर दिया।"

कमरे में सन्नाटा छा रहा था। जिरह में उसने कहा—"सुशीला मेरी धर्म-बहिन है। मैं ईश्वर और समार के सामने उसका भाई और सरक्षक हूँ। मैं उसका विवाह कर देने की बात सोच ही रहा था। वह मेरी ही जाति की है, पर मैं जातपाँत नहीं मानता। मैंने उससे विवाह करने की इच्छा को गर्हित समझा। पुरुष को स्त्री-जाति की विपत्ति में रक्षा बहिन के नाते ही करनी उचित है। यही सबसे पवित्र नाता है। विवाह की भावना स्वार्थमय होती है। सुशीला परम पवित्र, सर्वगुण-सम्पन्न श्रेष्ठ-कुल की कन्या है। उसने मुझे उत्तेजित नहीं किया। यह खून मैंने उत्तेजित होकर नहीं किया, विचारपूर्वक किया है।"

क्षण-भर सभी अवाक् रहे। जज ने पूछा—"क्या कानून को हाथ में लेना ठीक है ?"

"कानून अपूर्ण है।"

"फिर भी, यदि प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार की चेष्टा करे, तो क्या सार्वजनिक शान्ति रह सकती है ?"

"यह प्रश्न गैरत का है, और मैं खुली राय रखता हूँ,कि गैरत का प्रश्न भुज-बल पर ही रहना चाहिये।"

"क्या तुमने अपराध नहीं किया ?"

"नहीं, मेरे मन में न ईर्ष्या थी, न क्रोध। मैंने वही किया—जो करना चाहिये।"

"यही काम तो कानून करता।"

"कदापि नहीं; कानून में किसी कुलवती को छल-बल से भ्रष्ट करने की सजा बहुत थोड़ी है।"

"तुम और कुछ कहना चाहते हो ?"

"कुछ नहीं ?"

इसके बाद अदालत अगले दिन को उठ गई। प्रकाश को परिजनों से मिलने और बात-चीत करने की आज्ञा मिल गई थी।

प्रकाश के पिता ने आगे बढ़कर गम्भीरता से कहा—"पुत्र, कुछ भी परिणाम हो, पर तुम जैसे पुत्र पर मुझे गर्व है।"

माता ने आकर पुत्र के सिर पर हाथ फेरा। प्रकाश ने कहा—"अम्मा! सुशीला को तुम साथ ले जाना, और उसे तनिक भी कष्ट न होने देना।"

सुशीला अब भी रो रही थी। प्रकाश देर तक चुपचाप उसे देखते रहे। इस बार उनकी आँखों से भी आँसू बह चले। उन्होंने कहा—"सुशीला, तू मुझे प्रसन्न किया चाहती है, तो माता को उदास न होने देना।"

सुशीला प्रकाश के पैर पकड़कर बैठ गई। श्याम बाबू ने कहा—"प्रकाश, वकील को क्यों नहीं बोलने दिया ?"

"पागल वकील का इसमें क्या काम था ?"

"अब क्या होगा ?"

"चाहे भी कुछ हो।"

जज कुर्सी पर बैठे थे। मुकदमे की कई पेशियाँ लग चुकी थीं। आज फैसले का दिन था। अदालत में सन्नाटा छा रहा था। अन्त में जज ने जलद-गम्भीर स्वर में फैसला सुनाया :

"प्रकाशचन्द्र, इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारा उद्देश्य पवित्र और वीरोचित है, पर कानून को हाथ में लेकर ऐसी बड़ी घटना अपराध की श्रेणी में है। तुम्हारे मन में स्त्री जाति का बड़ा मान है। उसी भावावेश में तुमने यह काम किया है। मैं तुम्हें छः वर्ष का कठिन कारावास देता हूँ, परन्तु साथ ही सरकार से सिफारिश करता हूँ, कि वह तुम्हारे उच्चवंश, नेकचलनी, सुशिक्षा और सदुद्देश्य का ध्यान रखकर यथासम्भव रियायत करे।"

जज के बैठते ही पुलिस अभियुक्त को ले चली। बाहर भीड़ ने "प्रकाश चन्द्र की जय !" "वीर भाई की जय !" के नारे बुलन्द करने आरम्भ किये। प्रकाश एक बार हँसकर और सबको प्रणाम करके जेल की गाड़ी में जा बैठा। गाड़ी एक झटके के साथ जेल की ओर चल दी।

३८

प्रकाशचन्द्र के जेल आने के बाद सुशीला स्थिर भाव से प्रकाश के पिता के सम्मुख जा खड़ी हुई। अब उसके नेत्रों में आँसू न थे। वह उनसे कुछ कहना चाहती थी।

प्रकाश के पिता का नाम था, राय बहादुर मोतीलाल। उनकी आयु ५५ वर्ष से ऊपर होगी। चेहरा भरा हुआ, माथा प्रशस्त और कटी हुई छोटी मूँछें। सुशीला को पास आते देख, वे दो कदम आगे बढ आये और उसके सिर पर हाथ रखते हुए बोले—"बेटी, तू मन में ग्लानि न कर, मुझे पुत्र के इस कष्ट का जरा भी रंज नहीं है। तुझे अब मेरे साथ चलना होगा, और बेटी की तरह रहना होगा।"

सुशीला ने कहा—"पूज्य पिताजी, मेरी एक प्रार्थना है।"

"वह क्या ?"

"मैं भाई को छुडाऊँगी, आप मुझे आज्ञा दीजिए।"

"वह किस तरह बेटी ?"

"भाई ने कुछ भी अपराध नहीं किया है। उन्होंने स्त्री जाति की मर्यादा की रक्षा की है, उन्होंने पवित्र कर्म को निबाहा है। यदि अंग्रेजी सरकार का कानून ऐसी सद्भावना को अपराध समझता है, तो मैं जीवन-पर्यन्त उस कानून को भंग करूँगी।"

"बेटी, तेरी इच्छा क्या है ?"

"मैं स्त्रियों का डेपुटेशन वायसराय के पास ले जाना चाहती हूँ।"

"यह डेपुटेशन क्या कहेगा ?"

"वह कहेगा, यदि यह वीर भाई अपनी बहनों की रक्षा न करता, तो कानून का उन अबलाओं को क्या सहारा था ? कानून के रहते कितने पाप दुनिया में हो रहे है, फिर क्यों कानून के नाम पर वीर पुरुष को एक सत्कर्म के लिए दण्ड दिया जा रहा है ?"

राय बहादुर साहब हँस पड़े। उन्होंने कहा—"तेरा साहस तो यथेष्ट है,

पर तेरी सहायता कौन करेगा ?"

प्रकाश की माता पीछे खड़ी-खड़ी सब सुन रही थी। उन्होंने आगे बढ़कर कहा—"मैं सहायता करूँगी।"

सुशीला ने पीछे फिरकर देखा, और वह वृद्धा के चरणों में लोट गई। वृद्धा ने उसे उठाकर छाती से लगाया, और कहा—"बेटी, हम लोग बिना प्रकाश को छुड़ाए घर नहीं लौटेंगी ?"

रायबहादुर कुछ समय तक गम्भीर होकर देखते रहे। फिर घर जाकर परामर्श किया। रायबहादुर तो घर लौट गये, पर गृहिणी और सुशीला वहीं रह गईं। उन्होंने मुहल्ले-मुहल्ले में घूमकर आन्दोलन करना, और सुशिक्षिता स्त्रियों का एक संघ बनाना प्रारम्भ किया। अखबारों में भी काफी आन्दोलन उठा। एक दिन तीन हजार स्त्रियों की एक सेना, हाथ में काला झण्डा लिये वाइसराय की कोठी पर जा खड़ी हुई। सबसे आगे सुशीला और गृहिणी थी। वाइसराय ने तत्काल दोनों को भीतर बुला भेजा, और आदरपूर्वक बैठाकर पूछा—"आप लोगों का उद्देश्य क्या है ?"

"हम चाहती है, स्त्रीजाति को अभय प्राप्त हो।"

"स्त्रियाँ ज्यों-ज्यों योग्य बनेंगी, निर्भय होंगी।"

"योग्य बनने के लिए उन्हें नगर में अभय रहना आवश्यक है।"

"यह तो सत्य है।"

"इसके लिए सरकार का कर्तव्य ठीक-ठीक रहना चाहिए।"

"सरकार यथासम्भव ऐसा करती है।"

"फिर भी भारतीय स्त्रियाँ अरक्षित है। अंग्रेजी कानून उनकी यथार्थ रक्षा नहीं कर सकता, जैसा कि वह अंग्रेजी स्त्री का, इङ्गलैंड और सारी पृथ्वी पर करता है।"

"मैं यह अनुभव करता हूँ। वास्तव में कानून एक ऐसी वस्तु है, जिसका सदैव संशोधन होते रहना चाहिए।"

"फिर जब तक कानून अपूर्ण हो, आत्म-रक्षा का क्या उपाय है ?"

"आत्म-रक्षा के लिए अपराध कानून में क्षम्य है।"

"चाहे वह अपराध खून ही हो ?"

"अवश्य।"

"और वह अपराध यदि अभिभावक ने किया हो?"

"यह तो बात ही दूसरी हो गई।"

"पर इसकी आत्मा वही है।"

"मैं इसे स्वीकार करता हूं।"

"कानून का यही अभिप्राय होना चाहिए, कि वह नीति के विरुद्ध न हो।"

"अवश्य।"

"तो हम लोग प्रकाशचन्द्र के लिए रिहाई की प्रार्थना करती हैं।"

"किस आधार पर?"

"उसने नीति के विरुद्ध कोई काम नहीं किया।"

"परन्तु व्यवस्था और कानून के विरुद्ध···?"

"कानून तो अपूर्ण है, यह आप अभी कह चुके हैं!"

"फिर भी उसका पालन जरूरी है।"

"वहीं तक, जहां तक नीति के विरुद्ध न हो।"

"इसमें नीति-विरुद्ध क्या हुआ?"

"एक ऐसा व्यक्ति, जो नीति की मर्यादा को पालन करता हुआ दण्डित हो—वह नीति-विरुद्ध हुआ।"

और भी वाद-विवाद के बाद वायसराय ने महिला-मण्डल को विचार करने का आश्वासन दिया, और इस घटना के एक मास बाद प्रकाश की जेल से रिहाई हो गई।

३९

कुछ लोग बहुत सीधे-सादे गौ की भांति रहा करते हैं। पर वास्तव में वे सीधे नहीं होते, कमीने होते हैं। आत्म-सम्मान उनमें होता ही नहीं, विवेक और प्रतिष्ठा से भी उन्हें कोई सरोकार नहीं होता। वे बहुधा टुकड़खोर कुत्ते होते हैं, और पेट के लिए अच्छा-बुरा सभी कुछ कर गुजरते हैं। उनका धर्म पेट ही होता है। गोपी ऐसा ही आदमी था। इसकी उम्र पैंतीस के लग-

भग होगी। बिलकुल सूखचिड़ी, मुर्दार-सी सूरत, मैले कपड़े और गन्दे दाँत, घिनौनी बे-तरतीब मूछें, चुन्धी आँखें, बढ़े हुए मैले सिर के बाल, उनपर एक पुरानी वाहियात टोपी उस व्यक्ति के नगण्य व्यक्तित्व का परिचय दे रही थी।

यह आदमी वास्तव में कुरम था। क्या आप जानते हैं, कुरम कौन होते हैं? दिल्ली में ये लोग बहुत हैं। कहना चाहिए, इन लोगों की एक बड़ी बिरादरी है। इनका पेशा भले घर की बहू-बेटियों को इधर-उधर अड्डों पर ले जाना, और वहाँ लुच्चे-लफंगों को पहुँचाना है। गोपी ब्राह्मण था, पढ़ा-लिखा भी था। उसका पिता शहर का एक भलामानस नागरिक है, दो वर्ष से यह व्यक्ति घर से बाहर है। प्रथम वेश्या-गमन की आदत पड़ने से यह युवक पढ़ने से रह गया। खर्च की तंगी से घर की चीजें चुराने लगा। जब पिता ने घर से निकाल दिया, तब पेट के लिए इसने यह धन्धा किया। शुरू में वेश्याओं के लिए वह लजीले शिकारों को ताकता रहता। बहुत-से नौसिखिये युवक, जिन्हें पाप के पथ में जाने का अभी अभ्यास नहीं, उसमें प्रवेश होने योग्य निर्लज्जता भी नहीं—बहुधा गन्दे बाजारों में चक्कर लगाया करते हैं, उन्हें कोठों पर चढ़ने का साहस प्रायः होता ही नहीं। गोपी जैसे आदमी उनके लिए बड़े काम के होते हैं। गोपी ऐसे ही लड़कों को सड़क के एक किनारे खड़े होकर भाँपता रहता था। ज्यों ही वह समझता, शिकार ठीक है, वह झट से आगे बढ़कर उनके सामने पहुँचता, मुस्कराकर एक सलाम झुकाता और धीरे से कान में सुखद सम्वाद पहुँचाता, तथा जैसे गडरिया भेड़ों को ले जाता है, उन्हें अपने पीछे-पीछे ले जाता।

गोपी का केवल पेट ही नहीं था, उसे चण्डू, मदक पीने और कोकीन खाने की भी आदत पड़ गई थी। रोटी के बिना काम चल सकता था, पर इन चीजों के बिना नहीं। इसलिए अपने गुजारे के लिए उसके पास यह कुकर्म छोड़ अन्य कोई वृत्ति ही न थी।

परन्तु इस काम में उसे किसी प्रकार की आत्म-ग्लानि होती हो, यह बात न थी। वह बड़े मजे में था। इसमें भी उसने कुछ हथकण्डों के ढंग निकाल लिये थे। अब वह बाजारू वेश्याओं की अपेक्षा खानगियों से ज्यादा सम्बन्ध रखता था। वहाँ उसे ज्यादा कमीशन मिल जाता था। वह कुछ भी कर गुज-

रता था। चालाकियाँ कैसी, वह भी सुनिए—किसी अनभिज्ञ, भोले-भाले युवक को उसने फाँसा—"चलिए बाबूजी, एक बहुत बढ़िया घरेलू चीज दिखाऊँ; सिर्फ अठन्नी का खर्च है, पसन्द न हो तो चले आइयेगा।" बाबू साहब साथ हो लिए। वह किसी गली मे एक अँधेरे ठिकाने पर ले गया। अठन्नी वसूल की। "आप जरा यहीं खडे रहें।" कहकर एक घर में घुस गया। क्षण-भर बाद बाहर आकर कहा—"एक मिनट यहीं ठहरिये, मैं अभी बुलाता हूँ।" वह रफूचक्कर हुआ। अब आपकी जब तक तबियत हो, खड़े रहिए, वह तो अब आने का नहीं।

अस्तु, यही गोपी बसन्ती के पास बैठा था। ठण्ड काफी थी, बसन्ती चौकी पर पैर फैलाये बैठी मजे से आग ताप रही थी। उसने एक रेशमी दुलाई बदन पर लपेटी हुई थी। वह पान चबा रही थी, और इतरा-इतराकर उस घृणित युवक से बातें कर रही थी। वह बात-बात पर कसमें खाता था, हँसता था, मिन्नतें करता था, हाथ जोडता था। बसन्ती एकरस उसकी सब भाव-भंगी देख-सुन रही थी, वह उसपर प्रकट किया चाहती थी कि वह उससे घोर घृणा करती है। उसने अब एक अँगड़ाई लेते-लेते कहा—"अच्छा, अब चल, लम्बा बन, उनके आने का वक्त हो रहा है। मगर याद रख, ऐरे-गैरे को यहाँ लाने का काम नहीं है।"

गोपी ने हाथ जोड़कर कहा—"भगवान् की कसम, मैं शरीफों से ही वास्ता रखता हूँ। वे मुसलमान हैं तो क्या, मगर एक ही रईसजादे है।"

बसन्ती ने होंठो में हँसकर कहा—"चल, चल—रईसजादे बहुत देखे हैं। कुछ गाँठ मे भी है या कोरे रईसजादे हैं?"

गोपी ने पास खिसककर बसन्ती के पैर दबाने का उपक्रम करते-करते कहा—"पहले ही दिन पचास न गिनवा दूँ, तो बात नहीं।"

बसन्ती की आँखें चमकने लगी। उसने कहा—"सच? गंगा की कसम।" गोपी की घृणित आँखें भी चमकी। "पर सुनो, दस से कम न लूगा। मामला साफ अच्छा होता है।"

बसन्ती हँस पडी। उसने कहा—"अच्छा, आज नहीं कल। अब तू रास्ता नाप।"

वह स्वयं ही उठ खड़ी हुई। गोपी ने उठते-उठते कहा—"आज तो कुछ

भी नहीं मिला। कुछ नशे-पानी को तो दिलवाओ। गंगा की कसम, दम निकला जाता है।"

"अरे मुये, तेरा कलेजा जलकर खाक हो जावेगा।"

इसपर गोपी ने हँसकर जरा ऊँची गर्दन करके कहा—"इस मजे को तुम क्या जानो! कहो, तो कल पुड़िया लाऊँ?"

"क्यों रे! क्या सचमुच उसमें शराब से भी ज्यादा मजा है?"

"शराब इसके सामने क्या हस्ती रखती है?"

"तो कल एक पुड़िया लाना।"

"लाओ, फिर एक चिट्टा झुकाओ।"

बसन्ती ने एक रुपया फेंककर उसे चले जाने का इशारा किया, और वह चुपचाप पलँग पर जाकर पड़ रही।

४०

पतन भी जीवन का एक अद्‌भुत स्वरूप है; खासकर यदि नारी का पतन हो। नारी की मर्यादा, उसकी पवित्रता, उसकी प्रतिष्ठा बहुत ऊँची है। अस्मत उसका सर्वोपरि धन है। अस्मत के लिए नारी-जाति ने सहस्रों वार वीरतापूर्वक प्राण दिये हैं। वह अस्मत पतन के मार्ग पर चलकर केवल नारी ही बेच सकती है, और उसके मूल्य की गिरती हुई दर पर जब गौर किया जाय, तो फिर खेद को छोड़कर और कुछ हाथ नहीं लगता।

बसन्ती भले घर की बेटी थी। वह पढ़ी-लिखी भी थी; उतनी जितनी हिन्दू-कन्याएँ साधारणतया पढ़ा करती हैं। वह चंचल थी, तिसपर संस्कारों की गुलाम। स्कूल की अध्यापिकाओं और सहेलियों ने उसे पतन की झाँकी कराई। अभागिनी बूढ़े से ब्याही गई, और अति बाल्यावस्था में विधवा भी हो गई। माँ-बाप मर गये। कहिये, अब इस चपल दुर्बल हृदया हिन्दू बालिका के लिए कौन-सी गति है? उसने भीख माँगी, भूखी रही, कष्ट सहे। विपत्ति के साथ यौवन ने भी उसपर आक्रमण किया। उसने विपत्ति से युद्ध का अच्छा अभ्यास नहीं किया था, कि यौवन ने उसे पछाड़ दिया। वह पतन के रास्ते

पर बढ चली। उसके सामने पेट था, जीवन था। जीवन का आदर्श भी कुछ होता है, वह उसे कौन बताता? वह आदर्श को भूलकर पेट पर डूब गई!

प्रथम बार उसे जिस युवक ने फुसलाया था, उसका उसके घर आना-जाना अब भी जारी था। पर अब गोपी जैसा कीडा उसके सामने आ गया था। उसने पाप की दूसरी पोथी पढना प्रारम्भ किया। अब वह इस दशा को पहुँच चुकी थी, कि वह कभी उसके विपरीत सोच ही नही सकती थी। वह अपनी हालत मे खुश थी। वह यह नही समझती थी, कि वह अपना शरीर बेच रही है। वह समझती थी, कि मैं शिकार फँसाती हूँ। मनुष्य को विजय करती हूँ!

वही पतित गोपी और उसके साथ एक मुसलमान युवक वहाँ बैठे थे। शराब का प्याला और बोतल बीच मे था। युवक ने शराब प्याले मे उडेलकर कहा—"पीजिये!"

बसन्ती पीती थी, पर बहुत कम। आज उसकी मात्रा बढ गई थी। उसने कहा—"जी नही, मैं इतना ज्यादा शौक नही रखती, आप पीजिये।"

पर युवक पूरा घण्ट था। उसने दो-चार प्याले उसे और पिला दिये! बसन्ती अनर्गल बकवास करने लगी। उसे आपे का ज्ञान न था। गुनहगार गोपी मतलब गाँठ रहा था। बसन्ती ने अनायास ही अपना शरीर उस अपवित्र युवक को सौंप दिया।

फिर तो सिलसिला जारी रहा। वह युवक वास्तव मे कोई बड़ा आदमी न था, एक निकृष्ट प्राणी था। झूठी शान बनाकर यहाँ आया था। वह शान शीघ्र ही उड गई। परन्तु बसन्ती पर उसका प्रभाव था। अपने पुराने प्रेमी के प्रति उसके मन मे तिरस्कार उदय हो गया। वह कुछ दिन तक तो अपनी इस पाप-वार्ता को छिपाती रही, पर शीघ्र ही भडा-फोड हो गया। इसी नारकीय गोपी ने गोविन्दसहाय को सब भेद बता दिए। गोविन्दसहाय आता, तो प्रायः दोनों मे चख-चख चला ही करती। धीरे-धीरे ज्यो-ज्यो गोविन्दसहाय रूखा और सख्त होता गया, बसन्ती भी उससे तिनकती गई। उसने गोविन्दसहाय से अलग होने का पक्का इरादा कर लिया।

इधर गोपी ने गोविन्दसहाय को बसन्ती के विरुद्ध भड़काया, उधर वह बसन्ती को भाँति-भाँति के सब्ज बाग दिखाने लगा। शीघ्र ही वह लुका-

छिपाकर और भी निकृष्ट आदमियों को वहाँ लाने लगा। वसन्ती अब गले तक डूब चुकी थी। उसका अन्तरज्ञान सो गया था। उसकी शराब की मात्रा भी बहुत बढ़ गई थी, वह कोकीन भी खाने लगी थी। फलतः उसका वह रूप सूख चला। आँखें गढ़े में धँस गईं, होंठ सिकुड़ गये, शरीर झुक गया और काला हो गया। चेहरे की कान्ति नष्ट हो गई। विनष्ट रूप के लिए उसका शृंगार बढ़ गया था। वह पाउडर लगाती, आँखों में काजल और होंठों पर सुर्खी लगाती। वस्त्रों का भी वह काफी हेर-फेर रखती। अब वह मनुष्य-मात्र को मोहने का इरादा रखती थी। वह चाहती, कि उसकी मोहने की शक्ति जितनी बढ़ सके, अच्छा है।

वह जिस मोहल्ले में रहती थी, वहाँ अब उसकी गुजर न हो सकी। उसे वह घर छोड़कर नीच लोगों के मोहल्ले में हटना पड़ा, जहाँ अबाध रूप से उसका पाप-व्यवसाय चलने लगा। गोपी अब दिन-भर उसीके घर पड़ा गालियाँ और झूठे टुकड़े खाया करता। वह एक प्रकार से उसका गुलाम था। अब वह सोलह आने उसी का एजेण्ट था। वह दिन छिपते ही शिकार की तलाश में निकलता, और जहाँ तक बनता, दो-चार को रोज फँसा लाता। इस प्रकार वसन्ती पाप की वैतरणी में गोते लगाने और बहने लगी। गोविंद-सहाय बहुत कम आने लगा था। इधर कुछ दिन से, जब से एक बार झड़प हो चुकी थी, वह बिल्कुल नहीं आया था। वसन्ती अकेली बैठी थी। उसकी तबियत अच्छी न थी। गोपी उसके पास बैठा तलुए सहला रहा था। गोविन्द-सहाय ने अचानक कमरे में प्रवेश किया। वह सामने कुर्सी खींचकर बैठ गया, और कड़ी दृष्टि से गोपी की ओर देखने लगा। मामला गहरा देख वसन्ती ने गोपी को बाहर भेज दिया, और फिर सिंहिनी की भाँति घूर-घूरकर गोविन्दसहाय को देखने लगी।

४१

गोविन्दसहाय ने क्रोधावेश में उछलकर वसन्ती को जमीन पर दे मारा। उसकी छाती पर सवार हो जोर से उसका गला दबाते हुए बोला—"हराम-

जादी, सच बता, और कौन यहाँ आता है ?"

वसन्ती ने पूरा जोर लगाया, पर छूट न सकी। अन्त में उसने यथा-सम्भव चिल्लाकर कहा—"यहाँ लाख आयेंगे, तुम रोकने वाले कौन हो ? तुम्हारी कोई दर्खल हूँ या ब्याहता ?"

"मैं उसे भी तुम्हारे साथ मार डालूँगा। बता उसका नाम क्या है ?"

"जो न मार डाले, तो तेरी जनती पर धिक्कार है ! मैं नहीं बताऊँगी।"

गोविन्दसहाय ने और भी जोर से गला दबाकर कहा—"बता !"

"नहीं बताऊँगी।"

अवसर पाकर उसने गोविन्दसहाय की कमीज फाड़ डाली, और उसे काट लिया।

अब एक झटके के साथ गोविन्दसहाय उठ खड़ा हुआ। वसन्ती अभी उठे ही उठे कि उसने एक धोती से उसे कसकर बाँध दिया, एक अँगोछा उसके मुँह से ठूँस दिया। इसके बाद वह घर की तलाशी लेने लगा। नकदी और कीमती सामान सबकी उसने एक गठरी बाँधी। इसके बाद वसन्ती के शरीर के गहने-पाते उतारकर वह लम्बा हुआ। वसन्ती छटपटाती रही, पर उसकी एक न चली।

गोविन्दसहाय के जाने के थोड़ी ही देर बाद एक युवक ने घर में प्रवेश किया। यह वही मुसलमान था। उसने झटपट उसके हाथ-पैर खोले, और माजरा पूछा। वसन्ती ने छूटते ही कहा·

"वह खूनी सब लूट ले गया। कुछ भी न छोड़ा।" वह दौड़-दौड़कर घर-भर में घूमने लगी। इसके बाद चिल्लाकर बोली—"हाय ! हाय !! कुछ भी न रहा।"

युवक ने कहा—"मैंने तुमसे कहा था न, पर तुमने न माना। अगर तुम सारा माल-ताल मेरे सुपुर्द करती, तो ऐसी जगह रख देता कि किसीको हाथों-हाथ भी खबर न पड़ती।"

"अब क्या करना चाहिए ? क्या उस मूँजी को यों ही छोड़ दिया जाय ?"

"आखिर माल तो उसीका था ?"

"उसने क्या अहसान में दिया था, शरीर बेचकर पाया था।"

"फिर क्या करना चाहती है?"

"उस पर मुकदमा चलाऊँगी।"

"उससे क्या होगा?"

"पाई-पाई वसूल करूँगी।"

युवक मूर्ख और नीच था। सब बातें तो समझा नहीं। बोला—"अच्छी बात है, सुबह अपने एक वकील दोस्त के पास ले चलूँगा।"

रात-भर दोनों बदनसीब वहीं रहे। सुबह दोनों निकले और वकील साहब की सुध ली। वकील साहब थे नये रंगरूट—न आगे नाथ न पीछे पहगा। न मुवक्किल, न मुहर्रिर। एक टूटी-सी मेज, दो तीन-तीन टाँग की कुर्सियाँ, और तीन-चार मैली-पुरानी किताबें। युवक पीछे, और बसन्ती आगे-आगे थी। इस अद्भुत मुवक्किल को देखते ही वकील साहब की बाँछें खिल गईं। युवक ने जो पीछे से इशारा किया तो उसे समझकर वे फूलकर कुप्पा हो गये। मुवक्किल को सामने कुर्सी पर बैठाकर कहा—"कहिए, क्या काम है?"

"एक मुकदमा है।"

"कैसा मुकदमा है, बताइये?"

"एक बदमाश कल रात मेरे घर में घुसकर, जोर-जुल्म से सब कुछ लूट ले गया।"

"ऐं! लूट ले गया?"

"जी हाँ।"

"तुम चिल्लाईं नहीं?"

"वह छाती पर चढ़ बैठा और मुँह में कपड़ा ठूँस दिया।"

"हूँ···कोई गवाह?"

"गवाह कौन होता?"

"बिना गवाह के मुकदमा कैसे चलेगा?"

"अब यह मैं क्या जानूँ?"

"उसकी और तुम्हारी कुछ आशनाई तो न थी?"

"यह मैं नहीं बताने की।"

"लो, जब तक सब बातें न बताओगी, हम समझेंगे क्या, और लड़ेंगे क्या ?"

"आशनाई थी, तभी तो।"

"कब से आता था ?"

"तीन साल से।"

"झगडा क्यों हुआ ?"

"औरों के आने पर।"

वकील साहब झिझके। फिर कहा—"बुरा न मानना। बात समझने के लिए पूछता हूँ। तुम कौन जात हो ?"

"बनिया।"

"क्या पेशा कमाती हो ?"

"पेशा क्या कमाती हूँ ? अपने घर रहती हूँ।"

"घर में और कौन-कौन हैं ?"

"कोई नहीं, अकेली रहती हूँ।"

"रहनेवाली कहाँ की हो ?"

"यह न बताऊँगी।"

"यहाँ कैसे आई !"

"यही आदमी उडा लाया था।"

"अच्छा, खुलासा हाल कह जाओ, कैसे-कैसे यहाँ आई।"

बसन्ती कुछ देर तक चुप रही। फिर कहने लगी—"मेरा घर कहाँ है, यह न बताऊँगी ! घर में सास और पति थे। वह परचूनी की दुकान करते थे। यह गोविन्दसहाय हमारे गाव में आता-जाता था। माल-टाल भी खरीद ले जाता था। मेरे आदमी को पागल कुत्ते ने काट खाया, और वह कसौली के अस्पताल में जाकर मर गया। तब से हम दोनों सास-बहू रहने लगीं। गोविन्दसहाय का जाना-आना तो लगा ही रहता था। उसने मुझसे आँखें लडाना शुरू किया—पहले तो मैं डरी—पर एक दिन जब यह आया, तब मेरी सास कहीं बाहर गई थी। इसने पानी माँगा—मैंने भीतर बुलाकर पिला दिया। बस, इसने हाथ पकड लिया। मैंने बहुत ना-नू की; इसने एक न सुनी—जबर्दस्ती मेरा धर्म बिगाड़ दिया, और पाँच रुपये का नोट देकर

चला गया। इसके बाद और दो-तीन बार ऐसा हुआ। अन्त में एक दिन हमारे कौल-करार हो गये। मैं रात को छत पर चढ़कर पड़ोस की एक बुढ़िया के घर में उतर गई। उससे हमने कुछ लालच देकर पहले ही बन्दोबस्त कर रखा था। वहाँ मैं तीन दिन भुस की कोठरी में छिपी रही। वह तीन दिन तक गाँव में घूमता रहा, जिससे किसी को उसपर शक न हो। जब दौड़-धूप बन्द हो गई; तब रेल में बैठकर यहाँ आ गई। तीन साल से यहाँ रहती हूँ।"

वकील साहब ने सब सुनकर कहा :

"झगड़े का यही कारण है जो बताया या और कुछ ?"

"कुछ दिन से उसका मन मुझसे उतर गया था। वह एक और लड़की को फुसलाने को कहता था—पर वह हाथ न आती थी, इस पर जब चख-चख चलने लगी, तब मैंने भी अपना रास्ता देखा। बस, बात इतनी-सी ही है।"

वकील साहब बोले :

"अच्छी बात है, मैं मुकदमा लड़ूँगा। गवाह का प्रबन्ध भी कर दूँगा, मगर फीस क्या दोगी ?"

"मेरे पास कुछ नहीं है।"

"वाह, फिर काम कैसे चलेगा ?"

"मैं हर तरह से खिदमत में हाजिर हूँ।"

वकील साहब भेद-भरी आँखों से उसे देखने लगे। बोले—"एक बात मानोगी ?"

"क्या ?"

"मुसलमान हो जाओ।"

"उससे क्या होगा ?"

"हम घर में डाल लेंगे।"

"मेरा धर्म-ईमान ?"

"लो, अभी तुम धर्म-ईमान को साथ ही लिए फिरती हो ?"

"और जो फिर धोखा दिया ?"

"लाहौलविला-कूवत, ऐसा भी कहीं होता है ?"

वसन्ती सोच में पड गई। अन्त में दोनों शैतानों ने उस वदनसीव को मुसलमान होने पर राजी कर लिया, और उसी दिन वह मुसलमान बना ली गई। इसके बाद उसे समझा-बुझाकर मुकदमे के झझट में न पड़ने को भी राजी कर लिया। वे दोनों कुत्ते उससे अपनी लिप्सा तृप्त करने लगे। खर्च था, तंदूर की दो रोटियाँ, और जरा-सा सालन! अलबत्ता शराब की जो लत उसे पड गई थी, वह उससे न छूटी। यहाँ उसके पैर और भी बढ़ गये।

४२

जिस पुरुष ने आकर मालती को सहारा दिया, उसे मालती ने होश-हवास ठीक होने पर गौर से देखा। उसे देखकर वह भयभीत हो गई। उसका ठिगना कद, भरभराया लाल चेहरा, छोटी-छोटी आँखें, खिचडी वाल देखकर वह छिटककर जरा अलग जा खडी हुई।

उस व्यक्ति ने यथा सम्भव अपनी खरखरी आवाज को मधुर बनाकर कहा—"माजरा क्या है बहन जी; क्या मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ?"

मालती पर इस सम्बोधन और भाषण का अच्छा असर हुआ। उसने कुछ रुदन-भरे स्वर मे कहा—"मैं दुष्टो के फन्दे मे फँस गई हूँ। आप कौन हैं, नही जानती—पर मैं यशोदानन्दजी की पुत्री हूँ, जो शहर के प्रतिष्ठित वकील है। आप कृपाकर मुझे घर तक पहुँचा दें, आपका बडा अहसान होगा।"

मालती की बात सुनकर उस व्यक्ति ने कुछ विस्फारित नेत्रों से कहा —"अरे, आप यशोदानन्दजी की लडकी है? तब तो अपनी ही लडकी हुईं। यशोदानन्दजी तो अपने पुराने मित्र है।" इतना कहकर उस व्यक्ति ने कुछ फासले पर खडी एक स्त्री की ओर देखकर कहा—"सुना तुमने देवीजी? ये बिचारी यशोदानन्दजी की लडकी है—वही यशोदानन्द, जिन्हे उस दिन तुमने दावत दी थी, जिस दिन डिप्टी साहेब हमारे यहाँ आये थे।"

इस पर देवीजी ने मुस्कराकर सिर हिला दिया, और तनिक निकट

आकर कहा—"तुम्हारा नाम क्या है वीवी ?"

"मेरा नाम मालती है !" उसने आश्वस्त होकर कहा।

"अरे, तुम मालती हो ? मैंने तुम्हे जरा-सा देखा था; अव इतनी वडी हो गई ?"

मालती अभी तक घवरा रही थी। उसने कहा—"कृपाकर आप मुझे घर तक पहुँचा दें।"

अव उस व्यक्ति ने कुछ चिन्तित स्वर मे कहा—"पर घर मे तो कोई है नही, आज ही सव लोग तुम्हारी खोज मे वनारस गये है। वेचारो ने धरती-आसमान एक कर डाला है। यह किसे खवर थी, कि तुम यही छिपी बैठी हो ?"

मालती ने घवराकर कहा—"अव क्या होगा ?"

"यही तो सोचना है।" यह कहकर वह व्यक्ति गम्भीर सोच मे पड़ गया। फिर उसने देवीजी को सम्वोधन करके कहा—

"मुझे कचहरी का जरूरी काम है—वरना मैं इन्हें वनारस जाकर यशोदाजी के सुपुर्द कर आता। अब और किसे भेजूं ? ऐसा करो, तुम्ही न चली जाओ, मैं रेल मे वैठा दूंगा। मणिकर्णिका पर ही तो यशोदा वावू ठहरेंगे। मैं कचहरी से फारिग होते ही चला आऊंगा।"

देवीजी ने कहा—"यह कैसे हो सकता है ? आखिर कल ही तो भाई की शादी है, फिर वहाँ से लौटकर शादी मे कैसे शरीक हो सकती हूँ ?"

"अव शादी मे शरीक होना नही हो सकेगा। देखती हो, लडकी कितनी घवराई है। इससे ज्यादा वे घवरा रहे होंगे। अव शादी को देखा जाय, या इस काम को ?" इसके वाद उस व्यक्ति ने घड़ी देखकर कहा—"एक गाड़ी तो अभी छूट रही है। सिर्फ पन्द्रह मिनट की देर है। स्टेशन सात-आठ मिनट का रास्ता होगा। लो, अव सोच-विचार न करो, इस वेचारी को यशोदा जी को सौंप आओ। इस गाड़ी मे जाकर तुम कल तक आ भी तो सकती हो !"

देवीजी राजी हो गई।

मालती कुछ भी न सोच सकी कि क्या करे। इन पर विश्वास करे या नहीं, वनारस जाय या नहीं। वह विमूढ की भाँति उनके पीछे-पीछे स्टेशन

तक चली गई। उस व्यक्ति ने दो टिकट खरीदकर जनाने डिब्बे में उन्हें बैठा दिया, उनके खाने-पीने की भी व्यवस्था कर दी।

गाड़ी चलने पर देवीजी की लच्छेदार बातों से मालती कुछ बेफिक्र होकर सो गई। जब वह उठी, बनारस निकट आ गया था। मालती माता-पिता से मिलने को उत्सुक हो रही थी। वह जल्दी-जल्दी गाड़ी से उतरी। देवीजी ने घोड़ा-गाड़ी किराये पर ली, और गाड़ी घड़घड़ाती नगर की ओर चल दी।

देवीजी ने रास्ते में कहा—"अच्छा तो यह है कि हम पहले घर चलें। वहां तुम्हें छोड़कर फिर मैं तुम्हारे पिता को ढूंढूं। न जाने कहां उतरे हैं। तुम कहां-कहां भटकती फिरोगी।"

मालती ने कहा—"हर्ज क्या है ? मैं साथ ही रहूंगी।"

देवीजी ने कहा—"बेटी, तुम तो समझती नहीं, अभी तुम्हें इन बातों का ज्ञान नहीं है। सिर उठाया, और चल दीं। इसीसे तो यह मुसीबत सिर पर ली। अब मेरा कहना मानो। पहले घर चलें, पीछे मैं उन लोगों को ढूंढकर ले आऊंगी। मुझे आज ही लौटना भी है। भाई की शादी में मैं बिना गये नहीं रह सकती।"

मालती कुछ विरोध न कर सकी। पर उसका कलेजा धड़धड़ाने लगा। देवीजी के संकेत पर गाड़ी कुछ देर तक गली में चलकर एक बड़े मकान के आगे रुक गई। मालती ने उतरकर देखा, मकान पर साइनबोर्ड लगा था—'विधवा आश्रम'।

उसने हिचकिचाते हुए देवीजी से पूछा—"क्या आप यहीं रहती हैं ?"

देवीजी ने उपेक्षा से 'हां' कहा—और भीतर चल दीं। निरुपाय मालती भी भीतर चली गई।

भीतर दालान में तीन-चार आदमी एक टूटी-सी मेज को आगे धरे बैठे थे। एक कोई पच्चीस वर्ष का नवयुवक था। वह बात-बात पर मुस्कराकर जवाब देता था। दो-तीन आदमी और खड़े थे। वे पूरे गुण्डे दीख पड़ते थे। इन्हें देखते ही सबकी बांछें खिल गईं। सबने संकेत से पूछा—"इस बार क्या माल लाई हो ?"

देवीजी जरा हँसी, परन्तु चुप रहने का संकेत करके कहा—"ऊपर का

मेरा कमरा खुलवा दो, और तुम शंकर, जरा दौड़ जाओ, मणिकर्णिका घाट पर, कहीं यशोदानन्दजी वकील ठहरे हैं, उन्हें साथ ही ले आओ। कहना, 'मालती मिल गई है, और वह आश्रम में सुरक्षित है।'

शंकर ने एक खास प्रकार का संकेत पाया, और दिया भी। फिर वह 'बहुत अच्छा' कहकर चल पड़ा, देवीजी मालती को लेकर ऊपर चढ़ आईं। कमरे में देखा, खासा सजा हुआ है। वह एक कुर्सी पर बैठकर उद्वेग और घबराहट से तिलमिलाने लगी। देवीजी यह कहकर, कि 'मैं नित्य-कर्म से निपट लूँ'—वहाँ से खिसक गईं। वह एकाएक मालती के प्रश्नों और सन्देह से बचना चाहती थी, और सब वातावरण को ठीक भी किया चाहती थी।

मालती जब कमरे में अकेली रह गई, तो वह अपनी दशा पर विचार करने लगी। एक अज्ञात भय उसके हृदय में उत्पन्न हो गया। वह सोचने लगी—विधवाश्रम में वह क्यों लाई गई है? विधवाश्रम के सम्बन्ध में वह कुछ विशेष नहीं जानती थी। फिर भी वह कुछ सुन अवश्य चुकी थी। और वह जितनी जल्दी सम्भव हो, वहाँ से निकल भागने को व्याकुल होने लगी। वह कमरे से बाहर आई। एक बार सरसरी नजर से उसने पूरे मकान को देखा, फिर उसने तमाम घर को और उसके रहनेवालों को अच्छी तरह देखने का संकल्प कर लिया। पहले उसने दूसरे खण्ड की सैर की। वह एक छोटी-सी छत पार करके सामने के एक बड़े कमरे की तरफ चली गई। इसमें से बातचीत करने और हँसने-बोलने की आवाज आ रही थी। उसने देखा—उसमें तीन औरतें बैठी हैं। एक की उम्र तीस के लगभग होगी। वह दुबली-पतली बदसूरत-सी औरत थी। उसके गाल पिचक रहे थे, और मुँह पर बड़े-बड़े दाग पड़ गये थे। उसकी नाक भी बीच से बैठ गई थी। दूसरी बीस साल की युवती थी, पर बुढ़िया-सी मालूम देती थी। उसके नेत्रों में दुष्टता साफ-साफ झलक रही थी। तीसरी सोलह साल की लड़की थी। वह कोई नीच जाति की लड़की थी, और लावारिस माल की भाँति आ गई थी।

उसने तीनों से बातचीत की। उससे उसने समझा, कि पहली पूर्व की रहने वाली बनिया है। एक मुसलमान उसे उड़ा लाया था। वहाँ से भागकर यहाँ आ फँसी है। ये लोग पति के पास पहुँचाने का वचन देकर लाये थे, पर अब शादी कराने पर तुले हुए हैं। दूसरी बरेली की नाइन थी, जिसे चोरी के

अपराध में दो मास की सजा हो चुकी थी। वहाँ से वह सीधी इस आश्रम में ले आई गई। तीसरी कोई कंजर की लड़की थी, जो भटकती फिर रही थी—यहाँ रख ली गई थी। इन सबको देख, और इनकी बातें सुनकर मालती के मन में जो शंका थी, वह और भी मजबूत हो गई, कि वह बड़े भारी जंजाल में फँस गई है। अब वह छत के दूसरे छोर पर चली आई। वहाँ दो युवतियाँ बारीक पाट की धोती पहने बैठी थीं। उन्होंने हँसकर मालती का स्वागत किया। मालती ने समझ लिया, कि ये पतित स्त्रियाँ यहाँ के वातावरण में पूरी तौर पर रँग गई हैं, और इनको अपने पतित जीवन पर तनिक भी लज्जा नहीं है। वे अनेक बार बहुतों को उल्लू बना चुकी हैं।

मालती अब तेजी से कोठरी में चली आई। देवीजी वहाँ प्रथम ही आ गई थी। उन्होंने रोष-भरे स्वर में कहा—"वहाँ क्या करने गई थी ?"

मालती ने उसके प्रश्न का कुछ भी उत्तर न देकर कहा—"क्या मेरे पिताजी का पता चला ?"

"वे वहाँ नहीं मिले, मेरा आदमी उन्हें ढूँढ़ रहा है।"

"मैं जल्द से जल्द यहाँ से चली जाना चाहती हूँ।"

"यहाँ तुम्हें कुछ कष्ट हुआ क्या ?"

"कष्ट कुछ नहीं, पर मेरी यहाँ एक मिनट भी रहने की इच्छा नहीं है।"

"बिना अधिष्ठाताजी के आये तो तुम नहीं जा सकती।"

"अधिष्ठाता कौन ?"

"वही, जो तुम्हें वहाँ मिले थे, जिन्होंने तुम्हें यहाँ भेजा है।"

"क्या वे यहाँ के अधिष्ठाता हैं ?"

"हाँ।"

"और तुम ?"

"मैं सुपरिण्टेण्डेंट हूँ।"

"तुम ?"

मालती की आँखों से आग निकलने लगी। उसने कहा—"तब तुम लोगों ने धोखा देकर मुझे यहाँ ला पटका है !"

"वहाँ क्या तुम अपने महल में बैठी थी ? इतनी लाल-पीली क्यों होती हो ?"

मालती ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"सच कहो, कि मेरे पिताजी के यहाँ आने की बात सत्य है ?"

"मैं क्या जानूं ? अधिष्ठाताजी जानें, यहाँ तो वे मिले नही।"

"समझ गई, मैं ठगों के फन्दे में फंस गई हूँ। परन्तु खैर इसी में है कि मुझे तुम चली जाने दो।"

देवीजी बिना जवाब दिये, वहाँ से उठ खड़ी हुईं। मालती ने उनका पल्ला पकडकर रोकना चाहा। देवीजी ने उसे धकेलकर बाहर से कुण्डा चढ़ा दिया। मालती अचानक धक्का खाकर गिर पडी। देवीजी वहाँ से सीढी उतर आईं, और एक नौकर को उस कोठरी में ताला बन्द कर देने की आज्ञा दे दी। कोठरी पर कड़ा पहरा बैठा दिया।

४३

वृद्धा गृहिणी अपने घर में उदास बैठी बर्तन मांज रही थी। उसका मुख फीका, आँखें तेजहीन और मन चचल हो रहा था। इतने में नारायणी रोती हुई माता के पास आई। गृहिणी ने कुछ उपेक्षा के स्वर मे कहा—"क्या है री ? क्यों रोती है ?"

नारायणी रोती रही। माता ने फिर पूछा—"कुछ कहेगी भी, क्या हुआ ?"

नारायणी ने रोते-रोते कहा—"कुन्दन की बहू, जीजी को गाली दे रही थी।"

"गाली दे रही थी ? क्यों ? उमने उसका क्या किया है ?"

नारायणी ने रोना बन्द करके कहा—"मैं पानी लेकर आ रही थी, उधर से कुन्दन की बहू और छज्जो आ रही थी—मुझे देखकर वे तरह-तरह की बात कहने लगी।

"क्या कहने लगी ?"

नारायणी चुप रही। पर माता के फिर पूछने पर कहा—"उन्होंने कहा—'जलमुंही भग्गो ने पेट गिराया है। और माँ-बाप उसकी कमाई···' "

नारायणी और कुछ कह रही थी कि वृद्धा ने अधीर होकर हाथ के वासन पटक दिये, और कड़ककर कहा—"बस-बस, बक मत ! चुप रह !" कहकर वृद्धा क्रोध से अधीर होकर इधर-उधर टहलने लगी। नारायणी नीचा सिर किये घर मे चली गई।

इतने ही मे कनछिद की बहू ने आँगन मे प्रवेश करते-करते कहा—"क्यो काकी ! क्या यह सच है ?"

गृहिणी ने वक्र दृष्टि से उसकी ओर देखते-देखते कहा—"क्या री ?"

उसने धीरे से वृद्धा के कान मे झुककर कहा—"यही, जो औरतें भगवती का नाम धरती फिरती है ?..."

कनछिद की बहू पूरी बात कह भी न पाई थी, कि वृद्धा ने दाँत पीसकर कहा—"कुतियाँ, पराये घर की बहू-बेटियो पर क्यों दाँत घिसती फिरती है ? उनके घर में क्या बहू-बेटियाँ नही हैं ?"

पड़ोसिन ने रंग-ढग खराब देखकर दबी जबान से कहा—"यह तो मैं भी कहती हूँ।"—और चम्पत हुई।

अब की जयगोपाल की नानी घर में घुसी। वह गम्भीर भाव से गृहिणी के पास आकर, पैर फैलाकर बैठ गई। गृहिणी ने कुछ न कहा, चुपचाप अपना काम किये गई। नानी ने सहानुभूति से गृहिणी के कान के पास झुककर कहा—"क्यो री, नरो की माँ, बुढ़ापे में तुम्हारी मत भी मारी गई, तुमने भी देखभाल नही की ?"

गृहिणी ने उसकी ओर देखकर कहा—"कैसी देख-भाल ?"

"लड़की की—गाँव-भर के लोग जन्म मे थूक रहे है। मुँह दिखाने को जगह नही रही।"

गृहिणी ने झुंझलाकर कहा—"लोगो को पराये घर की इतनी फिकर क्यों है ? उनके घर में क्या सब मर गए है जो मेरे घर बक-बक करने को आते है ?"

नानी ने बात टालने के ढग मे कहा—"और क्या ? अपनी इज्जत-आबरू नही देखते। कोई एक कहे, तो ऐमी फटकारना, कि याद करे ! सुनके मुझसे तो रहा न गया। कहने को चली आई। अच्छा अब जाती हूँ।" कहकर नानी जान लेकर भागी।

इतने ही में भंगन घर साफ करने आई। आते ही उसने कहा—"आग लगे इन औरतों को, जैसे कोई काम ही नहीं है।"

गृहिणी ने कुछ न सुना। वह चुपचाप दम मारे बासन माँजती रही।

मेहतरानी ने तीर खाली जाता देखकर कहा—"बहूजी! तुमने कुछ सुना?"

"क्या?"

"औरतें भग्गो का नाम ले-लेकर ठौर-ठौर बक रही हैं।"

गृहिणी ने अधीर होकर कहा—"बकती हैं, तो बकने दे। भगवान् करे, उनके घर में भी यह कौतुक हो!"

मेहतरानी ने देखा कि पूरी बात कहने का अवसर ही जा रहा है। वह बोली—"मैंने भी उन्हें खूब सुनाई।"

वृद्धा वहाँ खड़ी न रही, वह तीव्रता से भगवती की कोठरी की ओर लपकी।

"अरी कुलच्छनी! कुलबोरनी! तू पैदा होते ही क्यों न मर गई? मेरी ही कोख में तुझे जन्म लेना था!"

भगवती विपण्ण भाव से अकेली बैठी मन ही मन अपनी अवस्था पर विचार कर रही थी। पहली बार जिस काम को महा दुष्कर्म समझकर अपराधिनी की भाँति काँप उठती थी, अब उसे वह दुष्कर्म नहीं समझती। अनेकों बार उसने माँ-बाप-भाई-भावज की मार, झिड़की, अपमान सहे थे। पर अब उसने विचारा कि आखिर इन लोगों को यह सब कहने का अधिकार ही क्या है? स्त्री-पुरुष ब्याह करके रहते हैं, तब पातक नहीं लगता? हमारा भी ब्याह मानो मन ही मन में हो गया है। और यदि यह पाप ही है, तो उसे मैं ही तो भोगूँगी, ये क्यों चाँव-चाँव करके सिर खाये जाते हैं? इन्हीं सब विचारों में भगवती अनमनी-सी बैठी थी। तभी उसकी माँ ने आकर दुःख और क्रोध से वह वचन कहे।

भगवती बहुत सह चुकी थी, अब न सह सकी। उसने क्रुद्ध सिंहनी की तरह गर्जकर कहा—"क्या है? क्यों मेरे पीछे बक-बक लगाई है? जीते-जीते तेरे बाल सफेद हो गये हैं, मरने का नाम नहीं लेती। मेरी जिन्दगी तुम लोगों को ऐसी भारी पड़ गई है, कि दिन-रात मुझे कोसते रहते हो।

मरो तुम, सब मर जाओ, मेरी जूती मरेगी।" इतना कहकर वह क्रोध से थर-थर कांपने लगी।

जो कभी न हुआ था, उसे देखकर भगवती की माता अवाक् रह गई। उसने क्रोध से अधीर होकर कहा—"तेरी यह जबान ! मेरे सामने ! ऍं ?"

अब भगवती ने अपनी पूरी ऊँचाई मे तनकर खड़ी होकर कहा—"हाँ-हाँ, तेरे ही सामने ! तू है कौन ?"

"तू कभी मेरी कोख में नही आई थी ? कभी तेरे लिए मैंने कुछ किया नही था ? क्यों—तू अपनी माँ को अब नही पहचानती ? डायन !"

"तू मेरी माँ है ? तभी न दिन-रात मुझे कोसा करती है ! मैं हाड-मांस की थोड़े ही हूँ, ईंट-पत्थर की हूँ। तुम लोग खुशी से जीओ, गुलछर्रे उडाओ, और मैं मर जाऊँ ! क्यों ? डायन तू है, या मैं ?"

बूढी ने क्षणेक विषम दृष्टि से पुत्री को ताकते हुए कहा—"हम तेरी ही तरह सुनाम कमाते फिरते है न ?"

"किसने रोक रक्खा है ? कमाओ न तुम भी !"

अब गृहिणी क्रोध को न रोक सकी। उसने तिलमिलाकर एक अधजली लकडी उठा ली, और भगवती को मारने चली। भगवती ने लपककर लकड़ी छीनकर फेंक दी, और एक ऐसा धक्का दिया कि बुढिया धरती पर गिर पडी। उसकी नाक से खून बहने लगा।

गृहिणी धीरे-धीरे कराहती हुई उठ बैठी। क्रोध, अपमान और दुःख से उसे आत्म-विस्मृति हो गई थी। उसने भगवती को देखा, कि वह सिंहिनी की तरह उसे घूर रही है। उसे इस तरह अपनी ओर घूरते देखकर उसने कहा—"चल दूर हो यहाँ से।"

"क्यों ? मैं यही तेरी छाती पर मूँग दलूँगी।"

"जो अब कभी उधर जाती देखी, तो जीभ खीच लूँगी।"

"जाऊँगी—जरूर जाऊँगी। तुमसे बने, तो रोक लेना।"

गृहिणी ने दाँत कटकटाकर कहा—"मुझे खबर नही थी, कि तेरी जबान सौ गज की हो गई है। ठहर, तेरे बाप को भेजती हूँ, साँपिन ! तेरा सारा जहर तब उतरेगा।"

"भेज दे, अभी भेज दे। बाप और भाई, सब मेरी जान के दुश्मन हैं,

कसाई है। जो मेरे सामने आवेगा, खून पी जाऊँगी, पगड़ी उतार लूँगी। जिसको हिम्मत हो, आवे, मेरे सामने आवे।"

वृद्धा किंकर्तव्य-विमूढ होकर भगवती की ओर देखती रह गई। उसकी आँखें पथरा गईं। भगवती ने कड़ककर कहा :

"इस तरह मरे-बैल जैसे दीदे निकाले क्या ताक रही है, क्या मुझे खा जायगी ? मैं बदनाम हुई। नाम, मान, इज्जत, सुख, सब चला गया। गाँव में मुँह दिखाने को जगह नहीं रही है। अब कसर क्या रही है, जो मैं कुछ सोचूँ-समझूँ। पर याद रखो, मेरा तो नाश हुआ ही है, अब तुम्हारा सबका नाश करूँगी। मैं तो डूबती ही हूँ, पर तुम सबको ले डूबूँगी ! अपने पेट की बेटी को तुम लोगों ने जिस तरह कुत्ते की तरह दुरदुराया है, उस तरह मैं भी सबका खून पीऊँगी ! पीऊँगी !! मैं अब वह भगवती नहीं हूँ। मुझे राक्षसी समझना—भला !"

इतना कहते-कहते उसके बाल बिखर गये। मुँह में झाग आ गया। आँखें निकलने लगीं। बावली की तरह भगवती वहाँ से हट गई।

४४

वृद्धा गृहिणी उस क्रोध, अपमान, घृणा और दुःख के वेग को न सहकर वहीं बैठ गई। ऐसा मालूम होता था कि मानो अभी उसके प्राण निकल जायँगे। न तो उसकी आँखों में आँसू ही थे, और न वह रो ही रही थी। उसका दम फूल रहा था, आँखें पथरा रही थीं, और चेहरे पर मुर्दनी छा रही थी। उसे ऐसा मालूम होता था, मानो सारा घर घूम रहा है। वह एक दीवार के सहारे बैठे-बैठे बेहोश हो गई। थोड़ी देर में हरनारायण उधर से निकला। उसने देखा, माता दीवार के सहारे धरती पर पड़ी है। लपककर पास जाकर देखता है—तो वह मूर्च्छित है, शरीर ठंडा हो गया है, और साँस भी बन्द हो रही है। वह घबरा गया। पहले तो उसने दौड़कर एक खाट खींचकर उसपर माता को लिटाया फिर अपनी स्त्री को बुला और वहाँ बैठाकर, पिता के पास दौड़ा। हरनारायण को घबराए हुए आते देख, जय-

गृहिणी ने अब की बार मुंह उठाकर पुत्र के विषण्ण और करुणापूर्ण मुख को देखा। अब की बार उसे कुछ ज्ञान हो आया। उसने कलपते-कलपते कहा

"अरे बेटा, वह मेरी लाड़ली ! मेरी कोख की बेटी···" इससे आगे न बोला गया। वह उसी तरह सिर धुनने लगी, उसकी हँफनी बढ़ गई। उस समय भगवती को छोड़कर वहाँ सब उपस्थित थे। वृद्धा के मुख से ये शब्द निकलते ही सब डर गए। भगवती को वहाँ न देखकर सब घबरा गए। कहीं उस अभागिनी ने कुछ खा-पी तो नहीं लिया ? जयनारायण ने हड़बड़ाकर कहा :

"भगवती ! उसे क्या हुआ ? उसने कुछ किया है क्या ?" इतना कहते-कहते जयनारायण भगवती की कोठरी की ओर दौड़े। नारायणी भी पिता के पीछे-पीछे रोती और 'जीजी-जीजी' चिल्लाती हुई दौड़ी।

भगवती द्वार बन्द किए बैठी थी। जयनारायण ने उसे पुकारा। भगवती क्रोध से भभकी हुई थी। उसने समझा, माता ने इन्हें सब बात कह-कर भेजा है। वह चुपचाप बैठी रही। जयनारायण अब एकदम घबराकर बोले—*"भगवती ! अरी भगवती ! तू क्या कर रही है ?" भगवती तब भी* चुप रही।

जयनारायण के हृदय मे और ही शका समा रही थी। वे किवाड़ तोड़ने की फिक्र मे लगे। नारायणी खड़ी रोती रही।

भगवती ने देखा—अब खैर नहीं है। उसने आकर किवाड़ खोल दिये, और तनकर पिता के सामने खड़ी हो गई। जयनारायण ने उसे भला-चगा देखकर अघाकर सांस ली। पर अभी उसकी घबराहट न गई थी। इसी से भगवती का रग-ढंग उन्होंने न देख, उसी भाव में कहा :

"भगवती, तू किवाड़ बन्द किए क्या कर रही थी ? देख तो, तेरी माँ को क्या हुआ है ?" नारायणी दौड़कर बहन से लिपट गई।

भगवती पिता का भाव न समझी। उसने नारायणी को एक ओर बैठाते हुए कहा—"माँ को क्या हुआ है ? निश्चय जानिये, वह मरनेवाली नहीं हैं !"

जयनारायण पुत्री के मुख से ऐसी कठोर बात सुनकर दंग रह गये।

उन्होंने अब जो ध्यान से उसका मुख देखा, तो उस पर सदा का दीन और विनय-भाव नहीं था। उसकी आंखों में भयानक क्रोध की ज्वाला जल रही थी, और होठ घृणा से सिकुड़ रहे थे।

उन्होंने तनिक रुष्ट होकर कहा—"तुझे उसकी जिन्दगी बड़ी खटकती है। उसने तुझे जन्म तो नहीं दिया था न ?"

"इसीलिए उसे मेरी जान लेने का, और कोसने का अधिकार है ?"

भगवती ने जैसी अविनय और घृणा से ये बातें कहीं, उससे अत्यन्त रुष्ट होकर जयनारायण बोले—"तुझे हो क्या गया है, बेवकूफ, तू क्या ऊटपटांग बक रही है ?"

पिता के क्रोध से तनिक भी विचलित न होकर भगवती ने उसी भाव में कहा—"मैं बिलकुल ठीक ही कहती हूँ। माँ और बाप, सभी मेरी जान के दुश्मन हैं। मैं देखती हूँ, कि सभी नित्य मेरी मृत्यु-कामना करते हैं, मुझे फूटी आँख भी नहीं देख सकते। मैंने भला किया तो, और बुरा किया तो—मेरा भाग्य मेरे साथ है। मेरे बदले कोई और तो नर्क में जायगा नहीं—फिर क्यों लोग कच्चा खा जाने को राक्षस की तरह बैठे हैं ?"

इतना कहकर भगवती ने और भी ज्वालामय नेत्रों से पिता की तरफ देखा।

अब की बार जयनारायण के क्रोध में दुःख की छाया दीख पड़ी। उन्होंने उसी भाव में कहा—"अभागिनी, सन्तान अपने माता-पिता के हृदयों को नहीं समझ सकती।" इतना कहते-कहते उनकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

भगवती पर उसका कुछ प्रभाव नहीं हुआ। वह उसी स्वर में बोली—"पर मैं तो खूब जान गई हूँ ?"

"क्या जान गई है ?"

"कि तुम मुझे मारना चाहते हो।"

"और ?"

"और मेरा सर्वनाश !" इतना कहते-कहते जोश में भगवती का मुँह लाल हो गया।

जयनारायण पुत्री के साहस और अविनीत आचरण से चकित होकर

बोले—"भगवती ! तुझे अपने बाप के सामने यह बातें कहते लज्जा नहीं आती?"

"लज्जा ? लज्जा अब है ही कहाँ ?—और मेरे माँ-बाप ही कहाँ है ? मेरे माँ-बाप होते, तो क्या मेरी यह गति बनती ? मैं कुत्तों, जानवरों, भिखमंगों से भी अधिक दुःख, अपमान और अवहेलना में स्नान कर-करके वर्षों से टुकड़े खा रही हूँ, खून पी-पीकर जी रही हूँ, बदनामी की स्याही से मुँह काला हो रहा है, लोग मेरा नाम लेने में घृणा करते हैं, सुहागन मुँह नहीं देखती, अपने बच्चों पर परछाईं तक नहीं पड़ने देती, भले घर की बेटियों को मेरी हवा भी लग जाती है, तो उन्हें पाप लगता है। माँ-बाप के सामने सन्तान की ऐसी दुर्दशा हो सकती है क्या ? मेरे माँ-बाप कहाँ है ? मैं तो राक्षसों के बीच पड़ गई हूँ।" इतना कहते-कहते भगवती उन्मादिनी की तरह अपने कपड़े नोच-नोचकर फेंकने लगी । उसके मुँह में फिर झाग भर आये, और आँखें आग उगलने लगीं।

जयनारायण दोनों हाथों से आँखें बन्द कर फूट-फूटकर रोने लगे । फिर बोले—"सच है बेटी ! तुम राक्षसों के ही बीच में हो, हम तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं।" कहकर जयनारायण चल दिये।

नारायणी भगवती से लिपटकर रोने लगी। भगवती भी बहन से लिपट-कर रो उठी।

४५

अठारह घण्टे तक भूखी-प्यासी मालती उस कोठरी में बन्द पड़ी रही। इस बीच में वह एक बार अच्छी तरह सो भी न सकी थी। उसने इस असीम विपत्ति से अपना उद्धार करने के लिए पूरी मुस्तैदी से तैयारी कर ली थी। उसकी आत्मा की दुर्बलता भाग गई थी, और उसमें सिंह की भाँति आक्रमण का उदय हो गया था।

जब प्रथम बार अधिष्ठाताजी दरवाजा खोलकर उसके कमरे में घुसे, तब वह अचानक ही सिंहिनी की भाँति उछलकर उनके ऊपर टूट पड़ी।

अधिष्ठाताजी ने इसकी कल्पना भी न की थी। वे भरभराकर गिर पड़े। मालती ने इसपर तनिक भी ध्यान न कर, उन्हें लातों और घूंसों से कुचलना शुरू कर दिया। अधिष्ठाताजी 'हाय-हाय' करने लगे। आश्रम में हलचल मच गई। देवीजी नीचे भागकर चिल्लाने लगी। मालती ने अवसर पाकर भीतर का कुण्डा बन्द कर दिया, और बिस्तर पर बिछी चादर से अधिष्ठाताजी को बुरी तरह लपेटकर बाँध दिया। वे इतने विवश हो गए, कि न तो उठ सकते थे, न बचाव कर सकते थे। मालती लातों से उनका भुस कर रही थी। कोठरी के बाहर आश्रम के सब स्त्री-पुरुष जमा थे। वे किवाड तोड़ने की चेष्टा कर रहे थे। मालती ने ललकारकर कहा—"दुष्ट, कुत्ते! तुझे मैं अभी जान से मारे बिना न छोड़ूँगी। तू इस भाँति भले घर की बहू-बेटियो को बहकाकर इस अड्डे में लाकर बेचने का धन्धा करता है। अभागिनी अबलाओं की असहायावस्था से अनुचित लाभ उठाता है। तू गाय की सूरत में खूनी भेड़िया है!"

अधिष्ठाताजी गिडगिड़ा रहे थे, और मिन्नतें कर रहे थे। बाहर से दरवाजा तोड़ने की चेष्टा हो रही थी। मालती ने चारपाई उलटकर धरती में पड़े अधिष्ठाता पर डाल दिया, उसपर मेज उलट दी, फिर उसने पीछे की खिड़की खोलकर चिल्लाना शुरू किया। उसकी चिल्लाहट सुनकर पास-पड़ोस के मनुष्य घरो में से झाँकने लगे। गली में भी लोग इकट्ठे हो गये। पुलिस भी आ गई। पुलिस-इन्स्पेक्टर के आने पर मालती ने दरवाजा खोल दिया। उसके वस्त्र चिथड़े-चिथड़े हो रहे थे, और वह पसीने से तर-बतर हो रही थी। उसकी आँखों से अब भी आग निकल रही थी। और वह अपनी पूरी ऊँचाई में तनी खड़ी थी।

पुलिस-इन्स्पेक्टर के कहने से वह एक कुर्सी पर बैठ गई। इन्स्पेक्टर ने कहा—"आप थोड़ा पानी पीजिए और ठण्डी होकर बयान दीजिए।"

मालती ने कहा—"इस पापपुरी में मैं जल नहीं पीने की, आप बयान लिखिए।"

इसके बाद मालती ने संक्षेप में अपनी दुर्दशा का हाल बयान कर दिया। वह किस भाँति फुसलाई गई, यह भी कह दिया और किस तरह अठारह घण्टे तक जबर्दस्ती बन्द की गई, वह भी बता दिया।

बयान लेने पर इन्स्पेक्टर ने अधिष्ठाताजी को चारपाई के नीचे से निकलवाया। लातों के मारे उनका भुस हो गया था, और उनके होश-हवास गुम हो गये थे। इन्स्पेक्टर ने उनका भी बयान लिया। आश्रम की तलाशी भी ली। दो स्त्रियाँ ऊपर की मंजिल में और कैद की हुई मिली। कुछ जेवर भी बरामद हुए। इन्स्पेक्टर साहब सब सामान ले, अधिष्ठाता और देवीजी की बरात सजा, मालती और अन्य सभी स्त्रियों को साथ ले, थाने की ओर रवाना हुए।

४६

हमें विश्वास नहीं होता, कि हमारे पाठकों में एक भी व्यक्ति ऐसा हृदय-हीन होगा, जो परम सन्तप्त जयनारायण के प्रति अपनी सहानुभूति न रखता हो। पर हम यह निवेदन करने को विवश हैं, कि अभी उस अभागे की दुरवस्था का अन्त नहीं हुआ है। आज एक ऐसा समाचार उसे मिला है, जो अत्यन्त कष्टकर है। चार दिन से बिरादरी की पंचायत हो रही थी। जयनारायण को जाति-च्युत किया जाय या नहीं, यही विषय उपस्थित था। अनेक वादविवाद के पश्चात् यही निश्चय हुआ, कि या तो जयनारायण लड़की को घर से निकाल दे और गंगा स्नान करके पाँचसौ ब्राह्मणों को भोजन दे, अथवा जाति-बहिष्कृत समझा जावे। शिवराम पाँड़े और हरभजन चौधरी यही समाचार लेकर उनके पास आये हैं। जयनारायण पहले तो चुपचाप सिर लटकाये बैठे रहे, फिर एकाएक कुछ गर्म होकर बोले—"आप लोग पंचों से कह दें, कि मुझे जाति-बिरादरी से कोई वास्ता नहीं है, अपनी सन्तान को कौन घर से निकाल देता है?"

चौधरी ने समझाते हुए कहा—"ये बेसमझी की बातें मत करो। तुम बाल-बच्चेदार आदमी हो, बिरादरी बिना कैसे रह सकते हो?"

जयनारायण ने झुंझलाकर कहा—"जब बिरादरी मेरे बाल-बच्चों का गला घोटने को तैयार है, तो ऐसी बिरादरी पर मैं थूकता हूँ।"

शिवराम पाँड़े बोले—"इन छोटे बच्चों का क्या करोगे? एक के लिए

सबको क्यों आफत में डालते हो? और फिर बिरादरी नागहानी का दण्ड दे रही हो, यह बात भी नहीं है। लड़की ने काम कुछ कम बुरा किया है?"

जयनारायण ने लाल-लाल आँखों से उनकी ओर ताककर कहा—"मेरी लड़की ने जैसा किया, उसका फल भोग लिया है। जिसका पर्दा बना रहे, वही अच्छा। अभी मैं खोज करने निकलूँ तो जानें किस-किस की बहन-भतीजी ऐसी निकलें, जिनके सामने मेरी लड़की हजार दर्जे अच्छी है।"

शिवराम पाँड़े एकदम सर्द पड़ गये। उनकी बोलती बन्द हो गई। पर चौधरी ने बिरादरी के अपमान का प्रभाव बताकर कहा—"खूब अच्छी तरह सोच लो। समय पर जो काम हो जाता है, पीछे किसी तरह नहीं होता।"

अब तो बाल-बच्चों की दुर्दशा का खयाल करके जयनारायण रोने लगे। अन्त में उन्हें पराजित होना पड़ा। भगवती को घर से बाहर कर देने का निश्चय रहा। अब सलाह यह होने लगी कि उसे भेजें कहाँ?

जयनारायण ने कहा—"अच्छी बात है, मैं उसका पुनर्विवाह किये देता हूँ।"

चौधरी साहब बोले—"पुनर्विवाह कैसे करेंगे? यह भी तो अधर्म है।"

"जो अधर्म साबित करें, उन्हें बुलाइये, मैं साबित करूँगा। पण्डितों की व्यवस्था भी ली है।"

चौधरीजी बोले—"वह व्यर्थ है। जो चाल बिरादरी में नहीं है, उसे करना ठीक नहीं है। बाकी आपकी समझ है। नीति की यह शिक्षा है, कि मनुष्य को सोच-समझकर काम करना चाहिए, नहीं तो पीछे पछताना पड़ता है। आगे आपकी समझ है।" इतना कह, चौधरीजी चलने को लकड़ी उठाने लगे।

जयनारायण ने उन्हें रोककर कहा—"जरा ठहरिये।" इतना कह वे सोचने लगे। अन्त में निश्चय हुआ, कि भगवती को कहीं तीर्थ-स्थान में रहने के लिए भेज दिया जाय।

४७

सन्ध्या के छः बजकर पैंतीस मिनट पर गाड़ी बनारस स्टेशन पर पहुँची है। गाड़ी के खड़ी होते ही चढ़ने-उतरनेवाले यात्रियों में धूम-धड़क्का मच गया है। हम अपने पाठकों का ध्यान दो यात्रियों की ओर आकर्षित करते हैं। इनमें एक स्त्री है, दूसरा पुरुष। दोनों उदास हैं। एक-दूसरे से कोई बात नहीं करता है। पाठक इन्हें पहचानते हैं, ये दोनों हरनारायण और भगवती हैं। दोनों सगे भाई-बहिन हैं। दोनों ने चिरकाल तक एक माता का दूध पिया है—एकसाथ खेले हैं। ये दोनों यद्यपि इस समय अपने बालपने की मधुर स्मृति को भूल गये हैं पर उनकी माता को उस जमाने की सब बातें याद हैं। वे कहा करती थीं, "हरनारायण ने कभी मेरी भग्गो को नहीं मारा। भग्गो गुड़िया खेलती, तो हरनारायण उसे नई-नई गुड़िया बना दिया करता था। घर में कोई खाने-पीने की वस्तु आती, तो भगवती उसमें से 'माँ, भैया के लिए रख दे,' कहकर आधी अवश्य हरनारायण के लिए रख देती। कहाँ तक कहें—जो भाई-बहन हैं, जिनके बीस वर्ष सुख-दुःख में एक साथ बीत चुके हैं, उनकी कोई क्या बात कहे? पर आज वह बात नहीं है। आज दोनों एक-दूसरे से मुँह छिपा रहे हैं। अब भगवती को 'भैया' कहकर भाई के मुख की ओर देखने का साहस नहीं है। कारण, उसकी आँखों में अब दूध की-सी स्वच्छता नहीं रही। हरनारायण 'भग्गो' कहता हुआ जब कभी बहन की ओर देखता है, तब उसकी आँखों से हँसी का नूर नहीं टपकता है; उनमें से भयानक हलाहल विष, तीव्र अपमान, असह्य वेदना की वर्षा होती है। इसका कारण पाठक समझते हैं। भगवती—गरीब अनाथा भगवती—दीन-दुनिया, इहलोक-परलोक सबसे पतित हो गई है। इस स्वार्थ-भरी दुनिया में गरीब-निवाज कौन है? अनाथों का नाथ कौन है? दीनदयाल कौन है? पतितपावन कौन है? मनुष्य मनुष्य नहीं रहा। मनुष्यों में से ये गुण कब के उठ चुके हैं। एक है भगवान—सो अभागिनी को उसी का आसरा है। चाहे कोई भाई हो, या माँ—बन्धु हो, या बाप—उसे कहीं कुछ न मिलेगा।

भगवती ने आशा-भरोसा सब त्याग दिया है।

पाठक, ऐसी ही दशा में अबला भगवती है। जाति, देश और समाज यदि सब मिलकर चाहते, तो सम्भव था, वह सुखी हो सकती थी। पर हिन्दू-समाज पत्थर से भी कठोर, बधिक से भी निर्दय, और पशु से भी अधिक गया-गुजरा है। ये हत्यारे पुरुष प्रथम उन कोमल आत्माओं के हृदय को मसोस डालते हैं, और फिर उन्हें सड़ने को मोरी और नाबदानों में फेंक देते है। उनका कहना है, कि इस रोग की कोई दवा नहीं है—इस जख्म का कोई मरहम नहीं है, इस व्याधि का कोई प्रतिकार नही है। धर्मशास्त्र की आवाज की यहाँ अवहेलना होती है, न्याय का गला घोटा जाता है। और अन्त की बात दया? ये पत्थरों से दया की भीख माँगनेवाले मनुष्य-पशु अपनी बहन-बेटियों पर दया भी नहीं करते! ऐसा है हिन्दू-धर्म का तत्व-दर्शन!

अस्तु, भगवती काशी आई है। क्यों आई है? पाठक जानते हैं। पुण्य-सलिला गंगा में स्नान करने, अथवा बाबा विश्वनाथ का दर्शन करने—या धर्म-कृत्य का पुण्य लूटने नहीं, जाति ने पतित करके नारी को त्याग दिया है, पिता-माता ने पुत्री को त्याग दिया है, भाई बहिन को त्यागने आया है। रोओ, सहृदय पाठक, रोओ!—न रो सको, तो अच्छा है, तुम्हारे हृदय की प्रशंसा होगी। तुम्हारे कोई विधवा बहन-बेटी है? यदि है, तो रोओ! तुम्हारे रोने से सम्भव है, अबला के हृदय की ज्वाला का कुछ शमन हो जाय!

तरण-तारणी काशी की सान्ध्य शोभा का कहाँ तक वर्णन किया जाय? समस्त मन्दिर-देवालय विविध दीप-मालाओं से आलोकित हो रहे हैं, और उनके प्रतिबिम्ब की माला को हृदय पर धारण करके भगवती गंगा अपनी तरंगों में मस्त चली जा रही है, मन्दिरों के उच्च स्वर्ण-कलश, अट्टालिकाओं के धवल शिखर, और वृक्षों की घनश्याम छटा—ये सब काँपते-काँपते प्रतिबिम्ब-स्वरूप मानो गंगा की स्वच्छता में अपना मुख देख रहे हैं। मन्दिर में आरती के वाद्यों की ध्वनि पूरित है। भागीरथी के तीर पर भक्त जन स्तवन कर रहे है। इसी काशी की सड़कों पर एक गाड़ी में अभागिनी भगवती अपने अवशिष्ट जीवन को इस पुण्य-भूमि में शान्तिपूर्वक व्यतीत

करने जा रही है।

धीरे-धीरे यह गाड़ी वेश्याओं के मुहल्लों की तरफ मुड़ी और आगे चलकर एक मकान के आगे ठहर गई। कोचवान ने पुकारकर कहा—"बाबू ! आपने जिस मकान का पता दिया था, वही यह मकान है।"

हरनारायण गाडी से नीचे उतर आये। उन्होने अकचकाकर देखा—यह मकान भी वेश्या का है। उन्होने गाड़ीवान से पूछा—"दाल की मण्डी यही है न ?"

"जी हाँ, और आपका बताया मकान भी यही है।"

हरनारायण कुछ पसोपेश मे पड़ गये पर उन्हे अधिक देर इस अवस्था में न रहना पड़ा। मकान के भीतर से एक आदमी ने आकर पूछा—"आप किसे तलाश कर रहे हैं ?"

हरनारायण ने झिझकते हुए आगे बढ़कर कहा—"इस मकान में जो रहती है, उनका क्या नाम है ? और वे कहाँ की रहनेवाली है ?"

वह आदमी उत्तर नही देने पाया था, कि इतने में छमछम करती हुई वेश्या सामने आ खड़ी हुई। उसका विचार आगन्तुक से कुछ प्रश्न करने का था, और आगन्तुक भी उसे देख, उसकी तरफ आकृष्ट हुआ। पर जब दोनों ने दोनों को पहचाना, तो क्षणेक के लिए दोनों किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गए। वेश्या ने देखा—आगन्तुक कोई नही, उसके गाँव के पटवारी का लड़का हरनारायण है, और आगन्तुक ने देखा—वेश्या का निकृष्ट, निर्लज्ज और कलुषित बाना पहने हुए उनके गाँव के चौधरी की इकलौती विधवा पुत्री है, जिसके सम्बन्ध में आज पाँच वर्ष से प्रसिद्ध है, कि वह काशी-वास करके अपना परलोक सुधार रही है। उनके हृदय में विद्युत् की तरह यह भाव दौड़ गया, कि इसी प्रकार का काशी-वास कराने में बहन को लेकर आया हूँ ? उनका सारा कर्तव्य-ज्ञान खो गया। वे टकटकी लगाये, वेश्या के मुख की ओर देखते रह गये।

पहले वेश्या ने मुख खोला। उसने कहा—"भीतर चले आओ, यहाँ खड़े रहना ठीक नही है।"

मन्त्र-मुग्ध की तरह हरनारायण भीतर चले आये। उनके पीछे भगवती भी।

भीतर सबके बैठ जाने पर हरनारायण ने कहा—"चमेली, तेरी यह हालत ?"

चमेली ने कुछ लरजती हुई जबान से कहा—"मेरी यह हालत किसने बनाई है ?"

"किसने बनाई है ?"

"तुम्हारी जाति ने !"

कुछ ठहरकर हरनारायण ने कहा—"तुमने अपनी जाति भी छोड़ दी है ?"

"उस बेरहम, नाचीज, कमीनी जाति को छोड़े बिना कोई कैसे जिन्दा रह सकता है ?"

हरनारायण ने देखा—पद-पद पर चमेली की उत्तेजना बढ़ती जा रही है, और स्त्री-सुलभ लज्जा, नम्रता और शीलता का मानो उसमें लेश भी नहीं है।

हरनारायण ने ठण्डी साँस लेकर दु:खभरे शब्दों में कहा—"तुम्हारे सम्बन्ध में सारे गाँव में यही विश्वास है, कि तुम धर्मपूर्वक काशी-वास कर रही हो, और हर महीने तुम्हारे पिता तुम्हारे लिए खर्च भी भेजते हैं। पर यह तो मुझे विश्वास भी नहीं था, कि तुम इस प्रकार पापों का टोकरा बटोर रही हो, और यों इस धर्म-क्षेत्र में दोनों लोक नष्ट कर रही हो ! अभागिनी, तुमने अपने कुल-शील का कुछ भी ध्यान न किया ?"

हरनारायण की इस बात से मानो उसके स्त्री हृदय पर प्रभाव पड़ा। हरनारायण ने देखा कि भ्रष्टा वेश्या की आँखों में आँसू भर आये। उसने कहना शुरू किया, "मुझे साढ़े चार वर्ष यहाँ आये हो गये हैं। मैं न जन्म से ऐसी थी, न होने की आशा थी। तुम्हें तो मालूम ही है, मेरे बेईमान बाप ने उस मृगी के मरीज से पाच हजार रुपये लेकर मेरा ब्याह कर दिया, और ब्याह के बाद ही छ: महीने में मैं विधवा हो गई। उसके बाद घर में और ससुराल में जिस दु:ख से तीन वर्ष काटे, उसे मैं ही जानती हूँ। अन्त में उन पाजी कमीनों से यह भी न देखा गया, और जैसी-तैसी तुहमत लगाकर मुझे बदनाम कर दिया। बिरादरीवालों की बात में आकर बाप ने मुझे यहाँ फेंक दिया, और पाँच रुपये महीना भेजना शुरू किया। उन्होंने समझा था, यही

उनका मेरे प्रति यथेष्ट कर्त्तव्य है। पर तुम्ही कहो, इतने बड़े नगर में, इतने थोड़े खर्च में, बिना सहायक के अकेली रह सकती थी? तुम क्या समझते हो कि धर्म गली-गली भटकता फिर रहा है, जो हर किसी के गले मढ़ता जायगा? इन पापी, अधर्मियो को अपनी बेटी को इस तरह मिट्टी में मिलाते कुछ भी शरम न आई? उनका कलेजा तनिक भी न दहला? जब मेरा बाप मुझे यहाँ छोड़ने आया, तब मेरा विलाप सुनकर उसका कलेजा पिघला? मैंने उसके पैरो में गिरकर कहा—'मुझे यहाँ अकेले इतने बड़े शहर मे क्यों छोड़े जाते हैं?' तब जानते हो, उसने क्या जवाब दिया? उसने कहा था—'जब तैंने धर्म नष्ट किया, तब इन बातों को नही सोचा था?' उस दोजखी कुत्ते ने अपनी मासूम बेटी को मुर्दे के हाथ बेच डाला—उसका कोई धर्म नहीं बिगड़ा। उन पापी पचो ने मुझ निर्दोष को यहाँ पाप बटोरने भिजवा दिया, उनका धर्म नही बिगड़ा। अब जाकर उन धर्म-धुरियों से कह देना, तुम्हारी बेटी मुसलमान हो गई है, और पाप कमाती है।"

बात कहते-कहते चमेली अत्यन्त उत्तेजित हो गई थी। हरनारायण उसके इस अनुचित गर्म भाषण को न सुन सके। उन्होंने कहा—"चमेली, समझ गया। तुम्हे बड़ा दुख दिया गया है, और तुमपर जुल्म भी हुआ है, पर तुम्हे इतनी जबान-दराजी नही करनी चाहिए। तुम्हे जहाँ अपने पाप पर लज्जित होना चाहिये था, वहाँ ऐसी गन्दी बातें कहती हो···"

चमेली ने बीच मे ही बात काटकर कहा—"पाप? मैं कौन-सा पाप कर रही हूँ? और अगर यह पाप ही है, तो तुमपर और तुम्हारी जाति पर इसका कहर पड़ेगा। मैं जैसी नर्क की आग, छाती में रखकर पाप करती हूँ, उसे तुम पाखण्डी मर्द क्या समझ सकते हो? भगवान् तुम्हे कभी लड़की का जन्म दे, और मेरी जैसी तुम्हारी दुर्गति हो तब तुम असलियत समझ सकोगे।"

चमेली आगे कह ही रही थी, कि भगवती से न रहा गया। उसने कहा—"भाई! चलो, यहाँ से जल्दी चलो, नही मेरा प्राण निकल जायगा।"

चमेली ने उसकी तरफ ताने की नजर से देखकर कहा—"कहाँ चली बहन? तुम जिस लिए आई हो मै समझ गई। वही करने की तैयारी करो। ये तुम्हारे धर्मात्मा भाई तुम्हे पूरी मदद देने आए ही हैं। कलेजा पत्थर का

करो। उसमें आग सुलगाओ, पर धुआं अन्दर ही अन्दर घुटने दो। छल-कपट से हँसना, और झूठी बात बनाना सीखो। दगा-फरेब-बेईमानी-सख्ती —इन सबसे काम लो। आओ, और मेरे घर में चैन करो। कुछ तुम्हारा और मेरा ही यह नया मार्ग नहीं है, इस मोहल्ले में कई मुझ-सी, तुझ-सी हैं। कहोगी, तो उनसे मुलाकात करा दूंगी। कभी उनकी सुनकर रोना, कभी अपनी सुनाकर रुलाना। पर वक्त-बे-वक्त हँसने को सदा तैयार रहना।"

हरनारायण का दम मानो घुटने लगा था। उनके मुँह से एक शब्द न निकला। वे उठ खड़े हुए और बोले—"भगवती ! चल, जल्दी चल !"

चमेली के हृदय में न जाने क्या-क्या भाव उत्पन्न हो रहे थे। जो स्त्री अब तक ऐसी तेजी से बोल रही थी, अब वह एकदम रो पड़ी। वह कुछ कहना चाहती थी, पर कह न सकी। दोनों आगन्तुक जल्दी से बाहर निकल आये।

४८

और कुछ उपाय न देख, दोनों ने उस रात धर्मशाला में डेरा किया। प्रभात होते ही हरनारायण ने कहा—"भगवती, चल गंगा-स्नान कर आवें।"

भगवती चुपचाप बैठी रही। हरनारायण ने पुनः वही प्रस्ताव किया। भगवती ने धीरे से कहा—"तुम गंगा में नहाकर पवित्र हो आओ। मुझे गंगा-स्नान नहीं करना है। मुझे तुम्हारी गंगा-बंगा नहीं चाहिए।"

हरनारायण चुपचाप मुँह लटकाकर बैठ गया। तब कुछ ठहरकर उसने कहा—"तो तेरा क्या विचार है ?"

"कुछ नहीं।"

"तू यहाँ रहना चाहती है या नहीं ?"

"तुम क्या मुझसे पूछकर ही यहाँ रखने लाए हो ?"

"खैर, अब क्या विचार है ?"

"मेरी जो इच्छा होगी, वह करूँगी, तुम मनमानी करो। मुझे अब भी भगवान् का आसरा है। आखिर इतने पापी हैं, इन्हें भी तो किसी का आसरा है ही।"

हरनारायण विचार में पड गए। वे नेत्र मूँदकर अपनी स्थिति पर विचार करने लगे। धीरे-धीरे वे अपनी बहन की स्थिति और भविष्य को देखने लगे। वे ज्यों-ज्यो विचारमग्न होते गये, त्यों-त्यो उनका गम्भीर चेहरा विषाद-मग्न होता गया। उन्हे एक-एक करके अपने बचपन के दिन याद आने लगे। उनके नेत्रो में एक के बाद एक बाल्यकाल के दृश्य आ-आकर नाचने लगे। वह आम के बाग मे बौरी तोड़ना, वह भाई-बहन की नैसर्गिक बाललीला, मानो प्रत्यक्ष दीखने लगी। वह बालू का घर, गुड़ियों का खेल, नाराजी, मचलना, माता का प्यार, छोटी-छोटी खाने की वस्तुओं का बाँटना, झगड़ना आदि बीस वर्ष के पुराने दिन प्रत्यक्ष दीखने लगे। उन्होने नेत्र खोलकर देखा—वहो उनकी दुलारी बहन नीची गर्दन किए, अपने उस बे ओर-छोर के अन्धकारमय भविष्य को विचार रही है—जो उसके निर्बल और असहाय तन-मन पर आ पडा है। उनके मुख से एक दीर्घ नि:श्वास निकल गया, और साथ ही आँसुओ की अविरल धारा बह निकली। अन्त मे गद्गद कण्ठ से उन्होने कहा—"भगवती! अब अधिक सोच-विचार की जरूरत नही है। चलो घर चलें, अभी चलो। जो हुआ, सो हुआ।"

भगवती ने उनकी ओर बिना देखे ही कहा—"किसके घर की बात कहते हो? जिसका घर हो, वह जावे, मेरा घर कहाँ, मैं तो अब दूसरा घर ढूढूँगी। कही मिला, तो ठीक, वरना एक बार भगवान् के घर को टटोलूँगी, कि वहाँ जगह मिलती है, या नही।"

हरनारायण ने रोते-रोते कहा—"हम लोग गाँव मे न जावेंगे। चलो, शहर मे चलकर रहेंगे। मुझे जाति-बिरादरी की परवाह नही है। तुमने बड़ा दुःख पाया है बहन! चलो तुम्हारी भाभी से कह दूँगा, कि वह तुम्ही को मालिक बना दे। अब ज्यादा कुछ कहो-सुनो मत।"

भगवती ने भाई का गद्गद कण्ठ सुन एक बार उसकी ओर देखा। फिर वह भी रो उठी। बडी देर बाद उसने कहा—"मैं न जाऊँगी, तुम लौट जाओ।"

"तू न जायगी, तो मैं यहीं मर जाऊँगा, अब मुझमें अधिक दम नहीं है।" इतना कहकर वे मुँह ढाँपकर रोने लगे।

भगवती चुप बैठी रही।

हरनारायण ने कहा—"चुप क्यों है? यहाँ अधिक ठहरना ठीक नहीं।"

भगवती ने कहा—"भाई, अब जब रास्ता साफ हो गया है, तो लज्जा किस बात की है? अब मेरा वहाँ न जाना ही अच्छा है। इसी में तुम लोगों का कल्याण है। गृहस्थ आदमी बिना बिरादरी के नहीं जी सकता। पागलपन मत करो। मेरा जो कुछ होना था, सो हो गया। अपना रास्ता मैंने सोच लिया है—मैं यहाँ से न जाऊँगी।"

"तब तू यहाँ करेगी क्या?"

भगवती ने फीकी हँसी हँसकर कहा—"विश्वास रखो, अब पाप न करूँगी···।"

उसकी बात काटकर हरनारायण ने कहा—"नहीं, मैं तुझे नहीं छोड़ूँगा।"

"पर मैं तुम्हारे घर नहीं रह सकती, उसमें मेरा-तुम्हारा दोनों का भला नहीं है। तुम जिस जिम्मेदारी पर यहाँ आये हो, उसे सोचो।"

कुछ विचारकर हरनारायण ने कहा—"अच्छा, एक बात है। क्या गोविन्दसहाय ब्याह करने को राजी है?"

भगवती ने दुखी होकर कहा—"इस बात को अब न छेड़ो। वह समय बीत गया। अब जो मैं चाहती हूँ वही होने दो। मेरा अन्त ही ठीक है!"

"अन्त? क्या तुम आत्मघात करोगी?"

"तो क्या और कुछ भी हो सकता है? तुम घर जाओ, मैं अपना मार्ग निकाल लूँगी। पर भैया! मेरे अपराध क्षमा करना और नरो को सुखी रखना।" इतना कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगी।

हरनारायण ने उसका सिर गोद में लेकर कहा—"मरें तुम्हारे दुश्मन! बहन, तू न जायगी, तो मैं भी नहीं जाऊँगा। तू मरेगी, तो मैं भी यहीं मरूँगा। मेरे बाद माता, पिता, नरो और तेरी भाभी का नम्बर है। सभी मरेंगे।"

भगवती ने धैर्य के स्वर में कहा—"नहीं। तुम सौ-सौ वर्ष जीओ। घर लौट जाओ। पर किसी से मेरी बात न कहना।"

"नहीं, तुम्हे बिना लिये न जाऊँगा।"

"पर मैं घर न जाऊँगी—किसी तरह न जाऊँगी। इसपर कुछ कहना व्यर्थ है।"

"तो ऐसा करो, तुम गोविन्दसहाय के घर चली जाओ।"

भगवती ने झुंझलाकर कहा—"जो बात एक बार हो चुकी, उसे क्यों बार-बार कहते हो?"

"तब निश्चय ही मुझे यहीं रहना है। भगवान् की मरजी।"

भगवती और हरनारायण में बड़ा विवाद चला, पर निश्चय कुछ नहीं हुआ। भगवती न भाई को विदा कर सकी, न स्वयं जाने को राजी हुई।

तीन दिन बीत गए। न गंगा-स्नान हुआ, न भोजन, न बातचीत। दोनों चुपचाप पड़े हैं। अन्त में भगवती ने भाई का हाथ प्यार से पकड़कर कहा—"भैया! किरपू और सुखिया कैसे रहती होंगी? तुम घर जाओ, मुझ दुखिया को मरने दो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।" इतना कहकर भगवती ने अत्यन्त करुण दृष्टि से भाई को देखा।

हरनारायण कुछ न बोलकर चुपचाप पड़े रहे। कुछ ठहरकर भगवती ने कहा—"अच्छा, एक शर्त पर चलती हूँ। अपने घर तो किसी तरह न जाऊँगी, पर वहाँ चली जाती हूँ। अगर उन्होंने ब्याह करना स्वीकार कर लिया, तो खैर, वरना फिर यहीं आकर मरूँगी।"

हरनारायण ने रोते-रोते कहा—"अच्छा यही सही।" दोनों तैयार होने लगे। भाई ने कहा—"बहन! आओ, एक बार गंगा तो नहा लें!" भगवती ने विरोध न किया। दोनों स्नान कर स्टेशन चल दिए। देव-दर्शन और भोजन का किसीको स्मरण न रहा, और न इच्छा ही।

रेलगाड़ी जा रही थी। पल-पल में भगवती का स्टेशन निकट आ रहा था। भगवती मन ही मन सूरज छिपने की प्रार्थना कर रही थी। सूरज छिप रहा था और अन्धकार फैल रहा था—ऐसे ही समय में भगवती भाई के साथ गाड़ी से उतर पड़ी।

अब तक उसके मन में साहस था, विचार था, भय था और चिन्ता थी। पर स्टेशन पर पैर रखते ही उसका शरीर सनसनाने लगा। सिर घूमने लगा। यही उसका गांव है। इसी गांव में उसका घर-जन्मस्थान-क्रीड़ाक्षेत्र है। अभी उस दिन यह गांव से बलात् हटाई गई थी। तब प्रस्थान के समय गाड़ी से मुँह निकालकर, आंसू भरकर उसने एक बार अपने गाँव को, उसके बीच में चमकते हुए अपने घर की सफेद अटारी को देखा था—हसरत-भरी नजरों से। उसकी धारणा थी, कि अब क्या इस जन्म में ये भाई-बन्धु, घर-गाँव मिलेंगे? कभी न मिलेंगे। वह सारे मार्ग रोती गई थी, पर विधि की विडम्बना देखिये—घूम-फिरकर वह फिर उसी गाँव में आ गई; फिर उसी गाँव का छोटा-सा स्टेशन उसे प्राप्त हुआ। पर वह काँपती क्यों है? यहाँ तो वह कई बार गाड़ी से उतरी थी। एक बार जब ब्याह के बाद ससुराल से आई थी, तब भाई के साथ उत्साह से उतरी थी। जल्दी घर जाकर प्यारी सखी चम्पा को देखने, उसे कुछ आप-बीती सुनाने को पेट फूल रहा था। फिर एक बार अपने पति के साथ गौने के बाद आई थी। उसके बाद? उसके बाद ही से उसका कर्म फूट गया; उसका सौभाग्य डूब गया; सतीत्व लुट गया, श्री नष्ट हो गई; मान-सम्मान, गौरव सब ठिकाने लग गये थे। कहाँ रही वह हंसिनी-सी चाल, वह कुलबुलाहट, वह उतावलापन, और चंचलता? कहाँ रही वह वाचालता? कहाँ रही वह घर जाने की उमंग? जहाँ से अत्यन्त अपमानित होकर निकाली गई थी, जहाँ एक पल रहना भी कष्टकर था, क्या यह वही घर है? जहाँ जाने को वह उतावली हो रही है? एक दिन था, जब उसकी अवाई सुनकर घर-द्वार लिपा था। कहा-

रिन मंगल-कलश लिये द्वार पर खड़ी थी, माँ आरती सजाये खड़ी स्त्री-मण्डल से कह रही थी—'मेरी मम्मो ससुराल से आती है, न जाने कितनी कमजोर हो गई होगी ? उसके दिन पराये घर न जाने कैसे कटे होंगे ?' उस समय मुस्कराते हुए, छमाछम पैर बजाते हुए इसी भगवती ने घर में प्रवेश किया था। किसीने पुचकारा था, किसीने गोद में लिया था, किसीने सिर पर हाथ फेरा था, किसीने वस्त्र, किसीने आभूषण हाथ में ले-लेकर टटोल-कर देखा और सराहा था, किसीने मंगल-गीत गाये थे। माता दौड़कर जल-पान को मिठाई ले आई थी, भाभी जल्दी-जल्दी पूड़ियां उतार रही थीं, नारायणी झपटकर पीढ़ा ले आई थी, नाइन पंखा लेकर खड़ी हो गई थी।

पाठक, ऐसे ही चोचले हुए थे। वे दिन आज भी भगवती भूली नहीं है। पर आज तो दिन ही और हैं। वे दिन और थे।

अस्तु, अब भगवती सब तरफ से सिमट-सिमटाकर नीचा मुख किये एक ओर खड़ी हो गई। असबाब उतारकर हरनारायण ने कहा—"चल भगवती, चलें।"

भगवती चुपचाप पीछे-पीछे चल दी। स्टेशन से बाहर आकर उसने कहा—"भाई अब तुम घर जाओ। यहां से मेरा रास्ता और है, तुम्हारा और। मेरी ओर से सबसे हाथ जोडकर क्षमा मांगना।"

हरनारायण कुछ देर तक उसकी ओर अनुनय की दृष्टि से देखते रहे। उन्होंने उसे बहुत-कुछ समझाया, पर उसने एक न सुनी। वह उस अन्धकार में अपने को छिपाती हुई, बिना प्रतीक्षा किये गोविन्दसहाय के घर की ओर चल खड़ी हुई।

एक बार तो हरनारायण ने लपककर बहन को रोकना चाहा, पर ऐसा न कर सके। वे उस अनाथ, निराश्रय, दलित अबला की दशा देखकर वहीं बैठ, फूट-फूटकर रोने लगे। जब रोने से कुछ जी हलका हुआ, तो धीरे-धीरे घर को चले। मानो कोई जन्म-भर की कमाई लुटाकर चला हो। इस समय अंधेरा खूब हो रहा था। गांव का मार्ग निर्जन था। घर में भी अन्ध-कार और सन्नाटा था। हरनारायण घर में घुस, चुपचाप अपनी कोठरी में पड रहे। आज उन्हें प्रतीत हुआ, कि भगवती निरपराध है, और वे स्वयं कितने अपराधी हैं।

५०

गोविन्दसहाय इधर-उधर भटककर घर में आ और खा-पीकर लेटे ही थे, कि उन्हें द्वार पर खटखटाहट मालूम हुई। उन्होंने पुकारकर पूछा—"कौन ?"

उत्तर न मिला। कुछ ठहरकर फिर खटका हुआ। अब वे द्वार खोलने चले। देखा—श्वेत वस्त्र में सर्वांग ढाँपे कोई खड़ा है। उन्होने कुछ भीत स्वर में पूछा—"कौन है ?"

"मैं हूँ भगवती।" उसने भीतर घुसते-घुसते कहा।

गोविन्दसहाय ने अकचकाकर कहा—"एँ भगवती ?"

भगवती को और कुछ कहना न पड़ा। घर के प्रकाश में उसका पीला, सूखा और भयंकर मुँह, बिखरे-मैले बाल और मलिन वेश देखकर वह स्तम्भित रह गया।

भगवती चुपचाप खडी उसे ताकती रही। गोविन्दसहाय ने जरा भय-भीत स्वर में कहा—"आखिर इस वेश का मतलब क्या है ? और इस समय कहाँ से आ रही हो ?"

भगवती का कण्ठ, तालू, जीभ सब सूख रहे थे। कठिनता से उन्हें तर करके संक्षेप से कहा—"काशी से।"

अब और भी अकचकाकर गोविन्दसहाय ने पूछा—"काशी से ? सीधी काशी से ?"

"हाँ।"

गोविन्दसहाय और कुछ न पूछ सका। वह चुपचाप खड़ा भगवती का मुँह ताकता रहा।

अब भगवती का जी कुछ ठिकाने आ गया था। उसने कहा—"हाँ, मैं काशी से ही आई हूँ, और तुम्हारे लिए आई हूं, आओ, अब हम लोग इस निर्दयी दुनिया से कहीं अलग चलकर रहेंगे।"

इतना कहकर वह उस युवक का हाथ पकड़ने को लपकी। परन्तु जैसे

कोई भूत के छूने से डरता है, उसी प्रकार पीछे हटकर गोविन्दसहाय ने कहा —"जरा ठहरो तो, तुम अपना मतलब साफ-साफ तो बयान करो।"

भगवती ने भर्राई आवाज से गढ्ढे मे धँसी हुई आँखों को युवक के मुंह पर गाडकर कहा—"मतलब तुम नही समझे ? मैं काशी डूबने गई थी, पर फिर सोचा कि अभी और कुछ दिन जी लूं, फिर मरना तो कही गया नहीं है—जीना क्या बार-बार मिलता है ? सो इस जीने के लालच मे तुम्हारे पास आई हूँ। क्योंकि अब सिवाय तुम्हारे और कहीं मेरा जीने का ठिकाना नही है। तुमने कई बार कहा था, कि पुनर्विवाह करलें। चलो, मैं इसके लिए तैयार हूँ पर ऐसी जगह चलो, जहां कोई न देख सके, पंछी भी न देख सकें—बस, हम ही दोनों रहे।"

इतना कहकर भगवती हांफने लगी, और उसकी आँखों से टपाटप आँसू टपकने लगे।

पर गोविन्दसहाय ने उधर नही देखा। वह एकदम कानों पर हाथ धर गया। उसने जरा धमकती आवाज से कहा—"ना, ना, यह कभी नही होने का ! बहुत हो चुका। तुम्हारे पीछे बहुतेरी बदनामी और बे-इज्जती कमा ली। बस, अब तुम मुझे बख्शो, और तुम इस तरह वक्त-बे-वक्त कभी मेरे घर मत आया करो। मुझे ऐसी ज़ल्लत का पता होता, तो कभी ऐसा काम नही करता। जो हो गया है, वही बहुत है।"

पाठक ! इस चोट को समझे ? कितने दिन की भूखी-प्यासी लड़की, आत्मा-हत्या करने पर उतारू, असहाय अवस्था में जिस कच्चे धागे के सहारे आस लगाये इतनी दूर से दौडी आई थी, वह इस तरह विश्वासघात करेगा ?

भगवती की आँखो मे अँधेरा छा गया। क्षण-भर के लिए उसके शरीर के खून की गति रुक गई, सिर चकराने लगा। उसने भर्राए और टूटे स्वर में कहा—"क्या कहा—क्या कहा ?"

गोविन्दसहाय ने कुछ झिझककर और कुछ उकताहट से कहा—"कहना-सुनना यही है कि अब तुम यहाँ से चली जाओ। कोई आकर देख लेगा।"

भगवती ने दृढ़ता से कहा—"देख लेगा, तो क्या है ? आवे, देख ले।"

गोविन्दसहाय कुछ क्रोध से बोला—"हाँ, तुम्हारे लिए तो कुछ नहीं है, पर मुझे तो लज्जित होना पड़ेगा।"

भगवती के शरीर में सनसनी दौड़ गयी। उसकी गर्मी बढ़ने लगी, और उसने उत्तेजित होकर कहा—"तुम्हें ?"

गोविन्दसहाय तेज होकर बोला—"हाँ, मुझे।"

अब भगवती का चेहरा भयंकर होने लगा। उसने जरा ऊँचे स्वर से कहा—"तुम्हें इतनी लज्जा है? पर जानते हो, मेरी लज्जा कहाँ जा डूबी है ?"

गोविन्दसहाय ने झिड़ककर कहा—"रात के वक्त यह बकवाद बिल्कुल वाहियात है। निकलो घर से बाहर ! मैं तुम्हारी बात किसी तरह नहीं मान सकता।"

इतना कह, वह द्वार की तरफ बढ़ा। भगवती ने होंठ काटकर कहा—"मैं निकलूँ और तू ?—यहीं रहेगा ?"

गोविन्दसहाय ने जामे से बाहर होकर कहा—"तू-तू क्या बकती है, चुड़ैल ! निकल घर से !"

इतना कह, उसने एक धक्का भगवती को दिया। धक्का खाकर भगवती गिरी नहीं, डरी भी नहीं। वह भयंकर रूप से दाँत किटकिटाकर हरगोविन्द पर लपकी, और उसने उसका गला ऐसे जोर से दबा लिया कि वह गिरकर छटपटाने लगा। भगवती उसके ऊपर चढ़ बैठी। उसकी आँखें निकल आयीं, जीभ निकल पड़ी। इसके अनन्तर उस चण्डिका ने उसके कपड़ों को फाड़ना और जगह-जगह दाँत से काटना शुरू कर दिया। वह अभागा पापी, पाप के हथियार से पाप का दण्ड पाकर तड़पने लगा। छूटने की बहुत कोशिश की, पर नारी से पार न पा सका। अन्त में बे-दम होकर पड़ा रहा। अब भीमाकृति चण्डिका उसके ऊपर से उतरी। अब भी खून उसके सिर चढ़ रहा था। वह बड़बड़ाती इधर से उधर पैर पटककर घर में फिरने लगी। पर क्रोध की मात्रा कम न हुई। वह दाँत कटकटाकर दोनों हाथ भींच-भींचकर कुत्सित गालियाँ बकने लगी। तब भी शान्त न हुई। वह फिर भभकी, अबकी बार लैम्प उसके हाथ में आ गया, उसे उसने लपककर उठा लिया, और एक बार तोलकर इस जोर से अशक्त गोविन्दसहाय

के ऊपर दे मारा, कि वह एकदम 'हाय' कर उठा। चिमनी टूट गई, तेल बिखर गया, आग लग गयी। अब भगवती अपने यथार्थ वेश में घर से बाहर निकलकर अन्धकार में लीन हो गयी। इसके थोड़ी ही देर में गाँववालों ने कोलाहल सुना, और जगकर देखा—गोविन्दसहाय का घर धाँय-धाँय जल रहा है।

५१

श्याम बाबू काशी में कलक्टर होकर आये हैं। वे नवयुवक, भावुक और इन्साफ-पसन्द हाकिम प्रसिद्ध हैं। सभी उनकी तत्परता और न्याय की प्रशंसा करते हैं। उनके इजलास में एक मुकदमा पेश है। मिस्ल को पेशकार ने सामने रखकर चपरासी को आवाज लगाने का हुक्म दिया। चपरासी ने हाँक लगाई—"मुसम्मात बसन्ती उर्फ आलीजान हाजिर···"

एक घृणित स्त्री को जो फटे-पुराने वस्त्र पहने थी—शरीर-भर में जिसके घाव हो रहे थे—नाक पर पट्टी बँध रही थी, बाल सूखे और बिखर रहे थे, पुलिस ने कटघरे में ला हाजिर किया। पेशकार ने जबान-बन्दी लेना शुरू किया। मैजिस्ट्रेट ने पूछा—"इस पर क्या मुकदमा है?"

"हुजूर, यह गली-मुहल्लों में बुरे मतलब के लिए लड़कियाँ चुराती फिरती है। इसी जुर्म में इसे दो बार प्रथम भी सजा हो चुकी है।"

इसके बाद गवाह पेश हुए। मुकदमा साबित हुआ। मैजिस्ट्रेट ने पूछा—"तुम्हें कुछ कहना है?"

"जो पूछो, वह कहूँगी।"

"तुम यह बुरा काम क्यों करती हो?"

"इसी से मेरी गुजर होती है।"

"तुम और कुछ काम नहीं कर सकती?"

"मैं पाप कमाती थी, पर अब मुझे कोई धेले को नहीं पूछता।"

मैजिस्ट्रेट ने मन की घृणा रोककर कहा—"तुम कोई मजदूरी कर सकती हो?"

"मजदूरी की अच्छी कही। मेरी उँगलियाँ ही गल गई हैं, मुझसे मजदूरी हो सकती है?"

"तुम अपाहिज-गृह मे दाखिल हो सकती हो?"

"कुत्तों की भाँति सड़ा-गला अन्न खाने को? ऐसी मेरी आदत नही। पाँच रुपये रोजाना तो मेरा शराब का खर्च है! एक समय था, जब आप-जैसे तलुवे चाटा करते थे, पर अब तो वक्त ही बदल गया!"

श्याम बाबू ने विरक्त होकर कहा—"तुम्हें और कुछ अपने बचाव में कहना है?"

"कुछ नही।"

"मै तुम्हे दो वर्ष सख्त कैद की सजा देता हूँ।"

"अच्छी बात है। पर यह लिख देना, कि मुझे अस्पताल मे रख दिया जाय। वहाँ जरा खाना अच्छा मिल जाता है, और काम भी नही करना पडता···।"

श्याम बाबू ने पुलिस को उसके हटाने का सकेत किया, और दूसरी मिस्ल उठाई।

वे सोच रहे थे—हाय! स्त्री-जाति का यहाँ तक पतन हो सकता है, यह तो मैंने कभी सोचा ही न था। न जाने कितनी स्त्रियाँ इस प्रकार नष्ट हो रही हैं, अवश्य ही यह इस अपराध की भागिनी नही। जिस समाज ने इन्हे पैदा करके यहाँ तक गिरने मे सहायता दी है, प्रकृत अपराधी तो वह समाज है।

इस दोष का निराकरण कानून क्या करेगा—जिसमे सिर्फ नियन्त्रण है? क्या दण्ड से ऐसी पतित आत्माओं का सुधार हो सकता है? हाय, कैसे शोक की बात है! हिन्दू-जाति का बेडा इसी प्रकार गर्क हो रहा है! हिन्दू-जाति अपनी बहन-बेटियो के लिए जब तक इस कदर बेखबर रहेगी, उसकी दशा का सुधार नही होगा। स्त्री-जाति की यह दुरवस्था किसी भी जाति की छाती मे भयानक क्षय की बीमारी है।

इसके बाद ही मालती का मुकदमा उनके इजलास मे पेश हुआ। मालती ने संक्षेप में सब हालात अदालत मे बयान कर दिये। अन्य स्त्रियो के भी बयान लिये गये। पुलिस के गवाह खतम होने पर अधिष्ठात्री और

अध्यक्ष पर फर्द जुर्म लगाया गया, और वे जमानत पर छोड़ दिये गए। मालती तथा अन्य स्त्रियों पर स्वेच्छानुसार जो-चाहे जहाँ चले जाने की आज्ञा दे दी गयी। सब चली गईं; पर मालती खड़ी रही।

मैजिस्ट्रेट ने कहा—"अब तुम क्या चाहती हो?"

"मैं सुरक्षा चाहती हूँ। मुझे मेरे घर भेज दिया जाय।"

"यह काम कौन करेगा? कानून तो अपना काम कर चुका यदि तुम्हारी बात सत्य हुई, तो अपराधी दण्डित होंगे। कानून ने तुम्हें स्वतन्त्र कर दिया।"

"परन्तु समाज ने तो नहीं। मैं कहीं भी जाना निरापद नहीं समझती। ज्यादा से ज्यादा निरापद स्थान मेरे लिए यही अदालत का कमरा है। मैं यहीं रहूँगी।"

"ऐसा नहीं हो सकता।"

"तब क्या हो सकता है?"

मैजिस्ट्रेट विचार में पड़ गए। उन्होंने कहा—"मैं अपनी तरफ से तुम्हारे पिता को तार दे सकता हूँ। तुम चाहो तो तब तक मेरी स्त्री के संरक्षण में रह सकती हो।"

"मुझे स्वीकार है।"

मैजिस्ट्रेट साहब ने उसे बँगले पर भिजवा दिया। इसके साथ ही उन्होंने उसके पिता को तार भी दे दिया।

शाम को मैजिस्ट्रेट साहब इजलास से लौटे। उन्हें तार का जवाब मिल चुका था, और उसे पढ़कर वे दुःखित तथा चिन्तित हो गये थे। वे नहीं समझ पा रहे थे, कि मालती-जैसी साहसी लड़की को क्या जवाब दें, और किस भाँति उसका कोई प्रबन्ध करें।

मालती ने नहा-धोकर कुछ खा लिया था। वह शान्त थी, पर बहुत क्लान्त थी। उसने मजिस्ट्रेट साहब के घर आते ही पूछा—"क्या तार का जवाब आया?"

"आया तो।" कहकर उन्होंने तार उसे दे दिया। उसमें लिखा था—"उसे हम घर में नहीं रख सकते, जातीय मर्यादा बाधक है। खर्च भेजते है, अच्छा प्रबन्ध कर दें।"

मालती ने रोकर जी हलका करना चाहा, पर न कर सकी। श्याम बाबू भी कुछ न बोल सके। मालती ने पुनः प्रश्न किया—"अब आपका क्या विचार है?"

"मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ, कहो!"

"मैं उत्तम रसोई बनाना जानती हूँ, आप मुझे नौकर रख लीजिए। मैं सिर्फ भोजन और रक्षा चाहती हूँ। शीघ्र ही मैं अपने विषय में कुछ निश्चय कर लूंगी। तब आपपर भार न रहेगा।"

श्याम बाबू की आँखों मे आँसू भर आये। उन्होंने कहा—"मालती, तुम्हें नौकर की भाँति रखने की तो मेरी इच्छा नहीं है, हाँ, बहिन की भाँति जब तक रहो—यहाँ तुम्हें कोई भय नही। परन्तु भविष्य के विषय मे तुम्हें बहुत कुछ सोचना होगा।"

मालती की आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। उसने कहा—"आप पर मैं विश्वास करती हूँ। आपने इस दुखिया को बडे आडे समय मे आश्रय दिया है, ईश्वर आप का भला करेगा। इतना कहकर मालती वहाँ से घर के भीतर चली गई।

५२

रायबहादुर महाशय के प्रशस्त बँगले पर बड़ी चहल-पहल है। सैकड़ों आदमी दौड-धूप करते फिर रहे है। रायबहादुर साहब एक आराम कुर्सी पर पड़े सब प्रबन्ध की देख-भाल कर रहे है। प्रकाश को पलक मारने की फुर्सत नही। वह इधर से उधर, उधर से इधर दौडे फिर रहे है। बँगला बिजली की रोशनी और असंख्य रंग-बिरंगी झण्डियों से लक-दक हो रहा है। द्वार पर शहनाई बज रही है। एक व्यक्ति ने रायबहादुर महाशय के पास आकर कहा :

"बारात आ पहुँची है—सबको यथास्थान ठहरा दिया है। भोजन भी पहुँच गया है, अब क्या आज्ञा है?"

"पलग, मेज-कुर्सी, फल, नौकर सभी की ठीक-ठीक व्यवस्था हो गयी

है न ?"

"सब ठीक-ठीक हो गया है।"

"बरात की चढ़त कब होगी ?"

"५ बजे चढ़त का समय रखा है । पुलिस कमिश्नर स्वयं ४० घुड़-सवारों सहित चढ़त में साथ रहेंगे।"

"और क्या-क्या सवारियाँ ठीक की गई हैं ?"

"४ हाथी, २० घोड़े, ६ मियाने, ५० बग्घी-टमटम।"

"बाजे का क्या रहा ?"

"फौजी बाजा आ रहा है। बरात के साथ भी बाजा है !"

"बहुत ठीक ! अब आप जरा उधर फिर चले जाइए और सब प्रबन्ध उन्हें समझाकर, उनकी और क्या आज्ञा है, यह पूछते आइए। और उसी के अनुकूल प्रबन्ध भी कर दीजिए। जाइए—मोटर ले जाइए, ताकि मैं उस तरफ से निश्चिन्त रहूँ।"

"बहुत अच्छा", कहकर वे सज्जन विदा हुए।

रायबहादुर ने प्रकाश को बुलाकर कहा :

"विवाह-वेदी का सब बन्दोबस्त तो ठीक है ?"

"जी हाँ, सब ठीक है। बारह पण्डित विवाह-वेदी पर वेदपाठ करने को आ जायेंगे। पाठशाला के सभी विद्यार्थी साम-गान करेंगे। दो हजार स्त्री-पुरुषों के बैठने का प्रबन्ध है। वेदी की सभी कार्यवाही सभी देख सकेंगे।"

"निमन्त्रण सब जगह पहुँच गया है ?"

"जी हाँ, खास-खास जगह मैं स्वयं हो आया हूँ।"

"स्वामीजी महाराज कब तक आयेंगे ?"

"उनका तार मिल गया है। वे चार बजे पहुँच रहे है।"

"पुरोहित का स्थान तो वे ही ग्रहण करेंगे न ?"

"वे और महात्मा देवराज जी।"

रायबहादुर सन्तुष्ट होकर कुर्सी पर लुढ़क गये। फिर बोले—"अच्छा बेटे, जरा तुम स्वयं एक बार जनवासे चले जाओ, देखो, किसी की कोई शिकायत तो नहीं ?"

प्रकाश 'जो आज्ञा' कहकर चल दिए।

रायबहादुर साहब उठकर अन्त.पुर में आए। यहाँ स्त्री-मण्डल का बेहद जमघट था। गृहिणी सभीकी आव-भगत कर रही थी। थाल-पर-थाल चले आ रहे थे। भण्डार सामग्री और पकवानों से भर रहा था।

एक स्थान पर दुलहिन का सिर गूंथा जा रहा था। उसकी चोटी में मोतिया और चमेली के फूलों को गूथा जा रहा था। हाथों और पैरों पर मेहँदी की चित्रकारी की जा रही थी। दुलहिन बार-बार इन तमाम आफतों से अपने को बचाना चाहती थी, पर उसका छुटकारा न था। युवती मण्डल उसे ताने और हँसी-मजाक से तग कर रहा था। दुलहिन का रूप दिव्य ज्योति से जगमगा रहा था।

रायबहादुर साहेब कुछ क्षण खड़े-खड़े, यह सब खेल देखते रहे। इसके बाद वे एक साथ हँस पड़े। दुलहिन उन्हें देखकर एकदम लजा गई, और स्त्रियों के झुरमुट में उसने सिर छिपा लिया।

इसके बाद वे गृहिणी के निकट आकर बोले—"तुम्हें तो किसी वस्तु की कमी नहीं ?"

गृहिणी ने कहा—"नहीं। मगर यह लड़की बहुत तंग कर रही है। गहनों का बक्स आया रखा है, न उन्हें पहनती है, न ससुराल के वस्त्रों को पहनती है, ऐसी जिद्दी लड़की तो देखी नहीं।"

रायबहादुर साहेब हँसकर बोले—"इस मामले में मैं तुम्हारी कुछ मदद न कर सकूंगा।"

इतना कहकर वे चल दिए।

शहर में विवाह की धूम थी। बरात इस शान से निकली कि शोहरत मच गयी। विवाह-वेदी पर मनुष्यों के सिरों का समुद्र था। रायबहादुर साहेब की पुत्री का विधवा-विवाह है, यह देखना कौन न चाहता था ? दो सौ से ऊपर योरोपियन स्त्री-पुरुष बैठे थे। स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज एक आसन पर और कर्मवीर महात्मा देशराज दूसरे आसन पर बैठे थे। एक ओर ब्रह्म-चारियों का मण्डल पीले वस्त्रों में वेष्टित बैठा था। सामने संन्यासियों का दल गेरुआ वस्त्र धारण किए उपस्थित था। उनके पीछे नगर के गण्य-मान्य पुरुष थे। महिलाओं का स्थान दक्षिण दिशा में था। ठीक पांच बजे मंगल-कार्य प्रारम्भ हुआ। वर-वधू ने विवाह-मण्डल में प्रवेश किया। वधू के मुख

पर घूँघट न था। वह फूलों की लतिका के समान शोभायमान, ओस से स्नान की हुई अधखिली कली के समान, चन्द्रमा की चाँदनी के समान स्निग्ध, विनय और लज्जा से अधोमुखी धीरे-धीरे वेदी की ओर बढ़ रही थी। उसके पीछे कुछ स्त्रियाँ मंगलाचरण गाती आ रही थी। दूसरी ओर सिंह-शिशु के समान उज्ज्वल परिधान धारण किये, पुष्प-मालाओ से सुशोभित वर महाशय परिजनो और मित्रो से घिरे हुए मण्डप की ओर अग्रसर हो रहे थे। दोनों के आसन पर बैठते ही स्वस्तिवाचन का गम्भीर नाद प्रारम्भ हुआ। ब्रह्मचारी और विद्वन्मण्डल गम्भीर ध्वनि से वेद-पाठ करते लगे। वर-वधू नीची दृष्टि किये निमग्न बैठे थे।

पाठक, क्या वर-वधू का परिचय देने की आवश्यकता है? वधू श्रीमती सौभाग्यवती सुशीला देवी, और वर श्रीयुत बाबू श्यामनाथ एम० ए० एल-एल० बी, आई० सी० एस० थे। वर-वधू पर पुष्प-वर्षा हो रही थी। वेद-पाठ समाप्त होते ही स्वामीजी ने विवाह-कृत्य प्रारम्भ किया। आपकी व्याख्या, प्रवचन-शैली जिन्होंने देखी, उनके हृदय पर वैदिक विवाह-पद्धति की एक मुहर लग गई। यूरोपियन स्त्री-पुरुष मुग्ध होकर सब कृत्य देख रहे थे। दो घण्टे में विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ, और वर-वधू ने खडे होकर सबको प्रणाम किया। फिर एक बार पुष्प-वर्षा के साथ सबने गम्भीर ध्वनि से दोनों को आशीर्वाद दिया। इसी अवसर पर रायबहादुर साहेब ने दस हजार रुपयों की रकम विधवा-विवाह-प्रचारक फण्ड मे दान दी, और इतनी ही वर पक्ष की ओर से दी गई। आगत सज्जनों का पान-इलायची और इत्र से सत्कार किया गया। सभी लोग प्रसन्न वदन विदा हुए। समाचार-पत्रों मे अगले दिन इस महत्त्वपूर्ण विवाह के सचित्र विवरण निकले।

तीन दिन बाद बरात विदा हुई। दहेज से भरे हुए सन्दूकों को देख-देखकर, देखने वाले 'वाह' कर उठते थे। अवसर पाकर श्याम बाबू प्रकाश को एक तरफ खीच ले गये। उन्होंने प्रकाश को कसकर छाती से लगा लिया और हठात् उसका मुँह चूम लिया।

प्रकाश ने उन्हें ढकेलकर कहा—"यह क्या गधापन है?"

श्यामबाबू की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। वे बोलने की चेष्टा करके भी न बोल सके। इस बार प्रकाश ने उन्हें अंक में भरकर चूम लिया।

प्रकाश की आँखें भी भर आईं। थोड़ी देर तक दोनों मित्र आनन्द के आंसू बहाते रहे। आवेग कम होने पर श्याम बाबू ने कहा—"प्रकाश, तुम्हारा मैं गुलाम हूँ। शरीर और आत्मा दोनों से तुमने मुझे खरीद लिया—हर लिया। तुम मनुष्य नहीं, देवता हो!"

प्रकाश के नेत्रों में आंसू, और होंठों में हास्य था। उन्होंने एक घूंसा श्यामबाबू की पीठ पर जमाकर कहा—"तुम्हें बात करने की तमीज ही नहीं आयगी, चाहे लाख डिप्टी बन जाओ।"

श्यामबाबू मित्र का हाथ पकड़े खड़े रहे। उन्होंने कहा: "प्रकाश, मैं तेरे हृदय के शीशे को पार कर गया हूँ, वहाँ जो चीज मुझे दीख रही है, उसी को मुझसे तुम छिपाते हो।"

प्रकाश बोले नहीं। वे मन का उद्वेग दबा रहे थे।

श्याम बाबू ने फिर कहा—"प्रकाश, सुशीला तुम्हें पाकर कृतार्थ होती, पर तुमने आदर्श के नाम पर उसे बलिदान कर दिया।"

प्रकाश अब खुले। उन्होंने कहा—"श्याम, क्या यह बुरा हुआ? तुम क्या समझते हो, सुशीला सुखी न होगी? मैं प्राण देकर भी उसे सुखी करूँगा।"

"पर मैंने थोड़े ही काल में—जब वह मेरे घर में थी—समझ लिया था, कि वह तुमसे कुछ और भी आशा रखती थी।"

"श्याम, अब इस बात को यहीं छोड़ दो। देखो, उसे तुम सदा क्षमा करना।"

"प्रकाश, मैं उसकी पूजा करूँगा। मैं उसका लौकिक पति हूँ अवश्य, पर मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हूँ, कि मैं उसका आध्यात्मिक गुरु और संरक्षक ही रहूँगा। तुम उसके लौकिक भाई हो। विकार की बात करना भी पाप है। पर प्रकाश, चाहे भी जो हो, मैं जानता हूँ, दोनों के शरीर में एक-दूसरे की प्यासी आत्मा कैद है। जब मैंने देखा, ये दोनों कभी न मिलेंगी, तभी मैं बीच में कूदा हूँ। मैं ईश्वर और अपने प्राणों की शपथ खाकर कहता हूँ, कि मैं जीवन-भर उसका आध्यात्मिक गुरु और संरक्षक रहूँगा—पति नहीं।"

प्रकाश ने घबराकर उसके हाथ पकड़ लिये। उसने कहा—"श्याम, श्याम! मेरा हृदय तुमसे छिपा नहीं है। पर देखना, मेरी आत्मा की कम-

जोरी उसपर प्रकट न करना, और न उसे इस विषय पर विचार करने का अवसर देना।"

श्याम ने आश्वासन दिया, और शपथ खाई। तब दोनों मित्र सारे आनन्दित जन-समूह मे मिल गये।

५३

गाँव-भर में इसका हल्ला मच गया। अभागा गोविन्दसहाय बुरी तरह झुलस गया था, और वह थोड़ी ही देर में मर गया। मरती वार टूटी-फूटी जवान से जो कुछ कह गया था, उसे लेकर, सब लोग आश्चर्यचकित हो इस घटना पर विचार कर रहे थे। सबकी जवान पर एक ही वात थी। चारों ओर चाँव-चाँव मच रही थी। जयनारायण बेटे के साथ, किवाड़ वन्द किये घर मे पड़े थे। चौधरीजी आए, और लौट गए। पञ्च आए, और चले गए। जो आया, चला गया, मुलाकात किसीसे नही हुई। 'तवीयत अच्छी नही है, सो रहे है।'—वस, यही एक उत्तर था। लोग तरह-तरह के सवाल करने के इरादे से, नीचा दिखाने, मलामत देने, जन्म मे थूकने, हँसी उड़ाने—गरज जो जिस योग्य था, करने आया था, पर यहाँ तो मामला ही दूसरा था। सब के लिए द्वार वन्द था। तीन वज गये। दोपहर ढल गया, पर जयनारायण के पट न खुले। अब रामचन्द्र वावू ने आकर द्वार खटखटाया। भीतर से बिना परिचय पूछे ही कहा गया—"इस वक्त सोते है, जाओ!" रामचन्द्र ने अपना परिचय देकर द्वार खुलवाया। उन्होंने देखा—जयनारायण को अब पहचानना कठिन है, मानो कब्र से मुर्दा उखाड़ लिया गया हो। उन्होंने दुःखी स्वर से कहा—"अव तो यह भी हो गया वावूजी! आगे क्या होगा!"

रामचन्द्र ने उन्हे दिलासा देते हुए कहा—"जो हुआ, सो हुआ—"वीती ताहि बिसारिये, आगे की सुधि लेइ। उठो, काम-धन्धे से लगो, यह सब ससार के करिश्मे है। मैं जब आपके पास आया था, तभी यदि आप मेरी बात पर ध्यान देते, तो यह सब क्यों होता?"

जयनारायण वहुत रो चुके थे। अब उनकी आँखों में आँसू थे ही नही।

वे गढे में धँसी हुई आँखों को उनके चेहरे पर गड़ाकर, एकटक देखने लगे। रामचन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा—"अब बुरा तो मानोगे, पर मैं इतना अवश्य कहूँगा, कि इतना भुगतकर भी आपकी आँखें नही खुली। सुबह का भटका शाम को भी घर आ जाय, तो भी ठीक है। मैं आपसे विनती करता हूँ, कि आप छोटी का विवाह कर डालिए। मुझसे वह देखी नही जाती है।"

जयनारायण सिर नीचा किए कुछ सोचते रहे।

हरनारायण, जो अब तक चुपचाप पडा था, उठकर बैठ गया। उसने कहा—"क्या कोई पात्र तैयार है?"

"पात्र तैयार होने मे क्या देर लगती है? आपकी स्वीकृति की देर है।"

"तो हमे मंजूर है, आप तैयार करें।"

रामचन्द्र जयनारायण की ओर ताकने लगे।

जयनारायण दीर्घ निःश्वास त्यागकर बोले—"मुझे मजूर है, वर तलाश करिये।"

रामचन्द्र हर्षित होकर बोले—"वर तैयार है। मालूम होता है, कल्याण का समय आ गया।"

दोनों ने उत्कण्ठा से पूछा—"कौन?"

"विट्ठलदास का लडका रामेश्वर।"

अब तो दोनो बाप-बेटे मानों आसमान से गिरे। दोनों एक साथ बोल उठे—"क्या आप हँसी करते है?"

"क्या यह हँसी का प्रसग है!"

"क्या विट्ठलदास का लड़का? उसे क्या पड़ी है, जो मुझ जैसे जाति-च्युत गरीब की विधवा लड़की लेगा? मेरी लड़की के भाग्य मे राजरानी बनना कहाँ है? ऐसी-ऐसी तो उसकी सैकड़ो दासियाँ होंगी।"

रामचन्द्र ने आंखो में आँसू भरकर कहा—"दीवानजी! असल मे तुम रत्न के पारखी नही हो। नारायणी को अभी तुम नही जानते, पर मैं जानता हूँ। तुम स्वीकार करोगे, तो वे सर-आंखो पर स्वीकार करेंगे।"

जयनारायण ने कुछ न कहकर रुपया निकालकर रामचन्द्र के हाथ पर धर दिया, और उनके पैर छूकर कहा—"तुम मेरे भाई हो, आज से नारायणी तुम्हारी हुई।"

रामचन्द्र ने रुपया सिर से लगाकर कहा—"मुझे आज बड़ा आनन्द हुआ है। विवाह इसी सप्ताह में होगा।" इसके बाद वे उठकर चल दिए।

जयनारायण कठिनता से, आन्तरिक आनन्द से मुस्कराकर पीछे फिर-कर स्त्री की तरफ देख पाये थे, कि वह दुहत्तड़ मारकर पत्थर पर गिर पड़ी। सिर फट गया, और बेहोश हो गई। जयनारायण उठकर उसे होश में लाने का यत्न करने लगे।

सिर ही की चोट होती, तो कदाचित् आराम हो जाता। पर बेचारी गृहिणी को तो असह्य मानसिक और शारीरिक चिन्ताओं ने खा डाला था। कुछ ठिकाना है! एक सद्गृहस्थ स्त्री ने अचानक अपनी अबोध कन्याओं का वैधव्य, लांछना, तिरस्कार, बदनामी, बिलगाव और जाने क्या-क्या न सहा! अन्त में उसका एकमात्र धर्म भी गया! दूर-दूर से सुना करती थी कि लड़-कियों के दूसरे विवाह होने लगे है। पर उस पुराने विचार की स्त्री की समझ में किसी तरह उसकी उपयोगिता न बैठती थी। कितनी बार जयनारायण ने सिर दे मारा, लड़ाई-झगडे किये, पर सब व्यर्थ। अन्त मे उन्हे आज यह भी देखना बदा था। जिस घोर पाप से दूर रहने के लिए, पुनर्विवाह से बचने के लिए इतनी बदनामी का टोकरा सिर पर रखा, वही अन्त मे खुल्लमखुल्ला हँसी-खुशी उसका बाप ही कर रहा है। ऐसे दु.ख में, ऐसी चिन्ता की आँधी में, यह घोर अरुचिकर प्रसंग, जिसका अभ्यास नही, रुचि नही, श्रद्धा नही। उसने झुंझलाकर बिना विचारे ही, उसी मस्तिष्क की उत्तेजना मे हताश होकर वही पत्थर पर सिर दे मारा।

यह धक्का वह सह न सकी। अभागिनी वृद्धा अब अपनी दुलारी का सुख-स्वर्ग देखने को जीवित न रही। वह उसके अगले ही दिन इस लोक से प्रस्थान कर गई।

५४

जहा इतना हुआ था, यह और भी सही। सब कुछ जहाँ सहा था, यह भी चुपचाप सह लिया गया। जब एक बार हलाहल पीकर पचा लिया, तो

ऐसे छोटे-मोटे विघ्न क्या कर सकते हैं ? जयनारायण के पास जो सहानुभूति के लिए आता, उसे यही कहते—"अच्छा हुआ, भाग्यवान् चली गई। अब मेरी भी मिट्टी ठिकाने लगे, तो अच्छा है।

इतना तो हुआ, पर नारायणी का विवाह रुका नहीं। क्रिया-कर्म समाप्त होते ही विवाह की तैयारी होने लगी। तैयारी तो होने लगी, पर उसमें कुछ धूम-धाम नहीं थी। वर सुन्दर, सुशिक्षित रईस घर का था। वर-पक्ष के लोग, कुल, सम्मान, जाति में सबसे बढ़कर थे। वे चाहते, उन्हें एक से एक बढ़कर लड़की मिल जाती। पर जयनारायण की मुसीबत ने उनकी बहुत सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। रामचन्द्र के निरन्तर प्रयत्न करने पर वे प्रतिज्ञा कर चुके थे, कि जब तक नारायणी मिलेगी, अन्यत्र ब्याह न करेंगे। इतना होने पर भी धूम-धाम नहीं थी। पाठक ! धूम-धाम क्या बनावट से हो सकती है ? जब दिल चुटीला हो, चोट ताजी हो, तो धूम-धाम कहाँ हो सकती है ? निदान, उसी ठण्डे प्रबन्ध में, अत्यन्त सादगी के साथ उस प्रसिद्ध रईस की बरात नियत तिथि पर जयनारायण के द्वार पर आ पहुँची। बरात में वर, उसके पिता, भाई, सम्बन्धी और दो पण्डित थे। इतनी छोटी, और बे-धूम-धाम की बरात होने पर भी गाँव में यहाँ तक कि आस-पास के गाँवों तक में लोग दिल खोलकर मनमानी कर रहे थे। पुराने खुर्राट, गालियों पर गालियाँ बक रहे थे। कलियुग की तो खैर नहीं थी। स्त्रियाँ ठोडी पर उँगली रखकर अपना कौतूहल प्रकट कर रही थीं। पर कुछ ऐसे भी थे, जो उस विवाह को बहुत अच्छा कहकर प्रसन्न थे।

इधर तो यह हो रहा था, उधर पास-पड़ोस के सभी ब्राह्मण बिना ही बुलाये छज्जू मिस्सर के घर धरना दिये बैठे थे। सलाह यह हो रही थी, कि यदि जयनारायण बुलावे, तो भोजन को जाना चाहिए या नहीं, इस मण्डली में प्रायः सभी भोजन-भट्ट थे। सब चुपचाप बैठे एक-दूसरे का मुंह ताक रहे थे, क्योंकि ऐसी-ऐसी उम्दा तैयारियाँ—लड्डू, कचौडी, मिठाई, पकवान, रायता छोडना क्या साधारण बात है ? पर ऐसे अधर्मी के घर क्या भोजन किया जा सकता है, जिसने बेटी का पुनर्विवाह करके लोक ही को उलट दिया। जिसकी एक बेटी बदनाम हो चुकी, जो जात से गिर गया, उसके यहाँ ये पवित्र अग्नि मुख शर्मा कैसे भोजन करें ? पर लड्डू, कचौड़ी, खुर्मा,

हलुआ यह सब क्या छोडने की चीजें है ? साँप, छछुन्दर की-सी गति थी—न छोडते बनता था, न खाते। एक तरफ कुआँ, एक तरफ खाई, बेचारे ब्राह्मण किधर जायँ ? घृत की लपटें चली आ रही थी, और भूख पद-पद पर बढ़ रही थी। एक और आफत थी कि वे चार-छः कोस चलकर आये हैं। अब घर लौटेंगे, तो ब्राह्मणी कहेगी कि क्या लाये ? वह एक तो बिना पेटूदास कहे बात ही न करती थी, अब तो चूल्हे की लकडी का ही प्रयोग करेगी; क्योंकि वे कई विवाहों से सूखे घर लौट गये है। हर बार एक से एक बढकर बीती थी। सो अबकी बार मामला चौपट ही होगा। बडी देर फालतू बातों मे बीतने पर एक ने कहा—"लो भाई, जो निश्चय करना है, जल्दी करो। भोजन का तो समय हो गया है, अब कोई-न-कोई बुलाने आता ही होगा। इससे पहले ही अपना कर्तव्य तय हो जाना चाहिए।"

उनमे कुछ पढ-पत्थर थे। वे अटक-अटककर कुछ अक्षर उखाड़ लिया करते थे। सकल्प समूचा याद था, और वक्त-बे-वक्त सत्यनारायण की कथा भी कह लिया करते थे। सबने उन्हीको घेरा। सब बोले—"अब और कौन बोले, पण्डितजी है ही, जो वे करें सो होय।"

पण्डितजी एकदम गम्भीरता की कीचड़ में लतपत हो गए। मानो कोई घर का मर गया हो इस तरह धीरे-धीरे बोले—"शासतर की जो है सो, आज्ञा ऐसी है, इस पापी के घर भोजन नही करना चाहिए जो है सो।"

सब चुपचाप सुनते रहे। पण्डितजी फिर बोले—"इसमें हम जो है सो अपना स्वार्थ नही देखते, मर्यादा की बात है।"

एक महाराज के दो दाँत आगे के निकल गए थे, उनमे से हवा निकल जाती थी। वे कहने लगे—"पर मुस्कल तो ये है, जो कोई उधर से बुलाने आया पण्डज्जी, हम जो है सो, नही जायेंगे।"

महाराज ने कहा—"हाँ, इस बात पर सब सोच लो। ऐसा न हो, सब चले जायँ, और हम रह जायँ।"

सबने कहा—"हम तो साहब, सब के साथ है। सब जावेंगे तो हम भी जावेंगे, नही तो नही।"

इतने में एक बोले—"क्यों गुरु ! इसका पराछ्न कुछ नहीं ?"

पण्डितजी बोले—"पराछत तो है। जो है सो, शासतर में है क्या नहीं?—गंगा-स्नान और सौ ब्राह्मण-भोजन, और दक्षिणा।"

"चाँदी की दच्छना में तो क्या सन्देह है—विट्ठलदासजी क्या ऐसे-वैसे आदमी है? और गंगा-स्नान में भी कुछ बाधा नहीं। रही सौ ब्राह्मणों की, सो इतने तो हम हैं ही, बाकी क्या नहीं मिल सकते?"

"मिल क्यों नहीं सकते, पर वे लोग चाहें, तभी तो हो सकता है।"

इसपर महाराज बोले—"तो एक काम करें, उधर खबर भेज दें कि तुम यह सब पराछत करो, तो हम भेज सकते हैं।"

भौंदू शर्मा फौरन् उठ खड़े हुए। बोले—"इसमें क्या देर लगती है? हम अभी कहे आते हैं। देखते भी आवेंगे, कि भोजन में क्या देर है?"

पण्डितजी कहने लगे—"नहीं-नहीं, ऐसा जो है सो, नहीं; वे हमें खुद बुलावें, तो जाना चाहिए।"

"जैसी पंचों की राय।" कहकर देवता बैठ गए।

अब समय की प्रतीक्षा होने लगी। कोई तो अँगोछा बिछा वहीं लुढ़क गए, कोई भीत के सहारे पीनक लेने लगे, कोई तम्बाकू मलने लगे, कोई निठल्ले माला ही ले बैठे। गरज, छज्जू मिस्सर के घर मजे की चहल-पहल हो गई।

घण्टे पर घण्टे बीत गये, पर कोई न आया। क्या भोजन हो चुका? क्या ब्राह्मण नहीं बुलाये गए? कोई-कोई, जो सो गए थे आँख खोलकर पूछ लेते थे—"कोई आया तो नहीं?" और 'नहीं' का उत्तर पाकर फिर सो रहते। अन्त में उनकी बेचैनी बढ़ी। धैर्य सीमा को पार कर गया। उन्होंने देखा—बारात बाजा बजाती भोजन को गयी। ब्राह्मण बैठे ही रहे। तभी एक और घटना घटी—छजिया नाइन हँसती हुई उधर आ निकली। ब्राह्मणों की मजलिस को सुस्ती से बैठी देखकर आँख मटकाकर हाथ हिलाकर कहा—"ऐ दादा! तुम यहाँ क्यों बैठे हो? जाओ न, जनवासे में रुपया बिखर रहा है। यह लो, मैं तो चिट्ठा बना लाई।" यह कहकर उसने टन से शशिवर्ण चतुर्भुज को बजा दिया।

अब भौंदू मिस्सर से न रहा गया। वे अपना सोटा उठाकर बोले—"यह लो भाई! हमारे रामजी तो चले।"

रिस्मू बोले—"और हम क्या यहाँ ऐसी-तैसी करावेंगे ? हम भी चलें।"

तिवाड़ीजी बोले—"चलो, फिर हम भी चलें।"

अब तो एक के बाद एक लपका। पण्डितजी कहने लगे—"भाई, बिना बुलाए जाना क्या ठीक है ?"

छदम्मी बोले—"हम कोई खाने को जाते हैं, जो बुलाने की बाट देखें ? सैर-तमाशे को सभी जाते हैं, उसमें बुलाना क्या ? चलो भाई भोदूजी !"

पण्डितजी बोले—"हाँ, तमाशे में क्या हर्ज है ? चलो देखें, कि किस तरह ब्याह होता है ?

गरज, धीरे-धीरे सभी चल दिए। यह ब्राह्मण-मण्डली अपनी कुल-कान, बडप्पन, सब पर लात मारकर लालच में चल खड़ा हुआ।

सहृदय पाठक ! इस सुदृश्य को देखकर आपको दु ख तो हुआ होगा। जिन्हें ऋषि-सन्तान होने का दावा है, जो कहते हैं कि उनके द्वार पर चक्रवर्ती शक्तियाँ ठोकरें खाया करती थी, जिनके वचन में अमोघ शक्ति थी, जो तेजपूर्ण यशस्वी, अपनी भृकुटी-विलास में अष्ट-सिद्धि, नव-निधि रखते थे, उनके ही वंशज आज भोजन के लिए निर्लज्ज बने, बिना बुलाए उसी द्वार पर आ रहे हैं, जिसे वे हृदय मे पतित, अधर्मी, पातकी और अस्पृश्य समझते थे। छि ! पाठक शायद हमपर नाराज हों, पर हम क्षमा माँगते हैं, क्योंकि हम सत्य कहने में विवश हैं।

अस्तु, जिस समय यह मण्डली वहाँ पहुँची, तब विवाह प्रारम्भ हो गया था। हवन-कुण्ड और मण्डप सजे हुए थे। उच्चस्वर से वेद-पाठ हो रहा था। सब क्रिया धीरे-धीरे सम्पूर्ण हुई, और क्षण-भर में वही अभागिनी, कुलच्छनी, खसमखानी असहाय बालिका, जिसने अपमान, तिरस्कार में कितने दिन काटे थे—सुहागिन हो गई, दुलहिन बन गई। वह उपेक्षित-दलित पुष्प सुहाग के शुभ मुहूर्त मे रंगीन, नवीन वस्त्रो के आवरण मे सुरक्षित हो गया। यह सामाजिक संगठन, उस नैतिक बल का तिलस्म था, जो लोगों के सामने था, जिसने भाग्य को, प्रारब्ध को विपत्ति के दुर्दैव को लात मारकर भगा दिया था, और उसके स्थान पर सौभाग्य, आशा, सुख, उछाह की वर्षा कर दी थी। एक बालिका की गोद, जो अन्धकार और निराशा से

टूटी पड़ती थीं, प्रकाश और आशा से भर दी गई थी।

यह पुण्य, उदारता की प्रतिमूर्ति विट्ठलदास ने लूटा। जब देश मे ऐसे दीनदयाल, परदुख-दुखी पुरुष पैदा हो, तो एक क्या, ऐसी करोड़ों कलपती हुई आत्मा बात की बात में शान्ति और पवित्रता का जीवन प्राप्त कर सकती है। पर जीवन-दाता बनना हर किसी का काम नही। विट्ठलदास जैसे वीर ही सच्चे जीवन-दाता कहे जा सकते है।

विवाह-सम्पादन हो गया, और उपर्युक्त ब्राह्मण-मण्डली आप ही आप 'वाह वाह — बहुत अच्छा' की ध्वनि से समय-समय पर अपनी तुच्छता का परिचय देती रही।

अन्त में विट्ठलदास ने सबको सत्कार-सम्मान से भोजन कराया, और एक-एक रुपया दक्षिणा देकर विदा किया।

नारायणी बडे घर की दुलहिन बनकर चली।

उस दग्ध-हृदय पिता की, विदा के समय पुत्री से भेंट बिल्कुल अलौकिक थी। उस समय दोनो पक्ष मे कोई ऐसा न था; जो द्रवित न हुआ हो। पर यह रुदन जैसे सुख का था—उसके लिए सब तरसते है! इन आँसुओ के साथ वर्षों के तिक्त दु ख धुल रहे थे।

५५

मणिकर्णिका घाट पर एक शुभ्र वसना महिला एक पचवर्षीय बालक की उँगली पकडे, गीली धोती निचोड़कर, हाथ में लिये धीरे-धीरे सीढियों की ओर आ रही थी। उसका मुख गम्भीरता, तेज और तप के प्रभाव से देदीप्यमान था। वह न इधर देखती थी, न उधर। बच्चा कुछ बोल रहा था, और वह उसकी बातो का धीरे-धीरे उत्तर देती जा रही थी।

सीढी पर एक भिखारिन अर्द्धनग्न और विक्षिप्त अवस्था मे पड़ी भीख माँग रही थी, उसके समस्त अंगों मे कुष्ट फूट पडा था, आँखें और होंठ गल गये थे, नाक बैठ गई थी। उसका स्वर नाक से निकलता था। रोग और दुर्बलता के कारण वह बैठ भी न सकती थी। उसके सम्मुख एक कपडा पड़ा

था, उसपर आती-जाती स्त्रियाँ कुछ भुने हुए अनाज के दाने डाल जाती थी।

शुभ्रवसना महिला जब उस सीढ़ी तक पहुँची, तो भिखारिन ने उससे भी कुछ माँगा। उसकी दयनीय दशा देखकर महिला को करुणा आ गई। उसने पूछा—"तुम कौन हो, और इस तरह क्यों पड़ी हो?"

भिखारिणी ने क्रुद्ध होकर कहा—"कुछ देती हो, तो दे दो; पंचायत मत करो।"

महिला उसके क्रोध से स्तम्भित हो गई। उसने कहा—"बहन, नाराज न हो। तुम्हारा कष्ट देखकर मेरी छाती फटती है। कहो तो, तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हुई?"

भिखारिणी ने कुछ दबगता से कहा—"छाती फटती है, तो यह अपनी धोती मुझे दे डालो।"

भिखारिन का ऐसा विचित्र स्वभाव और जवाब सुनकर वह कुछ सोच रही थी, कि एकाएक भिखारिन की दृष्टि दूसरी तरफ जाकर अटक गई। महिला ने देखा—कोई भद्र पुरुष अपनी स्त्री और गोद में शिशु के साथ स्नान करने के लिए आये है—वे मोटर से उतर रहे हैं।

भिखारिद क्षण-भर बड़बड़ाती रही, और इसके बाद एक बड़ा-सा पत्थर उठाकर भद्र पुरुष पर दे मारा।

पत्थर मारकर वह घृणास्पद गालियाँ देने लगी। पत्थर भद्र पुरुष के पैर में लगा। वे अचकचाकर देखने लगे। देखते-देखते बहुत-से आदमी इकट्ठा हो गये। पुलिस का सिपाही भी आ गया।

भद्र पुरुष श्याम बाबू थे। उन्होंने भी पहचान लिया, भिखारिन वही स्त्री है, जिसे उन्होंने दो वर्ष की सजा दी थी। वह अब भी गालियाँ बक रही थी। श्याम बाबू के साथ सुशीला थी, और उनकी गोद में छः मास का शिशु था। वह अवाक् सब देख रही थी।

भिखारिन की दृष्टि सुशीला पर पड़ी। वह आँखें गड़ा-गड़ाकर उसे देखने लगी। इसके बाद वह हठात् उठ खड़ी हुई, और सुशीला की ओर देखकर जोर से बोली—"अरे, दर्जी की छोकरी—तेरे ये ठाठ!"

सुशीला पहले तो डर गई, पीछे पहचान लिया—यह भाग्यहीना वही स्त्री है, जिसने एक बार उसे फुसलाना चाहा था।

सिपाही ने भद्र पुरुष को पहिचान और संकेत पाकर भिखारिन को पकड़ लिया। भीड़ और बढ़ गई थी।

भद्र महिला ने श्याम बाबू के पास आकर पूछा—"आपने इसे कभी कुछ कष्ट दिया था ?"

"मैं मैजिस्ट्रेट हूँ। कन्या चुराने और उनको बुरे रास्ते पर लगाने के अपराध मे मैंने इसे दो वर्ष का दण्ड दिया था।"

"अब इसे क्षमा कर दीजिए, इससे अधिक इसकी क्या दुर्दशा हो सकती है ?"

सुशीला ने कहा—"मैं इसे जानती हूँ, यह भले घर की लड़की है। आह ! इसका सुन्दर रूप अब भी मेरी आंखो मे है। प्रकाश भाई···"

महिला ने कहा—"क्या कहा ? प्रकाश ? आप कौन-से प्रकाश का नाम ले रही है ? क्या वही, जिन्होंने राजा···का खून किया था ?"

"जी हां।"

"वे आपके कौन हैं ?"

"भाई।"

"कैसे भाई ?"

सुशीला घबरा गई। अब इसका क्या जवाब है ?

महिला ने दो कदम आगे बढ़कर कहा—" आप सुशीला तो नही ?"

"मैं सुशीला ही हूँ।"

"ओह !" महिला ने सुशीला को छाती से लगा लिया, और उसके बच्चे को गोद मे लेकर बार-बार पुचकारने लगी।

सुशीला ने कहा—"क्षमा कीजिए ! आप मुझपर इतनी सदय हैं, और मैं आपको पहचानती भी नही। क्या यह मेरा दुर्भाग्य नही ?"

"नहीं, बहन, प्रकाश मेरे ममेरे भाई है। तुम्हारे लिए राजा साहब की हत्या करने, छः वर्ष का दण्ड पाने और स्त्रियो के डेपुटेशन से प्रभावित होकर उनको गवर्नर द्वारा क्षमा-दान मिलने की कथा मुझे मालूम है। प्रकाश मेरा बड़ा मान करते हैं। श्याम बाबू से तुम्हारे विवाह होने की बात स्वयं उन्होंने मुझे लिखी थी। मैं अभागिनी सबसे अलग रहने को विवश हूँ इसलिए मैं तुम्हारे विवाह मे भी नही आई थी। प्रकाश स्वयं मुझे लेने आये थे।"

श्याम बाबू ने आगे बढ़कर कहा—"आप कुमुद देवी तो नहीं ?"

"मैं कुमुद ही हूँ।"

"ओह !" उन्होंने लपककर बच्चे को गोद में उठा लिया। बोले—"प्रकाश बारम्बार लिखता रहा, पर आप ऐसी छिपी, कि पता ही नहीं लगा। आज ही प्रकाश आ रहा है। अब आप छूटेंगी नहीं। घर पर चलना ही होगा।"

कुमुद की एक भी नहीं चली। श्याम बाबू बिना स्नान किये, मोटर में बैठकर घर लौट आए। भिखारिन को पुलिस ले गई। पीछे उसकी व्यवस्था पागलखाने में कर दी गई।

५६

चाँदनी छिटक रही थी, एक साफ चबूतरे पर सीतलपाटी बिछी थी, उसपर छः स्त्री-पुरुष बैठे थे। स्त्रियों में, सुशीला, मालती और कुमुद, और पुरुषों मे—श्याम बाबू, प्रकाश और एक व्यक्ति, जिनका परिचय आगे मिलेगा।

प्रकाश ने कहा—"कुमुद, मैंने बड़ी-बड़ी चेष्टा की—भाई से पूछा, पर तुम्हारा पता न लगा।"

"मैंने उन्हें शपथ दी थी।"

"तुमने बड़ा दुःख भोगा।"

"दुःख-सुख तो मन के विकार है। मैंने सुख भी भोगा और दुःख भी।"

"पर तुम्हारा दुःख तो अब भी वैसा ही है। कुमुद, क्या इसका अन्त न होगा ?"

"अब मुझे दुःख क्या है ?"

"ओह, तुम संसार के सभी भोगों से दूर हो !"

"भोगों की इच्छा रहने पर उनके न मिलने से दुःख होता है, मेरी उनसे तृप्ति हो गई है।"

"यह तृप्ति कैसे हुई ?"

"अन्तरात्मा की सूक्ष्म भावना से।"

"मैं तो उसका मतलब नही समझा।"

"सब के समझने की यह बातें नही। मेरा बच्चा जब सोता है, तब मैं निश्चय काम करती रहती हूँ। यदि तुम्हारी रकम बैंक मे जमा है, तो तुम बेफिक्र हो।"

"इस उदाहरण से अभिप्राय ?"

"यही, कि तुम कहते हो कि स्वामी के बिना स्त्री सब दु खों को सहती है, पर मैं स्वामी को सदैव पास पाती हूँ।"

"कल्पना से ?"

"कल्पना को इतना तुच्छ क्यों समझते हो। कल्पना ही से भाई-बहन, पति-पत्नी का रिश्ता होता है।"

"परन्तु उसमे शारीरिकता भी तो है।"

"उसे मैंने जीत लिया है, और यही मेरी तृप्ति का विषय है।"

"परन्तु पुनर्विवाह तो शास्त्र से सिद्ध है।"

"मैं इसपर विचार ही नही किया चाहती। जिनके हृदय हो, जिनकी वासना प्रबल हो, वे उस शास्त्र-वचन से काम लें।"

"परन्तु पुष्प का अस्तित्व किस लिए है ?"

"वह विलास की सजावट मे भी काम आते है, और देव-पूजा में भी।"

"परन्तु कुमुद, क्या तुम उसी प्रकार पति को निकट देखती हो, जैसे जीवित अवस्था मे देखती थी ?"

"बिल्कुल उसी प्रकार।"

"इन्ही चर्म-चक्षुओ से ?"

"ईश्वर क्या चर्म-चक्षुओ से देखा जाता है ?"

"वह आत्मा का विषय है।"

"जो ज्ञान का प्रकरण है, वह सदा ही आत्मा का विषय है। उसमें जितनी वासना कम हो उतना उत्तम।"

"तब विधवा शब्द क्या हिन्दू जाति पर शाप नही ?"

"वह हिन्दू जाति का भूषण है, और ससार की किसी जाति मे ऐसी पवित्रता और त्याग के गम्भीर अर्थों से परिपूर्ण शब्द ही नही।"

"परन्तु बलात्कार से त्याग···!"

"यह बुरा है, अबोध बालिकाओं को विधवा बनाना और उनपर निष्ठुर विधान का प्रहार करना बुरा है।"

"तब तुम उनके लिए विधवा-विवाह उचित समझती हो?"

"अवश्य, जिसका हृदय शून्य हो, या वासना प्रबल हो।"

"यह नियम क्या स्त्रियों के लिए है?"

"स्त्री-पुरुष दोनों के ही लिए।"

"पर क्या यह भयकर नहीं है, कि कुछ स्त्री-पुरुष अकेले जीवन व्यतीत करें?"

"उसी दशा में, जब कि दो बातें हों, जिनका मैं वर्णन कर चुकी हूँ।"

श्याम बाबू बोले—"परन्तु इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं। सम्भव है वे कुमार्ग में जायँ, और गुप्त पापों की सृष्टि हो।"

"मैं तो उत्तर दे चुकी। सारे पाप शून्य-हृदय करते हैं। जिनको लगन लगी है, वे न वासना में गिरते है, और न पाप उन्हें छू सकता है।"

सुशीला बोली—"आपकी जीवनचर्या क्या है?"

"मैं सदा श्वेत वस्त्र पहनती हूँ। चार घड़ी भोर में उठती हूँ। सूर्योदय से प्रथम स्नान, और सन्ध्या-वन्दन से निपट लेती हूँ। चटाई पर सोती हूँ। शृंगार नहीं करती, एक समय रोटी और तरकारी खाती हूँ। प्रति मास चार उपवास करती हूँ। सिर्फ चार घण्टे सोती हूँ। आठ घण्टे पढ़ती हूँ, और बच्चे को पढ़ाती हूँ, और शेष समय सेवा-कार्य में व्यतीत करती हूँ। मैं दुखी नहीं हूँ। मेरी आत्मा सन्तुष्ट है, और मैं अब सब तरह से निर्भय हूँ।"

तपस्विनी महिला की उपर्युक्त बातें सुन, सब स्तब्ध रह गये। तीसरे व्यक्ति वहीं उनके जेठ थे। उन्होंने कहा—"बहू, मेरे अपराधों को क्षमा करना, मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया।"

कुमुद ने कहा—"आप वैसे ही हमारे पूज्य और बड़े हैं, और मेरे मन में आपके प्रति कोई द्वेष-भाव नहीं।"

थोड़ी देर चुप रहकर उसने फिर कहा—"प्रकाश भाई, विलास और वासना का साधारण जीवन सभी व्यतीत करते हैं। पर मैं अपना अनुभव कहती हूँ, कि त्याग और तप का जीवन उससे कहीं अधिक सरल है। जो

लोग उसे कठिन बताते हैं, उन्होंने उसका अनुभव नहीं उठाया। जगत् के भोगों में तो गृहस्थ को भी उतना न फँसना चाहिए; क्योंकि वे शरीर और आत्मा दोनों ही का नाश करनेवाले हैं।"

प्रकाश ने कहा—"बहिन, मैं तुम्हारे जीवन का अनुसरण करूँगा।"

"तुम ? प्रकाश, तुम ?"

"हाँ, मैं शून्य-हृदय नहीं—वासनायुक्त भी नहीं।"

प्रकाश उठकर चलने लगे।

श्याम बाबू मर्माहत हुए। उन्होंने उनका हाथ पकड़कर कहा—"प्रकाश भाई, अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि हम लोगों का जीवन दुःखद हो, तो बात ही दूसरी है।"

कुमुद ने कहा—"प्रकाश, जरा बैठो। मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ।"

प्रकाश बैठ गये। कुमुद ने कहा—"तुम इतने साहसी, और विद्वान् होकर दूसरों के अनुकरण की चेष्टा क्यों किया चाहते हो ?"

"महान् आत्माओं का अनुकरण करना ही चाहिए।"

वह साधारण लोगों के लिए है—तुम्हारे जैसों के लिए नहीं। तुम्हें अपना जीवन और ऊँचा करना पड़ेगा। तुम समाज से छिपकर नहीं रह सकते।

"तुम चाहती क्या हो कुमुद ?"

"तुम्हें विवाह करके सद्गृहस्थ रहना चाहिए।"

"ओह, कुमुद यह बहुत कठिन है।"

"तुम्हें कठिन ही काम करना चाहिए। तुम्हें विवाह करना होगा—अपने लिए नहीं, आदर्श और मर्यादा की रक्षा के लिए !"

सुशीला बीच में बोली—"यदि आप विवाह न करेंगे, तो मैं प्राण त्याग दूँगी।"

प्रकाश हँस पड़े। उन्होंने श्याम बाबू की ओर देखा—उनकी आँखों में आँसू थे। प्रकाश की आँखें भी भर आईं। उन्होंने कहा—"कुमुद, क्या तुमने कोई पात्री ठीक कर रखी है ?"

"नहीं तो क्या ?" यह कहकर उसने मालती की ओर देखा।

श्याम ने कहा—"मालती-जैसी लड़की के जीवन का यथार्थ मूल्य तुम्हारा शरीर है। प्रकाश, तुम अपना शरीर मालती को प्रदान कर दो। इससे अधिक मालती स्वयं प्राप्त कर लेगी।"

कुमुद ने कहा—"मालती की इच्छा हमें मालूम है। सुशीला ने उसे सब बातें कह दी हैं।"

प्रकाश ने कहा—"कुमुद, क्या तुम मेरा विधान अपने से बिल्कुल विपरीत किया चाहती हो?"

"हाँ, प्रत्येक पुरुष का विधान पृथक्-पृथक् ही होता है।"

कुछ देर चुप रहकर प्रकाश ने श्याम बाबू की ओर देखा, फिर कुमुद से कहा—"कुमुद, मुझे मालती की सेवा करना स्वीकार है। मैंने मालती को अपना शरीर दिया। पर एक शर्त है। इस विवाह में कुछ भी धूम-धाम न होगी।"

"कुछ भी नहीं, यह विवाह आज ही सम्पन्न हो जायगा।"

"आज ही कैसे?"

"ठहरो, सब ठीक हुआ जाता है।" कुमुद ने श्याम बाबू से परामर्श किया। मालती वहाँ से उठकर भागना चाहती थी, पर सुशीला उसे पकड़े हुए थी। थोड़ी ही देर में सब मंगल-पदार्थ एकत्रित कर दिये गये। मालती और प्रकाश दोनों ने स्नान किया, यज्ञ की वेदी पर बैठ, स्वयं ही धर्म को साक्षी देकर अपने को पति-पत्नी रूप में स्थापित कर दिया।

उस आनन्द की बाढ में सुशीला की आँसुओं की धारा को कोई भी न देख सका।

उपसंहार

नगर अवसन्न था। रात यद्यपि चाँदनी थी, पर मौसम सर्दी का था। यद्यपि अभी नौ ही बजे थे, परन्तु सड़कों पर सन्नाटा था। ऐसे ही समय पागलखाने के अस्पताल में एक गन्दी और दुर्गन्धपूर्ण कोठरी में एक हृदय-द्रावक करुण दृश्य हो रहा था।

उस कोठरी में उसीके अनुरूप खटिया पर, वैसे ही वस्त्र ओढ़े अभागिनी भगवती अपनी अन्तिम यात्रा की तैयारी कर रही थी। यात्रा बहुत बड़ी थी, और वह इस लोक से परलोक तक थी। इसलिए उसकी तैयारियाँ भी वैसी ही थीं। वह कितनी भारी थी, कितनी भीषण थी, इसके देखने का कोई साधन प्रत्यक्ष तो था नहीं—हाँ, मन के उद्वेग, बेहोशी का बकवाद, हृदय की धड़कन और सर्वाङ्ग-कम्प को देखकर उस भीषण तैयारी का कुछ अनुमान हो सकता था। रह-रहकर उसके हाथ अकड़ जाते थे, आँखें निकल पड़ती थीं, मुँह में झाग आ जाते थे, और गले की नसें तनकर रस्सी बन जाती थीं। वह चीखती थी, उछलती थी, काँपती थी, बकती थी, और छटपटाती थी। अपने भाई की अमानुषी मार, माता के विषाक्त तिरस्कार, और हृदय के भारी-से-भारी अपमान में भी वह न रोई थी, न चिल्लाई-उछली थी। यह उसकी अन्तिम घड़ियाँ थी, और वह मानो संसार की रही-सही यन्त्रणाओं को बची-खुची झूठन को चलते-चलाते भोगे जाती थी। कदाचित् इसलिए कि फिर कोई इस विष को खाकर न मरे !!!

ऐसी ही दशा थी, बल्कि इससे भी करुण थी। दो-दो धायें उसे पकड़ रही थीं। बार-बार इन्जेक्शन दिया जा रहा था, पर वह दोनों नर्सों को दाँतों से काट-काटकर उन्हें विह्वल कर रही थी। ऐसे समय में नौकर ने सूचना दी :

"मेम साहब, इसका बाप आया है।"

साथ ही जयनारायण ने कमरे में प्रवेश किया। वह कुछ देर स्तब्ध होकर मुमूर्षु बेटी को ताकता रहा। रोगिणी ने उसकी तरफ देखा। फिर दोनों हाथ फैलाकर बोली—"लाये हो? लाओ, उसे मुझे दो।" इतना कहकर वह हठात् उठ खड़ी हुई।

जयनारायण ने निकट आकर कहा :

"किसको बेटी?"

नर्सों ने उसे बलपूर्वक लिटा दिया।

भगवती ने आँखें फाड़कर विद्रूप से कहा—"मेरे बच्चे को जिसे आँखों से एक बार भी नहीं देखा, न ही प्यार किया! अरे, कौन माँ इस तरह बच्चे को हलाल करती है। अरे राम! वह खून में नहा रहा थी। बाप रे! यदि

मेरी माँ भी इसी तरह करती, तो मैं इतनी बड़ी कैसे होती ? लाओ, लाओ, उसे मुझे दो, मैं उसे गोद में लूँगी। वह फिर उठ चली।"

जयनारायण बिलखकर रो उठे। उन्होंने कहा :

"मेरी बच्ची, शान्त हो जा। दुःख की बात सोचने से दुःख बढ़ता है। इस घड़ी बेटी, तू भगवान् को याद कर, वे ही तेरा कष्ट हरेंगे। हाय···इस स्थान पर इस तरह मरना मेरी लाड़ो बेटी को नसीब हुआ — !!" जयनारायण सिर पकड़कर धरती पर बैठ गये।

रोगिणी पर उसका प्रभाव नहीं हुआ। वह फिर एक झटका देकर उठ खड़ी हुई। उसने कहा—"तुम पापी हो, न लाये—न लाये। मैं खुद चलती हूँ—उसे लेकर आऊँगी। ओह, वहाँ गीली मिट्टी में रखा है, उसकी नस-नस में सर्दी घुस गई होगी।"

भगवती उठकर चली ही थी, कि नर्सों ने दौड़कर उसे पकड़ लिया, पर वह स्वयं चक्कर खाकर गिर पड़ी। दुर्भाग्य की बात कि खाट के पास रखी हुई पिता की छतरी की लोहे की तीली उसकी आँख में घुस गई। उसके निकालते ही रक्त की धारा बह चली। तत्काल डाक्टर ने आकर उपचार किये।

धीरे-धीरे भगवती की संज्ञा जाने लगी। वह सफेद पड़ गई और उसके प्रलाप की गति भी धीमी पड़ गई।

अन्तिम क्षण समीप है, यह सभीने समझ लिया।

डाक्टर ने हताश होकर कहा—"उसे लिटा दो। अब कुछ नहीं हो सकता !"

जयनारायण उठ खड़े हुए और आँख फाड़-फाड़कर बेटी को देखने लगे।

आँख से रक्त की धारा जारी थी। चेहरा खून में सन गया था। वह रह-रहकर काँपती थी, और दोनों हाथ ऊपर को उठाए मानो कुछ टटोल रही थी, और मुख से कुछ अस्पष्ट शब्द बड़बड़ा रही थी। धीरे-धीरे उसके हाथ शिथिल होकर गिर पड़े, और उसकी चेष्टा शान्त होने लगी।

टन-टन करके ग्यारह बजे, और भगवती की उर्ध्व श्वाँस चलने लगी। जयनारायण कहाँ तक रोते। वे उठे, और उन्होंने उसके सिरहाने [illegible]

उसका सिर अपनी गोद में लिया। फिर बड़े प्यार से अपने अँगोछे से उसका रक्त पोंछा, और झुककर उसका माथा चूम लिया।

भगवती ने आँखें खोल दीं। वह कुछ क्षण फटी-फटी आँखों से पिता को देखती रही। बोलने की चेष्टा की, पर न बोल सकी। अन्त में उसने आँख बन्द कर ली, और कुछ ही क्षण बाद उसने अन्तिम श्वास ली।

सन्नाटा हो गया, परन्तु कहीं से एक विषादपूर्ण गीत के गाने की धीमी ध्वनि सुनाई दी।

जयनारायण ने सिर उठाकर देखा। भावुक लेडी डाक्टर करुणार्द्र स्वर में एक विषादपूर्ण अँग्रेजी गीत गाकर, अभागिनी भगवती की आत्मा को स्वर्ग के बन्द द्वार पर मानो निराश भाव से खड़ी देख रही है।

●●●

मुद्रक : मित्तल प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२



आचार्य चतुरसेन

जन्म : २६ अगस्त १८९१ ई०

निधन : २ फरवरी १९६० ई०

आचार्य चतुरसेन बहुमुखी प्रतिभा के धनी उस विराट् व्यक्तित्व का नाम है, जिसने आधी शताब्दी तक अनवरत रूप से, नाना विधाओं में साहित्य-सृजन किया।

लगभग साढ़े चार सौ कहानियों के अतिरिक्त उन्होने ४० उपन्यास, १० नाटक, १० एकाकी तथा प्रभूत मात्रा मे गद्य-काव्य के साथ ही समाज, राजनीति, धर्म, स्वास्थ्य और चिकित्सा आदि विषयों के वृहदाकार ग्रन्थों की रचना भी की। उनकी पुरस्कृत रचनाओ और अन्य भाषाओ मे हुए अनुवादो की सूची लम्बी है।

उनकी बहुप्रशसित एवं क्लासिक स्तर की रचनाओ मे 'वैशाली की नगरवधू' 'वयं रक्षामः' 'सोना और खून' 'गोली' 'सोमनाथ' 'आरोग्य शास्त्र' आदि प्रमुख हैं। अंग्रेजी राज्य मे सरकार द्वारा जब्त की गयी उनकी आठ रचनाओं में —'सत्याग्रह और असहयोग' तथा 'चांद' का फांसी अक बहुत प्रसिद्ध है।

चतुरसेन-साहित्य पर अनेक विश्वविद्यालयों मे पन्द्रह विद्वान शोधकार्य कर रहे है तथा कई शोधग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं।